मर्जी खुदा की

अनुवादक : *शंभुनाथ पाड़िया 'पुष्कर'*



विमल मित्र

बन्धुवर
डॉ० धर्मवीर भारती
को
सस्नेह और सप्रेम
समर्पित !

—विमल मित्र

अनुवादक की ओर से

श्री विमल मित्र जी की कहानियों का ताजा संकलन प्रस्तुत है। अब इन कहानियों के सम्बन्ध में क्या कहूं ! सुधी पाठक-वृन्द का अभिमत ही सर्वोपरि माना जायेगा। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूं कि इन कहानियों का अनुवाद करते हुए मैंने विशिष्ट रसानुभूति और आत्मिक परितुष्टि प्राप्त की है। ऐसा न होने पर अनुवाद का यह श्रम-साध्य कार्य संभवतः मुझसे हो ही नहीं पाता।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में कुल बारह कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'नवनीत', 'अवकाश' एवं 'आनन्द' प्रभृति पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और इन कहानियों ने पाठक-पाठिकाओं के हृदयों पर अमिट छाप छोड़ी है। भारत के कोने-कोने से (एवं नेपाल से भी) बहुतेरे पाठक-पाठिकाएं श्री विमल मित्र जी को पत्र लिखकर उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किया करते हैं। इन पत्र-लेखकों में जहां एक ओर विशिष्ट विद्वान्, चर्चित समाज-सेवी एवं विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक होते हैं, वहीं दूसरी ओर होते हैं छात्र, दुकानदार, अल्प-शिक्षित गृहणियां, काम-काजी महिलाएं, मजदूर और रिक्शा-चालक भी...।

मुझे इस बात का हार्दिक सन्तोष है कि मुझे श्रद्धेय विमल मित्र जी का सान्निध्य और आशीर्वाद प्राप्त है। वे जहां एक ओर अत्यन्त विनयी, सरल और सीधे-सादे हैं, वहीं दूसरी ओर हैं स्वाभिमान के मार्तण्ड। उनके पास आप बैठ जाइए, किस तरह घंटों बीत जाएंगे—पता भी नहीं चलेगा। उनकी एक-एक उक्ति चमत्कृत कर डालती है। कहते हैं—प्रशंसा तो रुपयों से खरीदी जा सकती है, पर निन्दा अर्जित करनी पड़ती है। 'निन्दक नियरे राखिए···' वाला दोहा उन्हें जबानी याद है। बचपन में 'आलसियों का बादशाह' समझे जाने वाले विमल मित्र जी ने जिस विपुल परिणाम में और जिस गुणवत्ता से सम्पन्न साहित्य का अनमोल अवदान हमें दिया है, उसे देखकर हैरान रह जाना पड़ता है। उनके लेखन का शाश्वत प्रश्न है— इस दुनिया में भले आदमी को ही क्यों तकलीफ उठानी पड़ती है Why a good man suffers in this world ? सारी दुनिया रुपयों के पीछे बेतहाशा दौड़ रही है। लेकिन विमल मित्र जी कहते हैं—क्या मेरी तरह और

किसी ने रुपये वालों की दुर्गति देखी है ? श्री विमल मित्र जी बड़े ही अध्ययनशील लेखक हैं। देश-विदेश की सभी प्रमुख कृतियों का इन्होंने गहरा अध्ययन किया है। 'कादम्बिनी' के सम्पादक श्री राजेन्द्र अवस्थी जी ने इन्हें 'नहीं भूलती यादें रंगीन दिनों की' विषय पर लिखने का न्यौता दिया। इन्होंने लिख डाला—"···मेरे जीवन का हरेक दिन रंगीन दिन रहा है। जिस दिन मेरी कलम रुक जाएगी, बस, उसी दिन मैं समझ लूंगा कि मेरे दिन अब रंगीन नहीं रह गये···!" और तो और, ताज्जुब की बात यह है कि ज्योतिष-शास्त्र में श्री विमल मित्र जी की गहरी पैठ है। इसका परिचय प्रस्तुत संग्रह की कहानियां—'यह कैसा परिहास', 'मर्जी खुदा की' और 'पत्नीभक्षी राहु' पढ़ने पर बखूबी मिल सकता है।

तो यह ताजा कहानी-संग्रह आपकी सेवा में प्रस्तुत है। आशा है कि इन कहानियों के पात्रों व चरित्रों के साथ आप भी जुड़ पायेंगे—गहराई और आत्मीयता के साथ !

—शंभु नाथ पाड़िया 'पुष्कर'

गंगा दशमी,
कलकत्ता,
8 जून, 1984

अनुक्रम

यह कैसा परिहास 9
जिन्दाबाद 25
वह कौन था ? 45
रात और दिन 58
आत्महत्या या हत्या ? 71
घूस 86
कर्फ्यू 94
मर्जी खुदा की 113
इतिहास के पन्ने से 133
खून 144
पत्नीभक्षी राहु 155
दो नाम 162

यह कैसा परिहास

अब तक बहुत-सी कहानियां लिख चुका हूं। कभी मर्जी से, कभी बेमर्जी से, कभी पत्रिकाओं के सम्पादक-मित्रों के तगादे पर अथवा कभी दोस्ती निभाने की लाचारी से! अपने शरीर के प्रति लापरवाही बरतते हुए भी दिन-रात जाग-जागकर मुझे उन कहानियों को पाठक-पाठिकाओं के दरबार में पेश करना पड़ा है। कोई कहानी पसन्द की गयी, तो कोई नापसन्द भी'''।

मैं जानता हूं कि सिर्फ किस्से सुनाना या किस्से सुनाकर पाठकों का जी बहलाना कभी भी मेरा मुख्य उद्देश्य नहीं रहा है। मैंने हमेशा यही चाहा है कि मैं ऐसी कहानियां लिख पाऊं, जो पाठकों को सिर्फ आनन्द ही न दें, वरन् उनमें वैराग्य भी पैदा करें। ऐसा वैराग्य, जो मन को पावन करता हो और प्राणों को परिशुद्ध''' !

लेकिन क्या हमेशा मैं वैसा कर पाया हूं? शायद नहीं'''। दुनिया में चारों तरफ जो कुछ घटनाएं घट रही हैं, वे मन को अत्यन्त खिन्न और विषादमय कर देती हैं। सोचता हूं कि लिख कर ही भला क्या फायदा होगा? यह भी सोचता हूं कि किसके लिए लिखूंगा, कौन पढ़ेगा; या फिर इतनी मेहनत करके लिखूंगा ही क्यों? बहुतेरे लेखक जिस तरह दिन में नौकरी करते हैं और खाली समय में थोड़ा-बहुत लिखते हैं, मैं भी तो वैसा ही कर सकता था! जिनकी भलाई के लिए और जिनके आत्मान्वेषण के लिए इतनी तकलीफें उठाता हूं; उनका तो कोई भी उपकार मैं कर पाया नहीं। तो फिर गदहे की तरह इतना खटने से क्या फायदा?

इस बार जिसका किस्सा सुनाने जा रहा हूं, उसे मैंने पहले-पहल कुछ अजीब हालत में देखा था।

हम लोग उन दिनों श्यामबाजार में एक मकान के दोतल्ले में किराये में रहते थे और एकतल्ले में रहते थे एक ज्योतिषी महाराज। उनके ज्योतिष-कार्यालय में तरह-तरह की किस्म के चरित्र वाले लोग आया करते। भांति-भांति के चरित्र। और उनकी समस्याएं भी कैसी अजीब होती थीं। गरीब अमीर, बूढ़े-जवान औ

औरत-मर्द ; सभी वहां आते और अपना भविष्य-फल जानना चाहते। जहां तक मेरा सवाल है, ज्योतिष-शास्त्र के बारे में न तो मैं कुछ जानता था और न ही मेरी कुछ जानने की इच्छा थी।

मैं एक कोने में बैठा-बैठा उन्हें देखता और उनकी बातें सुनता। उस कमरे की चहारदीवारी के बीच मैं आज के पूरे समाज को देख पाता। सबों की बातें सुनता···। और मैं सोचता कि मुझे एक भी दिन ऐसा आदमी देखने को नहीं मिलेगा, जिसकी कोई कामना न हो या जिसे कोई दुःख न हो !

लोगों की इच्छाएं बड़ी अजीब होतीं।

ज्योतिषी जी के पास जो भी लोग आते थे, उनकी एकमात्र इच्छा होती रुपयों की। कब नौकरी मिलेगी, कब ऑफिस में तनख्वाह बढ़ेगी और कब होगी तरक्की सिर्फ इसी तरह की समस्याएं।

इसके अलावा और भी समस्याएं थीं। लड़की की शादी, बीमारी-सीमारी मामला-मुकदमा और फिर कुछ प्रेम-मुहब्बत से सम्बन्धित।

ज्योतिषी जी एक बूढ़े आदमी थे। एक अरसे से यही काम करते आ रहे थे। बहुतेरे लोगों को उन्होंने देखा-परखा है, बहुतों की गुप्त समस्याएं उन्होंने सुनीहैं और बहुत-से लोगों ने उन पर विश्वास कर उन्हें अपने अन्तर्मन की बातें कह डाली हैं। और उन्होंने भी हमेशा, जहां तक हो सका है, अपनी बुद्धि और विद्या के द्वारा उनकी सारी समस्याओं का हल ढूंढने की कोशिशें की हैं। इसके बदले उन्हें जो! कुछ भी दक्षिणा मिली है, उसे पाकर ही वे हमेशा सन्तुष्ट होते रहे हैं। और इतने वर्षों से उसी से उनका परिवार चल रहा है।

लेकिन एक दिन जो घटना घटी, वैसी घटना उनके जीवन में और कभी भी, नहीं घटी। वह घटना जैसी अजीब थी, वैसी ही नयी भी।

साधारणतः जो लोग वहां आते, वे ज्योतिषी जी से अपनी जन्म-पत्री तैयार करवाया करते। पीले रंग का एक कागज होता, गोल-गोल लपेटा हुआ। उसमें लग्न-राशि-गण लिखा जाता। उसके बाद लिखा जाता नवांश और भावचक्र। उसके नीचे लिखा होता दशा-फल। किस दशा में क्या-क्या फल होगा, जीवन में कब उन्नति होगी और कब अवनति, कब उत्थान होगा और कब पतन ; ये सारी बातें लिखी होतीं।

लोग उन गूढ़ बातों को लेकिन समझ नहीं पाते। वे सिर्फ यही पूछते—"मुझे जीवन में धन मिलेगा तो ?"

ज्योतिषी महाराज कहते—"पचास साल की उम्र में आपकी उन्नति होगी। उस समय आपको धन मिलेगा और मिलेगा मान-सम्मान। बेटे-बेटियों की शादी होगी··· ।"

"लेकिन पचास साल के पहले ? पहले रुपये नहीं होंगे क्या ? पण्डित जी,

आप एक बार अच्छी तरह जन्म-पत्री देखिये न !"

ज्योतिषी जी न जाने बुदबुदाते हुए क्या गणना करते। उसके बाद कहते—"नहीं, पचास साल की उम्र के पहले यह सब नहीं होगा। पचास साल की उम्र के बाद ही आपको शुक्र की दशा शुरू होती है।"

फिर भी आदमी खुश नहीं होता। ऐसा भी तो हो सकता है कि जरा दिमाग लगाकर गणना करने पर पचास साल के बजाय चालीस साल की उम्र में ही सब कुछ हासिल हो जाये।

नहीं, वैसा नहीं हो सकता। ज्योतिषी महाराज की गणना बिलकुल सही होती। उनकी गणना में कभी गलती देखी ही नहीं गयी। सुना है कि ज्योतिषी जी के पिता जी और भी बड़े ज्योतिषी थे। उनकी गणना और भी पक्की होती। वे सन्तान के जन्म के पहले ही बता देते थे कि गर्भवती महिला की सन्तान पुत्र होगी या कन्या।

एक बार एक प्रसिद्ध मारवाड़ी सज्जन की सही-सही भविष्यवाणी करके उन्होंने एक लाख रुपयों का इनाम पाया था। बड़े-बड़े राजे-महाराजे उनके यजमान थे। उन्हीं कालीकृष्णो ज्योतिषशास्त्री के जन्म-दिवस पर भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं की तरफ से कीमती भेंटें आया करतीं। इंग्लैंड के सम्राट पंचम जार्ज की मृत्यु-तिथि की भविष्यवाणी करने पर उनका नाम सारे संसार में चमक गया। उसके बाद से ही इस ज्योतिष-कार्यालय की प्रसिद्धि इस देश में भी फैल गयी। उस समय से ही उनकी ख्याति बढ़ गयी। उसके बाद उन्होंने जहां भी हाथ दिया, वहीं पौ-बारह। उन्होंने लाखों रुपयों के शेयर खरीदे थे। उन शेयरों के दाम दुगुने-तिगुने हो गये। इस तरह उनकी सम्पत्ति और उनका ऐश्वर्य दूसरे ज्योतिषियों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था।

सो उन्हीं कालीकृष्ण ज्योतिषशास्त्री के इकलौते बेटे थे ये गौरीनाथ ज्योतिषशास्त्री। गौरीनाथ ज्योतिषशास्त्री उस सम्पत्ति और उस प्रसिद्धि के उत्तराधिकारी बनकर बहुत दिनों से अपना पैतृक व्यवसाय चला रहे थे। अपने पिता की विद्या उन्हें भी मिली थी। दूध की साध जैसे लोग छाछ से मिटाते है, उसी तरह पैतृक समय के राजा-महाराजा भी कालीकृष्ण ज्योतिषशास्त्री के अभाव में गौरीनाथ ज्योतिषशास्त्री से अपना काम चलाया करते। यह बात जरूर सच है कि वे राजा-महाराजा अब पहले जैसे नहीं रह गये थे। उनकी मान-प्रतिष्ठा, वैभव-विला[illegible] और सम्पत्ति-ऐश्वर्य भी पहले की भांति नहीं रह गये थे। लेकिन वह कहावत है न—मरा हुआ हाथी सवा लाख का। सो उन सब नेटिव स्टेटों का नाम [illegible] भुनाया जा रहा था। गौरीनाथ ज्योतिषशास्त्री के कार्यालय के विज्ञा[illegible] राजा-महाराजाओं के प्रमाण-पत्रों के अंश-विशेष उद्धृत रहते। [illegible] पढ़कर लोगों के मन में इस ज्योतिष-कार्यालय के प्रति विश्वास [illegible]

आदमी बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं का सही-सही भविष्य-फल बतला चुका है, वह हम जैसे मामूली आदमियों की भविष्यवाणी भी सही-सही कर सकेगा, इसमें सन्देह की क्या बात है ?

बीच-बीच में जबकि और कोई वहां नहीं होता, मैं शास्त्रीजी से पूछा करता—"अच्छा पण्डित जी, आपके पास इतने लोग भविष्य-फल जानने के लिए आते हैं, क्या सभी का भविष्य-फल ठीक-ठीक मिलता है ?"

शास्त्री जी की उम्र काफी हो चुकी थी।

वे कहते—"हां, मेरी गणना में कभी भी गलती नहीं हुई।" उसके बाद वे कुछ दुविधा के साथ कहते—"यह बात जरूर है कि जन्म का समय ठीक-ठीक बताया हो, तभी भविष्य-फल सही निकलेगा।"

कभी-कभी मेरी भी इच्छा होती कि मैं भी अपना भविष्य-फल जान लूं। लेकिन मेरी जन्म-पत्री तो थी ही नहीं। यही क्यों, मेरे जन्म का ठीक-ठीक समय, तिथि और वार कुछ भी मुझे मालूम नहीं था। और फिर शास्त्री जी हाथ की रेखाएं देखा नहीं करते थे।

वे कहते—"हाथ की रेखाएं देखकर भविष्यवाणी करने में बहुत-सी गलतियां होती हैं। इसके अलावा हाथ की रेखाएं उम्र के साथ-साथ बदलती हैं। जन्म के समय मनुष्य जो भाग्य लेकर आता है, उसे शिशु का हाथ देखकर समझा नहीं जा सकता।"

उस समय मेरी उम्र कम थी। मेरे सामने पड़ा हुआ था सुदूर भविष्यत्। मेरे बदन में उठती हुई जवानी का तेज था। पौरुष के घमंड में चूर मैं धरती को रौंदता हुआ चला करता। भला मैं क्यों ज्योतिष पर विश्वास करने जाऊंगा ? मैं अपने भाग्य का निर्माण खुद अपने हाथों से करूंगा, यही था मेरा दृढ़ संकल्प। उस समय लोगों की कमजोरी देखकर मैं मन-ही-मन हंसा करता। मैं सोचा करता कि आखिर सभी लोग इस कदर रुपये के पीछे क्यों दौड़ रहे हैं ? क्या रुपया ही मनुष्य की एकमात्र कामना है ? क्या रुपये मिलने से ही मनुष्य को सब कुछ मिल जाता है ? रुपयेवालों की दुर्दशा क्या मेरी तरह और किसी ने नहीं देखी ?

तो फिर ?

दुनिया में रुपये से भी बड़ी चीज है—शान्ति। सो उस शान्ति के लिए तो कोई ज्योतिषी के पास नहीं आता। उसके लिए तो वह देवता की शरण में जाता है। इसीलिए तो मन्दिरों में इतनी भीड़ होती है। और फिर क्या देवता भी एक है ? शनि, शीतला, काली, शिव, दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी—कितनी ही तरह के देवी-देवता हैं। उनके मन्दिरों में जाकर भी मैंने देखा है। वहां भी भक्तों की कमी नहीं। वे भक्तजन अपने आराध्य देव की सेवा में कितना सोना, हीरा, मोती और रुपये भेंट चढ़ाते हैं। और उन देवी-देवताओं की विशेष पूजा के अवसर पर

दान-दक्षिणा का तो कोई अन्त ही नहीं।

तो फिर सत्य क्या है? देवी-देवता या ज्योतिष?

उस दिन शाम को कहीं भी बाहर निकलना नहीं था। मैं गौरीनाथ ज्योतिष-शास्त्री की बैठक के एक कोने में बैठा हुआ था। चारों तरफ आलमारियों में सौ साल पहले तक के सारे पचांग सजे हुए थे। और एक आलमारी में जन्म-पत्री के पीले रंग के कागजों के बंडल रखे हुए थे। कभी-कभी यजमानों की खासी भीड़ इकट्ठी हो जाती। एक-एक कर लोग अपनी बातें कहते और काम खत्म होने पर वापस चले जाते। सबों का एक ही सवाल होता—रुपया, रुपया और रुपया···। इसलिए इन बातों में कोई नयापन नहीं होता।

उसके बाद जब एक-एक कर सभी चले जाते, तब गौरीनाथ शास्त्री मेरी तरफ देखते। कहते—"बेटे, लगता है कि आज तुम कहीं घूमने के लिए निकलोगे नहीं।"

मैं कहता—"नहीं। और फिर यहां आ जाने के बाद बाहर निकलने की जरूरत ही नहीं पड़ती। आपके पास भांति-भांति के लोगों के दर्शन अपने आप हो जाते हैं।"

ज्योतिष शास्त्री जी कहते—"इसमें कोई नयापन कहां है बेटे? इतने दिनों से तो देखता आ रहा हूं। और तुम भी तो बीच-बीच में यहां आया करते हो। सभी बस एक ही चीज चाहते हैं—रुपया। मेरे लिए अब यह सब बड़ा नीरस हो गया है—ऊबा देने वाला। इसमें कोई नवीनता कहां?"

उस दिन भी सबों के चले जाने के बाद ये बातें ही हो रही थीं। अचानक बाहर सदर दरवाजे के सामने एक रिक्शा आकर रुका। रिक्शे का सामने वाला हिस्सा परदे से ढका हुआ था। परदा हटाकर एक घूंघट वाली महिला रिक्शे से नीचे उतरी। हम दोनों ने ही उसे देखा। मैं समझ गया कि फिर एक यजमान शास्त्री जी के पास आ पहुंचा है। सदर दरवाजे से भीतर कमरे में आने के बाद हम लोगों को देखकर उसने घूंघट से फिर अच्छी तरह मुंह ढक लिया।

किन्तु उस घूंघट के बीच से उस महिला का जितना चेहरा मैं देख सका, उससे ऐसा मालूम हुआ कि वह महिला बेहद रूपवती थी। उम्र होगी पैंतीस या छत्तीस साल की। गले में एक हार था और कानों में छोटे कर्णफूल। दोनों कलाइयां सोने की चूड़ियों से भरी हुई थीं। और बायें गाल पर था एक बड़ा-सा तिल···।

ऐसी संभ्रान्त महिला ज्योतिषी जी के पास अकेले ही भविष्य-फल जानने के लिए आई थी, यह बात हम दोनों को ही हैरान कर देने वाली लगी।

गौरीनाथ शास्त्री ने उसकी ओर देखकर कहा—"बैठो बेटी, बैठो।"

तब तक मानो उस महिला के मन में कुछ साहस आ चुका था। वह चुपचाप चौकी पर बैठ गयी।

उसके बाद उसने धीरे से कहा—"मैं एक जन्म-पत्री लेकर आयी हूं। आपको जरा दिखाना चाहती हूं। आपको क्या दक्षिणा देनी होगी, अगर यह जान पाती तो बहुत अच्छा होता ?"

गौरीनाथ शास्त्री जी ने पूछा—"क्या जन्म-पत्री बनी हुई है ?"

इस महिला ने कहा—"हां···। बहुत दिनों पहले यह जन्म-पत्री आपके द्वारा ही तैयार करायी गयी थी। उस समय आपने पच्चीस रुपयों की दक्षिणा ली थी।"

गौरीनाथ शास्त्री को कुछ ताज्जुब हुआ।

उन्होंने पूछा—"कितने साल पहले यह जन्म-पत्री तैयार करायी थी, क्या यह बता सकती हो बेटी ?"

उस महिला ने गोलाकर लपेटी हुई पीले रंग की जन्म-पत्री आगे बढ़ा दी।

उसने कहा—"लीजिए, देखिये न ! आपने तो खुद इस पर तारीख भी लिख रखी है।"

शास्त्री जी ने हाथ बढ़ाकर जन्म-पत्री ले ली और वे उसे खोलकर देखने लगे। जन्म-पत्री पन्द्रह साल पहले बनायी गयी थी। जिस बच्चे की यह जन्म-पत्री थी, उस समय उसकी उम्र थी तीन साल की। उसी समय शास्त्री जी ने यह जन्म-पत्री बनाई थी।

ज्योतिषी महाराज ने खूब ध्यान से जन्म-पत्री को देखना शुरू किया। काफी देर तक वे क्या देखते रहे, कौन जाने ? आखिरकार उन्होंने कहा—"तो इस समय लड़के की उम्र है अठारह साल की ?"

उस महिला ने हामी भरी—"जी हां।"

"क्या यह तुम्हारी सन्तान है ?"

"हां, मेरी इकलौती सन्तान। आपने जन्म पत्री-पत्री में लिख दिया है कि इस उम्र में उस पर एक भारी विपदा आने वाली है।"

शास्त्री जी ने कहा—"हां, वह बात तो मैंने लिख ही दी है। राहु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा होने के कारण एक भारी विपदा आने का योग है।"

उस महिला ने कहा—"हां, यही जानने के लिए तो मैं आपके पास आई हूं। बहुत दिनों से आपके पास आने के लिए छटपटा रही थी। कई बार आपके पास लोगों की भारी भीड़ देखकर लौट भी गई हूं। इसीलिए आज जरा देरी करके आई हूं। मैंने देखा कि आपकी बैठक में भीड़ नहीं है, इसीलिए भीतर चली आई। आप जरा गौर से विचार करके देखें कि क्या सचमुच विपत्ति आने वाली है ?"

शास्त्री जी ने पूछा—"इसके पिता के पास यानी तुम्हारे स्वामी के पास तो बेशुमार धन-दौलत है न ?"

उस महिला ने स्वीकार किया। उसने कहा—"हां, उनके पास बहुत रुपये हैं। वे एक मोटी तनख्वाह की नौकरी करते हैं।"

शास्त्री जी एक बार जन्म-पत्री देखते और फिर मुंह उठाकर सवाल करते। उन्होंने कहा—"लेकिन इस लड़के की वजह से तुम्हें बहुत अशान्ति हो रही है।"

उस महिला ने कहा—"अशान्ति हो रही है। अशान्ति नहीं होती, तो क्या मैं यूं ही आपके पास दौड़ी आती? इसके जन्म के बाद से ही मैं घोर अशान्ति में हूं। सो अपनी अशान्ति की मुझे फिक्र नहीं। मेरी किस्मत में सुख नहीं, न सही। यह लड़का किस तरह सुखी हो और किस तरह आदमी बने, यही आप बतला दीजिये। यदि किसी यज्ञ, होम या पूजा-पाठ की जरूरत हो तो वह भी बता दीजिए। इसके लिए जितने भी रुपये खर्च हों, सो मैं देने के लिए तैयार हूं। कहिए, कितने रुपये लगेंगे? मैं आपको इसी वक्त दे देती हूं।"

गौरीनाथ शास्त्रीजी ने कहा—"किस्मत के लेखे को कौन मिटा सकता है बेटी! और फिर यज्ञ, और पूजा-पाठ में मेरा विश्वास नहीं। फिर भी भगवान के पास दिन-रात प्रार्थना करो। उससे अगर कोई राह निकल आये तो देखो…।"

उस महिला ने कहा—"भगवान से प्रार्थना तो रोज ही करती हूं। लेकिन मुझ जैसी अभागी की बात भला भगवान सुनेंगे भी क्यों?"

शास्त्री जी ने उसे दिलासा देते हुए कहा—"सुनेंगे क्यों नहीं? भगवान तो सर्वज्ञ है। उनके लिए न कोई छोटा है, न कोई बड़ा, न कोई अमीर है, न कोई गरीब। उन्हें मनप्राणों से पुकारने पर वे जरूर सुनेंगे बेटी।"

"लेकिन मैं तो पापन हूं।"

शास्त्री जी ने कहा—"मनुष्य-मात्र ही पापी होता है। अगर हम पापी नहीं होते, तो सभी देवता बन जाते। इसीलिए तो भगवान का और एक नाम पतित-पावन भी है। उन्हें तुम पुकारो। तुम पर उनकी दया भी हो सकती है।"

उस महिला ने कहा—"दया अगर होती तो मुझे भी तो इसका कुछ पता चलता। मैं तो दिन-रात भगवान को पुकारती हूं कितने ही देवी-देवताओं की पूजा करती हूं। सभी देवी-देवताओं से प्रार्थना करती हूं कि वे मेरे लड़के को आदमी बना दें। लेकिन जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे वह और भी आवारा होता जा रहा है। नहीं तो क्या भला इस उम्र में कोई शराब पीता है?"

"शराब पीता है? क्या सचमुच? मैं तो कह ही चुका हूं कि राहु नीचस्थ है, सो भी चतुर्थ लग्न में। वह चतुर्थ स्थान है मातृ-स्थान। साथ ही राहु चन्द्रमा की ओर सीधा दृष्टिपात कर रहा है। और फिर आय-पति वृहस्पति नीचस्थ है, यह बात भी मैंने जन्म-पत्री में लिख दी है। लो, देखो न…।"

उस महिला की आंखों से टप-टप आंसू टपकने लगे।

उसने कहा—"उसके प्रतिकार के लिए ही तो आपके पास आई हूं पंडित जी। आप मुझे बता दीजिए कि क्या करना होगा? अगर तारकेश्वर के मन्दिर में जाकर धरना देने के लिए कहें तो उसके लिए भी तैयार हूं। उस लड़के के बारे में सोच-

सोच कर मेरी रातों की नींद हराम हो गयी है। पढ़ाई-लिखाई अच्छी तरह हो सके, इसके लिए बचपन से ही कितने बढ़िया मास्टर रखे थे। लेकिन पढ़ाई में उसका जी नहीं लगा। आवारा छोकरों की संगत में पड़कर बिल्कुल जहन्नुम में जा चुका है। कितनी ही बार वह रात में घर भी नहीं लौटता।"

शास्त्री जी ने पूछा—"सो तुम अपने लड़के को समझाकर कह नहीं सकती हो क्या ?"

महिला ने कहा—"लड़के के साथ मेरी मुलाकात हो, तब न उसे समझाऊं ! उसके साथ तो मेरी मुलाकात ही नहीं हो पाती।"

"मुलाकात ही नहीं हो पाती ?"

"नहीं।"

"क्यों, मुलाकात क्यों नहीं होती ?"

वह महिला इस सवाल का कोई उत्तर नहीं दे सकी। अपने लड़के के दुःख से वह इतनी कातर हो उठी थी कि उसका गला रुंधा जा रहा था।

शास्त्री जी ने कहा—"क्या उसे एक बार मेरे पास ला सकती हो बेटी ? मैं उसे समझाने की कोशिश करूंगा‥।"

उस महिला ने कहा—"वह आपकी बात सुनेगा भी क्या ? तो फिर फिक्र ही किस बात की थी ? आखिरकार वह आपका अपमान भी कर सकता है। इससे तो मुझे और भी ज्यादा तकलीफ होगी।"

"तो फिर तुम्हारे स्वामी ? इसके पिताजी ? क्या वे तुम्हें लड़के के लिए कुछ नहीं कहते ?"

वह महिला सिर झुकाये बैठी रही। शायद अपने स्वामी के बारे में कुछ भी कहने में उसे लाज आने लगी। लाज आना स्वाभाविक था भी। उसके पतिदेव जब एक बड़ी नौकरी करते हैं तो वे खूब व्यस्त रहते ही होंगे। पूरे हिंदुस्तान में शायद उन्हें चक्कर लगाने पड़ते हों। शायद किसी बड़े दफ्तर में वे सबसे बड़े अधिकारी हों। वे दिन-रात अपने दफ्तर की फिक्र में ही डूबे रहते होंगे। किसी तरह कम्पनी की आमदनी बढ़े, कारखाने का उत्पादन बढ़े; इसकी चिंता-फिक्र में ही उनका वक्त गुजर जाता होगा। घर की तरफ ध्यान देने की उन्हें फुर्सत ही कहां होगी ?

आखिरकार गौरीनाथ शास्त्री ने मानो दिलासा देने के लिए ही कहा—"बेटी, तुम दुख मत करो। किस्मत में जो लिखा है, सो तो होगा ही। फिर भी क्या किया जा सकता है, इसके बारे में मैं सोचूंगा। तुम जन्म-पत्री मेरे पास ही छोड़ जाओ। मैं एकान्त में गौर से देखूंगा और सोचूंगा कि इसका क्या प्रतिकार हो सकता है। काफी रात हो चली है, अब तुम घर लौट जाओ। तुम्हें मैं और ज्यादा रोक रखना नहीं चाहता बेटी।"

वह महिला हाथ बढ़ाकर ज्योतिषी जी को रुपये देने जा रही थी। उसने

कहा—"यह लीजिए, आपकी दक्षिणा···।"

लेकिन शास्त्री जी ने उसे रोकते हुए कहा—"इसे अपने पास ही रखो बेटी। दूसरे दिन जब तुम फिर आओगी, उसी दिन लूंगा। अभी इसकी जरूरत नहीं।"

उस महिला ने शास्त्री जी को सिर झुकाकर प्रणाम किया और उसके बाद वह चली गयी। बाहर रिक्शा इन्तजार कर ही रहा था। जैसे ही वह महिला रिक्शे में बैठी, वैसे ही रिक्शा चल पड़ा।

उस महिला के चले जाने के बाद मैंने शास्त्री जी से पूछा—"क्या देखा आपने शास्त्री जी? क्या इसका कोई प्रतिकार हो सकेगा?"

गौरीनाथ शास्त्री उस समय तक भी जन्म-पत्री का गौर से निरीक्षण-परीक्षण कर रहे थे। कुछ देर के बाद उन्होंने मेरे सवाल के जवाब में कहा—"ऐसा लगता तो नहीं। मैंने कहा न कि चतुर्थ स्थान में—जो कि मातृ-स्थान है—राहु नीचस्थ है। उसी राहु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा चल रही है। इस लड़के का जितना नुकसान होगा, इसकी मां का नुकसान उससे और भी ज्यादा होगा।"

मैंने पूछा—"इसका मतलब?"

"मतलब यही कि इस लड़के से भी ज्यादा खराब भवितव्य इसकी मां का है। तुम ये बातें समझ नहीं पाओगे बेटे··।"

मैंने कहा—"तो आपने यह बात उस महिला से साफ-साफ क्यों नहीं बताई?"

शास्त्री जी ने कहा—"देखो बेटे, मेरे पिताजी मुझे सिखा गये हैं कि यजमान जो प्रश्न करे, तुम सिर्फ उसी प्रश्न का उत्तर दोगे। दूसरे विषयों के बारे में तुम जानते हुए भी कुछ न कहोगे। सो उस महिला ने मुझे अपनी जन्म-पत्री तो दिखाई नहीं। उसने अपना भाग्य-फल जानने की तो कोई इच्छा प्रगट की ही नहीं। उसने जो कुछ जानना चाहा था, मैंने सिर्फ वही बतलाया है।"

उसके बाद फिर कभी वह महिला शास्त्री जी के पास आयी थी या नहीं, मैं नहीं जानता। हो सकता है कि कभी आयी भी हो। लेकिन मुझे इस बात की जानकारी नहीं। हर रोज उस ज्योतिष-कार्यालय में जितने लोग आते थे, सबों को तो मैं देख पाता भी नहीं था।

और इसके अलावा उस समय मेरे सिर पर इम्तहान का भूत भी सवार था। जैसे-जैसे इम्तहान नजदीक आ रहा था, वैसे-वैसे मुझे भी पढ़ने-लिखने में ज्यादा-से-ज्यादा व्यस्त रहना पड़ता था। हर समय शास्त्री जी की बैठक में बैठने का मुझे अवकाश मिलता ही नहीं।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद ही हम लोग उस मुहल्ले को छोड़कर दूसरे मुहल्ले में आ गये। गौरीनाथ शास्त्री के मकान में हमें जगह की कमी थी। मामूली-सा अधिक किराया देने पर ही हमें निमू गोस्वामी लेन में अधिक कमरों वाला एक घर मिल गया। आसपास का वातावरण जरूर अच्छा नहीं था। लेकिन घर में

खुदा की

रे थे और घर भी था कुछ खुला-खुला। खिड़की से बाहर देखने पर
खाई पड़ता। और साथ ही मकान की छत भी हम लोगों के अख्तियार

गोस्वामी लेन से विद्यासागर कॉलेज जाने के लिए ग्रे स्ट्रीट के मोड़ से
ट्राम पकड़नी पड़ती। हर रोज मैं उसी रास्ते से होकर कॉलेज जाता। उसके
टते वक्त मैं किसी तयशुदा रास्ते से होकर नहीं लौटता। जब मर्जी होती,
टता। जिस रास्ते से मर्जी होती, उस रास्ते से होकर लौटता। कभी-कभी
त के दस या ग्यारह भी बज जाते। अड्डेबाजी में मशगूल हो जाने के बाद
वक्त का कोई हिसाब रह पाता है?

जब मैं लौटता, उस वक्त वह इलाका खूब ही गुलजार रहता। रात जैसे-जैसे
ती, वैसे-वैसे पूरे मुहल्ले की रौनक भी बढ़ती। उस समय बेला फूलों की माला,
ल्फी, मलाई, बर्फ और देसी शराब की मिली-जुली गंध से वह जगह नरक हो
जाती।

कभी-कभी रात में झगड़ा भी हो जाता। सोडे की बोतलें खुलकर चलतीं···।
उस समय उस रास्ते से होकर आना मुश्किल हो जाता। पुलिस के पहरे का खास
इन्तजाम था। लेकिन पुलिस की वजह से उनको कोई भी असुविधा नहीं होती।
उनका गैर कानूनी कारोबार हमेशा की तरह बेरोकटोक चलता रहता।

इन खूबसूरत औरतों की वजह से ही तो जितने भी छटे हुए गुण्डे थे, चोर थे,
दलाल थे और बदमाश थे—यह स्थान उनका अड्डा बना हुआ था। कहां से ये
औरतें आती थीं और कहां जाती थीं—इसका अता-पता किसी को मालूम नहीं
होता। अगर किसी को मालूम होता भी तो सिर्फ पुलिस को।

सो पुलिस जानते हुए भी किसी से कुछ न कहती। पहरा देने का नाटक करते
हुए भी वे पुलिस वाले अपनी आंखें मींचे रहते। इसीलिए इसकी कोई रोक-टोक
भी नहीं होती। यह बात जरूर सच थी कि इस मुहल्ले में रहने वाले लोग इन
सबों के आदी हो चुके थे। कलकत्ते में मकान मिलना क्या इतना आसान है कि
मुहल्ला पसन्द नहीं आने पर लोग दूसरे मुहल्ले में चले जायें?

कुछेक महीनों के बाद मैं भी उस आब-हवा का अभ्यस्त हो गया। आधी रात
में कभी शोर होता और आकाश गूंज उठता, तो भी हम चौंकते नहीं। और फिर
कभी अगर किसी पियक्कड़ की बेसुरी चीख-पुकार से मुहल्ले के लोगों की नींद टूट
जाती, तो भी कोई थाने में जाकर किसी के खिलाफ शिकायत नहीं करता। यह
कलकत्ता महानगर है। रात-बिरात जैसे हम लोग 'बोल हरि, हरि बोल···' के
विकट शब्दों को सहज रूप से बर्दाश्त करते हैं, यह भी कुछ उसी तरह की बात
थी। अगर हम यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकते, तो कलकत्ता-सरीखे शहर में रह
का हमें कोई हक नहीं।

सो अचानक एक दिन सुबह कॉलेज जाने के लिए निकल रहा था। जल्दीबाजी में कॉलेज पहुंचना था। घर से निकलने में ही देर हो चुकी थी।

लेकिन घर से निकलने के बाद गली के मोड़ पर आते ही मैंने देखा कि वहां बहुत-से लोगों की भीड़ जमा थी। इस गली के मोड़ पर भीड़ साधारणतः रात में ही होती है, दिन में नहीं। उस समय गुण्डों, बदमाशों और पियक्कड़ों की यहां भीड़ जमा रहती है। लेकिन इस वक्त दिन में इतनी भीड़ देखकर मुझे न जाने कैसा संदेह हुआ। ऐसा तो आम तौर पर कभी होता नहीं।

एक भले आदमी से मैंने पूछा—"यहां क्या हुआ है साहब?"

उस आदमी ने जवाब दिया—"मैं भी आपकी तरह ही हूं। भीड़ को देखकर मैं भी यहां रुक गया। सुना है कि किसी का खून हो गया है।"

"खून? किसका खून हो गया है?"

उस आदमी ने कहा—"सो तो मैं नहीं जानता।"

यह कहकर वह आदमी असल जानकारी हासिल करने के लिए भीतर घुस गया। मैं भी साथ-साथ आगे बढ़ा। दिन के वक्त साधारणतः यह गली वीरान ही रहा करती थी। दोपहर के बारह बजे इस मुहल्ले की लड़कियों की नींद टूटा करती। उसके बाद ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता, त्यों-त्यों वहां लोगों का आना-जाना शुरू हो जाता। फिर शाम से रात के एक-दो बजे तक नरक गुलजार हो उठता।

पुलिस के कांस्टेबलों से वह जगह ठसा-ठस भरी हुई थी। मैं लोगों को ढकेलते-ढकेलते बिलकुल उनके पीछे जा पहुंचा।

कुछेक दलाल भी वहां चहलकदमी कर रहे थे। उनमें से ज्यादातर मेरे जाने-पहचाने थे। शाम होने के बाद ही उस मुहल्ले में उन दलालों का ही साम्राज्य कायम हो जाता। मुझे भी वे लोग पहचानते थे। उनमें से ही एक से मैंने पूछा—यहां क्या हुआ है भाई?

उसने मेरी तरफ गौर से देखा। शायद वह मुझे पहचान गया था। उसने कहा—"वीणा मर गयी है।"

"वीणा? कौन वीणा?"

उस दलाल ने मेरे कान के पास अपना मुंह लाकर कहा—"बारह नंबर वाली वीणा।"

उस दलाल का ख्याल था कि वीणा जैसी बाजार की सबसे खूबसूरत परी का नाम लेते ही लोग उसे जान जायेंगे।...इस वीणा-जैसी खूबसूरत औरतों को मूल-धन बनाकर ही तो वे दलाल अपना धन्धा दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ा रहे थे। इस-लिए ऐसी एक खूबसूरत औरत की मौत से उनका नुकसान होना तो स्वाभाविक ही था।

वह दलाल मुझे और कुछ ज्यादा बताना नहीं चाहता था। मैं भी वहां और

रुकना नहीं चाहता था। कॉलेज पहुंचने में मुझे देर हो रही थी।

भीड़ के बीच से किसी तरह उस गली से निकल पाऊं तो जान बचे। लेकिन गली के मोड़ पर आते ही मुझे फटिक मिल गया। फटिक हमारे घर के पास के एक घर में काम करता था। वह एक पान की दुकान के सामने खड़ा पान खरीद रहा था।

फटिक ने मुझे देखकर कहा—"आप वहां भीड़ में क्या देखने के लिए घुसे थे दादा? वह हरामजादी मर गयी, चलिए अच्छा ही हुआ।"

मैंने अपना कौतूहल मिटाने के लिए पूछा—"क्या हुआ रे फटिक, बोल तो? क्या तुझे कुछ पता है?"

फटिक ने सहज भाव से कहा—"होना और क्या था? जो बराबर होता आया है, वही हुआ है।"

फिर भी मुझे अपने सवाल का जवाब नहीं मिला। मैंने कहा—"सुना है कि वीणा नाम की किसी खूबसूरत औरत का खून हो गया है।"

फटिक ने पूछा—"क्या आप भी वीणा को पहचानते हैं?"

मैंने कहा—"नहीं। फिर भी एक आदमी ने बताया कि बारह नंबर के मकान में एक बड़ी ही खूबसूरत औरत रहती थी; उसी का···।"

"तो फिर आपने ठीक ही सुना है। ज्यादा रुपये हो जाने पर ऐसा ही होता है।

मैंने पूछा—"तो शायद उस औरत के पास बेशुमार रुपये थे।"

फटिक इस मुहल्ले का हरफन मौला था। बचपन से ही वह हमारे पास वाले मकान में नौकरी कर रहा है। नौकरी करते-करते इसी मुहल्ले में उसने अपने बाल सफेद किये हैं। कह सकते हैं कि फटिक ही उस घर का मालिक बन बैठा था।

फटिक के पास ज्यादा बातचीत करने का समय शायद नहीं था। वह पान ले जाकर अपनी मालकिन को देगा, तभी शायद उनका काम में मन लगेगा।

बातचीत खत्म करके फटिक अपने घर की तरफ जाने लगा। उसने कहा—"दादा, मैं चलता हूं!"

तब तक फटिक ने पनवाड़ी से पान ले लिये और उसके पैसे भी चुका दिये।

उसने कहा—"चलता हूं दादा! बाबू के ऑफिस जाने का वक्त हो गया है।" यह कहकर फटिक वहां से चला गया।

उधर तब तक एक शोर शुरू हो गया। दूर से मैंने देखा कि एक एम्बुलेन्स गाड़ी वहां आ गयी। उसके बाद वह गाड़ी बारह नंबर के मकान के सदर दरवाजे के सामने रुकी। और साथ ही भीड़ भी हड़बड़ाकर उसी तरफ दौड़ पड़ी।

मैं सोच रहा था कि अब रुकने से कोई फायदा नहीं। कॉलेज को देर भी हो रही थी। लेकिन मैंने देखा कि सभी लोग गिरते-पड़ते बारह नंबर के मकान के

सदर की तरफ दौड़ पड़े। यह देखकर मुझे ऐसा लगा कि जिस औरत का खून हुआ है, उसे अब बाहर निकाला जायेगा।

चारों तरफ पुलिस के कांस्टेबल भरे पड़े थे। अब तक इसी औरत से उन लोगों ने खूब रुपये कमाये थे। और अब जब कि वह औरत मर चुकी थी, तो भी उनका कोई नुकसान नहीं था। उस घर में और एक नयी वीणा आकर अपना डेरा जमायेगी। तब उसके पास से वे फिर रुपये पायेंगे। इस बदनाम मुहल्ले के इतिहास की धारा इसी तरह बढ़ती हुई अनन्तकाल के समुद्र में जा मिलेगी।

मैं चला ही जा रहा था। लेकिन अचानक मुझे रुक जाना पड़ा। मैंने देखा कि एम्बुलेन्स के कुछ लोग एक स्ट्रेचर पर लिटा कर एक निर्जीव देह को बाहर रास्ते पर ले आये। और साथ ही साथ अनगिनत लोगों की निर्लज्ज कौतूहल-भरी नजरें मानो उस औरत की मृत देह के ऊपर गिद्ध की भांति टूट पड़ीं।

रात के अंधेरे में जिसे कुतर-कुतर कर खाने के लिए गांठ के पैसे खर्च करने पड़ते थे, इस समय उसे मुफ्त में जी भर कर देखो। इसके लिए तुम्हें फूटी कौड़ी भी खर्च नहीं करनी होगी।

और ताज्जुब की बात यह थी कि न जाने कब मैं भी उन उतावले दर्शकों के बीच जा खड़ा हो गया था, यह मुझे ख्याल ही नहीं रहा। मैंने देखा कि स्ट्रेचर पर एक औरत की मृत देह रखी हुई थी और उसकी साड़ी जगह-जगह पर खून के धब्बों से लाल हो गयी थी।

बगल के आदमी ने हठात् कहा—वीणा मर कर जी गयी है। मैंने घूमकर उस आदमी की तरफ देखा। उसे देखने पर ऐसा लगा कि वह आस-पास का कोई दुकानदार होगा। शायद उस आदमी की चाय की दुकान होगी या फिर मोदीखाने की। बारह नंबर के मकान में भी उसी की दुकान से सामान जाता रहा होगा। उन सब पुरानी यादों के कारण ही शायद उसके मुंह से यह बात निकल गयी होगी।

मैंने पूछा—"शायद आप वीणा को पहचानते थे ?"

उस आदमी का चेहरा और भी गंभीर हो गया। उसने कहा—"पहचानूंगा क्यों नहीं ? वीणा के घर में मेरी दुकान से ही तो चाय भेजी जाती थी। वह बड़ी भली थी बेचारी।" उसके बाद वह फिर बुदबुदाने लगा—"अच्छा ही हुआ है। वह मर कर भी जी गयी···।"

मैंने उन्हें खोदते हुए फिर पूछा—"क्यों, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? उसे बहुत तकलीफ थी क्या ?"

उस आदमी ने कहा—"तकलीफ की बात कह रहे हैं आप ? सच पूछिये तो क्या ऐसी रूपसी औरत को आज इस बारह नंबर के नरक में रहना चाहिए था ! उसे तो राजरानी बनना था साहब, राजरानी ! उसके बजाय उसे यहां जितने भी गुंडे-बदमाश थे, सबों की रुपयों के लिए खातिर करनी थी। रुपयों के लिए इस औरत

ने क्या नहीं किया ?"

उधर एम्बुलेन्स का पिछला दरवाजा खोला जा चुका था। मृत देह को एम्बुलेन्स के भीतर रखते वक्त उसका मुंह दाहिनी तरफ से बायीं तरफ घूम गया। साथ ही साथ मैं चौंक उठा। यह तो वही चेहरा-मोहरा था। हां-हां वही···। बायें गाल का वह तिल तो मेरा जाना-पहचाना था।

एकाएक मानो मेरी धमनियों का रक्त-प्रवाह रुक गया। गौरीनाथ शास्त्रीजी के ज्योतिष कार्यालय में तो मैंने इसे ही देखा था। लेकिन ऐसा हुआ कैसे ?

मेरे पास वह आदमी अब तक खड़ा था। मैंने उनकी तरफ देखते हुए पूछा—"अच्छा, क्या आप बता सकते हैं कि इस औरत का एक लड़का भी था—यही करीब बीस-इक्कीस साल का ?"

उस आदमी ने कहा—"अजी साहब, वही लड़का तो कल रात अपनी मां के पास आया था। वही तो अपनी मां का खून करके भाग निकला है। इसी लड़के की वजह से ही तो वीणा का जीना हराम हो गया था।"

"अच्छा, ऐसी बात थी क्या ? लेकिन क्यों ?"

उस आदमी ने कहा—"फिर वही क्यों ? भाई रुपयों के लिए, सिर्फ रुपयों के लिए। वह लड़का रोज आकर अपनी मां को रुपयों के लिए तंग करता था।"

मेरे दिमाग में भारी उथल-पुथल मचने लगी। एक दिन जिसका प्रारम्भ देखा था, उसका इस तरह फिर अन्त भी देखना होगा—ऐसा मैंने कभी सोचा भी नहीं था।

हम लोगों की बात खत्म होने के पहले ही पुलिस लाठी चलाकर भीड़ को खदेड़ने लगी। भीड़ को हटाये बिना एम्बुलेन्स गाड़ी वहां से निकल नहीं पा रही थी। पुलिस के डण्डे की मार से बचने के लिए भीड़ के लोग इधर-उधर छिटक पड़े। और साथ ही साथ हमारे बगल से एम्बुलेन्स गाड़ी सों-सों करती और धुआं उड़ाती बड़े रास्ते की तरफ चली गयी।

जब मैं कॉलेज में पहुंचा, तब तक दो क्लास पहले ही निकल चुकी थीं। और तीन क्लास बाकी थीं। लेकिन पढ़ने में मन नहीं लग रहा था। घूम-फिर कर मन बार-बार उदास हो जाता था।

जिंदगी का एक-एक अर्थ ढूंढ निकालने के लिए बहुत दिनों से कोशिश कर रहा था। जिंदगी भी तो नदी की तरह है। एक उद्गम से निकलकर बहुत-सी बाधाओं-विपत्तियों और रुकावटों को पार कर वह एक दिन समुद्र में मिलकर पूर्णता प्राप्त करती है। यही थी मेरी धारणा। इसी धारणा को लेकर जीवन-पथ पर आगे बढ़ता जा रहा था। मैं समझता था कि एक दिन मैं भी दुनिया के और मनुष्यों की तरह महाकाल के समुद्र में जाकर पूर्णता को हासिल करूंगा। लेकिन जिस दिन से मैंने गौरीनाथ शास्त्री की बैठक में बैठना शुरू किया था, उस दिन से ही किताबें

पढ़कर मेरी जो धारणा बनी हुई थी, वह बिलकुल उलट-पलट हो गयी। मैंने ऐसा समझ लिया कि गणित के द्वारा दुनिया में और किसी भी चीज की जो कुछ भी व्याख्या भले की जाये, लेकिन जिन्दगी का हिसाब कुछ अलग ही है। जिन्दगी के मामले में गणित के प्रचलित फारमूले काम नहीं करते।

कॉलिज से लौटते वक्त मैं फिर निमू गोस्वामी लेन की तरफ नहीं गया। मैं श्यामबाजार की बस में बैठकर सीधा चला गया और श्यामबाजार के पंच-राहे पर उतरा। वहां से मैं सीधा गौरीनाथ शास्त्रीजी के ज्योतिष-कार्यालय में जा पहुंचा।

वहां जाकर मैंने देखा कि उनके घर के सामने एक गाड़ी खड़ी थी। गाड़ी का रूप-रंग देखने पर ऐसा लगा कि जो सज्जन इस गाड़ी के मालिक हैं, वे साधारण आदमी नहीं हैं। वे जरूर सम्भ्रान्त और धनी-मानी व्यक्ति हैं।

मैं जब सोच ही रहा था कि भीतर जाऊं या नहीं, तभी भीतर से आकर एक सज्जन उस गाड़ी में जा बैठे। और साथ-ही-साथ ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। मिनटों के भीतर वह गाड़ी आंखों से ओझल हो गयी। और जब मैं भीतर गया तो मुझे देखते ही गौरीनाथ शास्त्री ने पहचान लिया।

उन्होंने कहा—"आओ बेटे, कितने दिनों के बाद आये हो! क्या बात है, बोलो?"

मेरा चेहरा देखकर ही वे शायद समझ गये कि कोई खास बात जरूर है।

उन्होंने कहा—"बैठो, बैठो बेटे। बहुत दिनों तक तुम आये नहीं। बोलो, घर की क्या खबर है?"

मैंने कहा—"मैं आपको एक खबर देने के लिए आया हूं शास्त्री जी। आपने जो कुछ बताया था, वह तो ठीक-ठीक मिल गया है।"

"क्या बताया था मैंने? क्या ठीक-ठीक मिल गया है?"

मैंने उन्हें वह पुराना किस्सा याद दिला दिया। मैंने कहा—"उस दिन रिमशे में एक महिला आपके घर आयी थी। आपने उसके लड़के की जन्म-पत्री देखकर कहा था कि उसका राहु चतुर्थ स्थान में नीचस्थ है। उसकी मां पर खूब भारी विपत्ति आने वाली है। क्या आपको याद नहीं? आपने कहा था कि राहु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा चल रही है…।"

गौरीनाथ शास्त्री जी के होठों पर मानो एक अजीब-सी मुस्कराहट तैर गयी।

"क्या आपको कुछ याद आ रहा है? उस महिला का आज हमारे घर के नजदीक खून हो गया है। उसके लड़के ने ही उसका खून किया है।"

मैंने सोचा था कि शास्त्री जी मेरी बातें सुनकर चौंक उठेंगे। किंतु नहीं, उनके चेहरे पर कोई भी भाव-परिवर्तन नहीं हुआ। सब कुछ सुनने के बाद उन्होंने कहा—"यही तो, थोड़ी देर पहले जो सज्जन गाड़ी में बैठकर चले गये हैं, वे ही हैं उस महिला के पतिदेव। थोड़ी देर पहले ही वे मुझे सब कुछ बता गये हैं। अपनी स्त्री

के खून की खबर सुनकर वे मेरे पास अपनी जन्म-पत्री दिखाने आये थे।"

"क्या सचमुच ? तो फिर उन्हें भी खबर मिल चुकी है ?"

"हां, स्त्री की मृत्यु और लड़के की गिरफ्तारी—सारी खबरें उन्हें मिल चुकी हैं। मैंने देखा कि वे खूब ही परेशान थे। यह देखो ना, वे मुझे अपनी जन्म-पत्री दे चुके हैं।"

"उनकी जन्म-पत्री में आपने क्या देखा ?"

शास्त्री जी ने कहा—"इसका भी वही हाल है। सप्तम स्थान में राहु नीचस्थ है। स्त्री सुख बिलकुल नहीं।"

"लेकिन उनकी स्त्री वेश्या क्यों बन गयी ?"

शास्त्री जी ने कहा—"देखो बेटे, पति का बड़ा ही नाम-धाम है। खूब ही बड़ी नौकरी है, हजारों रुपयों की···। लेकिन बेटे, राहु ठीक अपना काम कर रहा है। इनकी भी राहु की दशा चल रही है। पिता, माता और पुत्र—तीनों का राहु भी नीचस्थ है। पति का राहु सप्तम स्थान में नीचस्थ है, स्त्री का राहु पंचम स्थान में नीचस्थ है और फिर लड़के का राहु चतुर्थ स्थान में नीचस्थ है। यह भी बड़ा ही विचित्र योग है। पति अपनी रूपवती स्त्री के होते हुए भी रखैल के प्रति आसक्त है, स्त्री पति के रहते हुए भी पति से प्रतिशोध लेने के लिए अपनी मर्जी से वेश्या बन गयी है। और फिर लड़के का मातृ-घाती होने का योग था। तुम यह सब नहीं समझ सकोगे बेटे, नहीं तो मैं तुम्हें सब कुछ समझा देता। पराशर मुनि की वाणी कभी भी मिथ्या हो ही नहीं सकती।"

मैं कुछ समझना नहीं चाहता। जो अदृश्य या अज्ञात है, उसे मैं देखना और जानना भी नहीं चाहता। लेकिन यह घटना देखने के बाद सिर्फ एक बात जानने की मेरी इच्छा होती है। विधाता-पुरुष से सिर्फ एक ही सवाल पूछने को जी चाहता है। तुम्हारे अपने हाथों से घड़ी गयी यह सृष्टि जब इतनी सुन्दर है, इतनी विचित्र है; तो फिर उसके बीच इतना दुख, इतनी पीड़ा और इतनी हिंसा क्यों है ? और फिर इस तरह जिनका ध्वंस करना तुमने तय ही कर रखा है, भला उनकी तुमने सृष्टि ही क्यों की है ? यह तुम्हारा कैसा परिहास है ?

जिन्दाबाद

मां-बाप ने उसका यह नाम क्यों रखा, पता नही ! बीच-बीच मे इसका कारण जानने की मेरी इच्छा होती । लेकिन कभी भी तो इसके बारे में मैं कुछ पूछ नही पाया । और सच तो यह है कि ये सारी बातें पूछना भी ठीक नही ।

फिर भी मैंने एक दिन पूछ ही लिया था—"अच्छा राजा, तुम्हारा नाम किसने रखा था—बताओ तो !"

राजा रोज ही मेरे घर के सामने से आया-जाया करता । और कभी-कभी ऐसा भी होता था कि महीनों तक वह नदारद रहता । बिल्कुल गायब''' ।

राजा मेरा खूब प्रेमी हो, ऐसी भी कोई बात न थी ।

दरअसल मेरे घर के सामने से ही लोगों के आने-जाने का रास्ता गुजरता है । जिस तरह मैं रास्ते पर चलने वाले हरेक आदमी को देख पाता हूं, उसी तरह राह-चलता कोई भी आदमी गर्दन घुमाते ही मुझे भी देख सकता है ।

बड़ा ही दुखी प्राणी था यह राजा । सुबह से शाम तक खून-पसीना एक करने पर भी वह बेचारा अच्छी तरह अपने परिवार का भरण-पोषण नही कर पाता । मैली-कुचैली धोती, फटा-पुराना कुरता और पैरों मे घिसी हुई चप्पलें''' । उसके बालो में मैंने कभी भी तेल लगा हुआ नही देखा ।

सो कलकत्ता शहर में राजा-सरीखे बहुतेरे दुखी आदमी हैं । सिर्फ राजा ही क्यो, राजा की भांति करोड़ों लोगों को घर-गिरस्ती चलाने मे नाकों-चने चबाने पड़ते हैं । उनको देखते तो सभी हैं; परन्तु उनकी जैसी पहचान मुझे है, वैसी शायद और किसी को न होगी ।

मेरा स्वभाव कुछ ऐसा ही है । जिनका दुनिया मे कोई नही, जिनके पास कुछ भी नही—उन्ही के साथ मेरा मेल-मिलाप है, प्रेम है । उनके साथ घुल-मिल जाने पर मुझे ऐसा लगता है कि मानो मैं उन्ही का एक आदमी हू । उनके बीच आने पर मुझे बड़ी शान्ति मिलती है ।

इसीलिए मैं बहुधा अपने घर के सामने से गुजरने वालो को पुकार लिया करता था । उनमें से कोई जाता बाजार से सौदा लाने, तो कोई जाता गगा-स्नान करने के लिए ।

मैं उनमें से बहुतों को बहुधा घर के भीतर बुला लिया करता। बीच-बीच में उन्हें चाय भी पिलाता…। मैं उनसे देश का हाल-चाल पूछा करता। मैं उनकी बातें बड़े गौर से सुना करता। उनके साथ बातचीत करना मेरे लिए बड़ा ही फायदेमन्द होता…।

मान लीजिए कि कभी चक्रवर्ती बाबू बाजार से लौट रहे होते। मैं उन्हें बुलाता और पूछता—"क्यों चक्रवर्ती बाबू, बाजार में मछली का क्या भाव है ?"

चक्रवर्ती बाबू जवाब देते—"मछली के बारे में बस कुछ न पूछिए। साहब, आग लग गई है, आग… । मैं तो मछली को हाथ से छूने तक की भी हिम्मत नहीं जुटा सका।"

उसके बाद झोले का मुंह खोलकर दिखाने लगते चक्रवर्ती बाबू। कहते—"यह देखिए, थोड़ी-सी झींगा-मच्छी लाया हूं। वह भी मिली है आठ रुपये किलो की दर से। आदमी क्या खाकर जिन्दा रहेगा, बताइये तो ?"

कोई रोना रोता मछली का, कोई कपड़ों का तो कोई चावल-दाल का। इसका कोई अन्त न था। और मेरी उत्कंठा की भी कोई सीमा नहीं थी। मैं सारी बातें सुनना चाहता, जानना चाहता।

या फिर कोई मुझसे ही पूछ बैठता—"कैसा लग रहा है आपको ?"

मैं उसकी बात समझ नहीं पाता। पूछता—"आपका मतलब ?"

वह कहता—"अजी साहब, इस देश का भविष्य आपको कैसा लग रहा है ? क्या इस देश की हालत कभी सुधरेगी ?"

मैं कहता—"सुधरेगी क्यों नहीं ? पहले की तुलना में अब हम जरूर बेहतर हालत में हैं।"

वह कहता—"खाक बेहतर हालत में हैं जनाब, खाक…। पहले मैं पांच चवन्नी लेकर बाजार जाया करता था। आप विश्वास कीजिए, यह झोला बिल्कुल भर जाया करता था। साग-सब्जियों से झोला इतना भारी हो जाया करता था कि उठाये ही नहीं उठता था। और अब ? और अब यह देखिए। दस रुपये लेकर बाजार गया था, उनमें से ये तेरह पैसे बाकी बचे हैं।"

यह कहकर वह अपनी मुट्ठी खोल कर तेरह पैसों के सिक्के दिखाने लगता।

देश की, समाज की या आम आमदनी की समस्याओं के बारे में मैं जितना ही सुनता, उतना ही मुझे अच्छा लगता। लेखक आम आदमियों से जितना ही अलग-अलग रहेगा, उतना ही उसे नुकसान होगा। यही समझ कर मैं प्रतिदिन कुछ घंटे लोगों से मिलने-जुलने में बिता डालता।

हम लोगों का मुहल्ला है मध्यवित्त लोगों का मुहल्ला। उनमें से कोई वकील है, कोई डाक्टर है तो कोई क्लर्क। वैसे कोई-कोई खानदानी बेकार भी मिल जायेगा…! किन्तु कोई कुछ भी हो, सबों के साथ मेरी घनिष्ठता है। वे सभी

मेरे ऊपर भरोसा रखते हैं और अपने मन की बातें मुझसे कहा करते हैं। इसी वजह से उनके सभी अभाव-अभियोग और सुख-दुख की पूरी खबर मुझे रहती।

पंडितों ने कहा है कि साहित्य अवकाश का प्रतिफल है, आलस्य या नहीं। साहित्य-सृजन के लिए पर्याप्त अवकाश चाहिए। साहित्य कुछ ऐसा नहीं है कि बस चट मंगनी, पट ब्याह'''! इसीलिए मुहल्ले के लोगों से मिलने-जुलने का मैं सर्वदा आग्रही रहा हूं। मेरे लगातार आग्रह और आतंरिक सहानुभूति के कारण ही लोग कुछ समय के लिए मेरे पास आते, बैठते और अपने सुख-दुख की गाथा सुनाते। और उसके बदले में वे चाहते सहानुभूति, सहयोग और सही परामर्श।

यह तो हुई दिन की दिनचर्या। लेकिन रात में ?

जो कुछ भी एकान्त मुझे मिलता, वह रात में ही। रात की उस निस्तब्धता और नीरवता के बीच मैं और कुछ भी नहीं होता, होता सिर्फ एक लेखक''' । उस समय सभी दल बनाकर अपने छाया-शरीर के साथ मेरे कमरे में आ धमकते। सबों की होती ढेर-सारी समस्याएं, सबों के होते अनगिनत अभियोग''' । सभी मिलकर मुझे भाराक्रान्त कर डालते। उस समय वे छाया-मूर्तियां बड़ी ही निर्ममता से मेरे ऊपर हमला करतीं, मुझे उत्पीड़ित और विपर्यस्त कर डालतीं '''। लिखते समय कलम की नोक से रोशनाई के बजाय खून की धारा बहने लगती।

एक दिन फिर मैंने पूछा—"अच्छा राजा, तुम्हारा नाम किसने रखा था ?"

राजा ने जवाब दिया—"भला और कौन मेरा नाम रखता ? शायद पिताजी ने ही रखा होगा।"

मैंने फिर कहा—"सो इतने नाम होते हुए यह 'राजा' नाम क्यों रखा गया ? तुम लोग तो गरीब आदमी हो। गरीब नहीं तो, निम्न-मध्यम श्रेणी के हो''' ।"

राजा हंस पड़ा। उसने कहा—"बहुत ही बढ़िया बात कही आपने। पिताजी मुझे राजा के नाम से क्यों पुकारा करते थे, कौन जाने। फिर भी मेरा असली नाम राजा नहीं है। मेरा असली नाम है राजेन। राजेन पाण्डे। मेरा पुकारने का नाम है राजा।"

मेरे घर के सामने से गुजरते हुए जब भी राजा की नजरें मुझसे मिलतीं,वह मुझे हाथ उठाकर नमस्कार करता।

वह पूछता—"लिख रहे हैं क्या ?"

मैं कहता—"नहीं-नहीं, मैं लिख नहीं रहा हूं। तुम भीतर चले आओ।"

राजा संकोच करते हुए मेरे कमरे में चला आता और एक कुर्सी पर बैठ जाता। उसके बाद वह कहता—"हो सकता है कि मेरे पास कोई काम न हो। मैं तो ठहरा बेकार आदमी। लेकिन मैं आपके काम में नुकसान नहीं करना चाहता।"

मैं पूछता—"क्या तुम चाय पीओगे ? चाय मंगाऊं क्या ?"

राजा मुझे मना करने लगता। कहता—"यह सब हुज्जत करने की जरूरत नहीं। चीनी की कीमत बढ़ते-बढ़ते साढ़े पांच तक जा पहुंची है। इसके बाद भी यह कहां तक बढ़ेगी, किसे पता है! उसके बजाय तो चाय पीनी ही छोड़ देना बेहतर है।"

मैं उसे दिलासा देते हुए कहता—"सो चाय की कीमत जिस तरह बढ़ रही है, उसी तरह तुम भी अपनी मजदूरी की रेट बढ़ा दो। भला तुम ही क्यों घाटे में रहोगे? आखिर तुम्हारी भी तो रोजी-रोटी का सवाल है!"

राजा कहता—"भला कौन समझता है इन बातों को? गरीबों की सुनवाई करने वाला है ही कौन?"

मैं पूछता—"क्यों, तुम्हारी आमदनी अब कम हो गई है क्या?"

राजा कहता—"आमदनी कम नहीं हुई! क्या कह रहे हैं आप? देखिए न, पिछले महीने एक भी मीटिंग नहीं हुई, एक भी जुलूस नहीं निकला। आपको कुछ पता भी है?"

मैं कहता—"ठीक ही तो कह रहे हो। अच्छा, कोई भी मीटिंग-वीटिंग क्यों नहीं हुई, बताओ तो।"

राजा कहता—"मैंने भी तो फेलू बाबू से यही सवाल पूछा था। अभी-अभी मैं फेलू बाबू से मिलकर ही तो आ रहा हूं।"

"फेलू बाबू? कौन हैं यह फेलू बाबू? मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाया।"

राजा कहता—"यह क्या? फेलू बाबू को आप पहचान नहीं पाये।"

दिमाग पर थोड़ा-सा जोर डालते ही बात मेरी समझ में आ गई। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के नाम इतनी जल्दी-जल्दी बदल जाते कि सब समय सबों का नाम याद नहीं रहता। आज अगर किसी पार्टी के प्रेसीडेण्ट का नाम दुर्गा बाबू है तो कुछ ही वर्षों में प्रेसिडेण्ट हो जाते हरि बाबू। कुछ ही वर्षों में हरेक पार्टी के प्रेसिडेण्ट बदल जाते। उस समय उन्हीं का नाम बार-बार अखबारों में छपता। पुराने प्रेसिडेण्ट का नाम तब लोग धीरे-धीरे भूल जाते। और फिर जिस तरह हमारे देश में पार्टियां अनगिनत हैं, उसी तरह अनगिनत हैं उनके प्रेसिडेण्ट अन्यान्य पदाधिकारी। एक-एक समय एक-एक पार्टी पैदा होती और मैदान में जाकर शहीद मीनार के नीचे मीटिंग करती। मीटिंग करने के लिए ही भीड़ जमा करनी पड़ती है। सिर्फ आदमियों को जमा करना ही काफी नहीं है। जुलूस भी निकालना जरूरी है। शहर के पूरब-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण चारों ओर लोग जुलूस बनाकर आयेंगे, 'इन्किलाब-जिन्दाबाद' के नारे लगायेंगे और उसके बाद मीटिंग में शामिल होकर भाषण सुनेंगे और तालियां बजायेंगे। लेकिन इतने लोगों को इकट्ठा कौन करेगा? गांव-गांव में जाकर किसानों को जमा करना और उन्हें कलकत्ता लाना कोई आसान काम तो है नहीं। पार्टी के नेता और

कार्यकर्ता हजार काम के लोग हों लेकिन भीड़ इकट्ठी कर पाना उनके बस का रोग नहीं। इसीलिए उन सबों को राजा की शरण में आना पड़ता।

यह राजा ही सारी पार्टियों का भरोसा था, सहारा था।

इसीलिए सभी राजा को पकड़ा करते। कहते—"राजा, हमें आदमियों की जरूरत है।"

राजा पूछता—"कितने हजार लोगों की दरकार है?"

"यही, दस हजार समझ लो।"

राजा कहता—"ठीक है। कब जरूरत है आपको?"

फेलू बाबू कहते—"अगले शनिवार को ही।"

राजा कहता—"देखिए जनाब, इस बार आदमी-पीछे दो रुपये देने से काम नहीं चलेगा। चीज-वस्त के दाम बहुत बढ़ गये हैं। आपको आदमी-पीछे तीन रुपये देने पड़ेंगे।"

फेलू बाबू कहते—"तुम हमारे साथ ही दर-मुलाई कर रहे हो राजा? हम तुम्हारी पुरानी पार्टी हैं। इतने दिनों से तुम्हारे साथ हमारा कारोबार चल रहा है। और आज तुम मेरे सामने ही उल्टा राग अलाप रहे हो? मैंने तुम्हें आज तक कितने रुपये दिये हैं, जरा इसका भी हिसाब लगाकर देखो तो।"

इसी राजा ने एक समय फेलू बाबू से आदमी-पीछे आठ आने भी लिये हैं। आठ आने से बढ़कर रेट हो गई एक रुपया। उसके बाद डेढ़ रुपये···। डेढ़ रुपये से फिर दो रुपये!"

ठीक ऐसे ही समय में हठात् बहुत दिनों तक राजा के साथ भेंट-मुलाकात नहीं हुई।

राजा मीटिंग और जुलूस के लिए आदमियों की सप्लाई किया करता था, यह बात मैं पहले से ही जानता था। इसीलिए जब मेरे घर में लोग जुटते तो बहुधा यह सवाल उठता—"राजा का क्या हाल-चाल है आजकल?"

मैं कहता—"वह शायद इस समय अपने धन्धे में ही डूबा हुआ है।"

भादों के महीने में ही राजा ज्यादा व्यस्त रहता। उस समय उसे नहाने और खाने का भी समय नहीं मिलता। एक फटा हुआ छाता हाथ में लिये वह दक्षिण से पश्चिम और पश्चिम से उत्तर की ओर चक्कर काटा करता। सभी तरफ उसके एजेण्ट रहते। वे गांव-गांव में और हाट-बाजार में घूमते और लोगों का नाम-ठिकाना खाते में लिखते और आदमियों का हिसाब लगाते। किसी गांव में पचास आदमी जुटते, किसी में तीस तो किसी में सिर्फ दस। इस तरह हजारों-हजार नामों की फेहरिस्त राजेन पाण्डे के रजिस्टर में लिखी रहती।

मान लीजिए कि हठात् एक दिन राजा गोपालगंज जा धमका।

"क्या पाचू घर पर है? पाचू, ओ पाचू···!"

गोपालगंज का पाचू उस समय घर पर नहीं था। घर पर थी उसकी वहू। घूंघट निकाले वह बाहर आई।

राजा ने पूछा—"तुम्हारा आदमी कहां है ?"

घूंघट के भीतर से ही पाचू की वहू ने जवाब दिया—"वे तो खेत पर गये हैं।"

राजा ने पूछा—"खेत से कब वापस लौटेगा वह ? तुम जाकर उसे बुला लाओ। कहना कि ठेकेदार बाबू आये हैं। मैं यहीं बैठा हूं··· ।"

पाचू की वहू पाचू को खेत से बुला लाई। ठेकेदार बाबू को देखते ही पाचू के होठों पर मुस्कराहट थिरकने लगी। राजा उस समय घर के सामने आम गाछ के नीचे खटिया पर बैठा था। उसने एक बीड़ी भी सुलगा ली थी। पाचू उसके सामने आकर बैठ गया।

उसने कहा—"अचानक कैसे आ पहुंचे ठेकेदार बाबू ?"

राजा ने पूछा—"बड़ी मुसीबत में हूं। इसीलिए तुम्हारे पास दौड़ा चला आया हूं।"

पाचू ने पूछा—"क्या मुसीबत आ गई है, बाबू ?"

राजा ने कहा—"फेलू बाबू ने फिर बुलाया था उनके लिए कुछ आदमी जुटाने पड़ेंगे। तुम्हारे हाथ में कुछ आदमी हैं तो···?"

पाचू ने कहा—"आदमी तो जाने को तैयार बैठे हैं। वे तो खुद मेरा दिमाग चाटे जा रहे हैं। अगर आप नहीं आते, तो मैं खुद आपके पास मुलाकात करने के लिए जाता।"

राजा कहने लगा—"मुझसे कुछ छिपा हुआ है रे ? मुझे भी तो खटकर खाना पड़ता है। मुझे काम मिलेगा, तभी तो तुम लोगों को भी काम दूंगा। यही बात तो मैं उस दिन फेलू बाबू से कह रहा था।"

पाचू ने कहा—"लेकिन बाबू, उस बार जो हम लोग कलकत्ता गये थे, हमें भारी मुसीबत उठानी पड़ी थी।"

राजा ने पूछा—"क्यों ? मुसीबत कैसी ? तुम लोगों को कुछ खाने-पीने को नहीं मिला क्या ? सबों को तो चाय-पावरोटी दी गई थी।"

पाचू ने जवाब दिया—"राजा बाबू, पावरोटी बासी थी, खट्टी हो गई थी। हमारे तीन आदमियों को तो पावरोटी खाने के बाद उल्टियां होने लगी थीं।"

राजा ने कहा—"मैंने फेलू बाबू से कह दिया है कि इस बार सबों को ताजा पावरोटियां देनी होंगी। और उसके साथ दो-दो जलेबियां और गरम चाय।"

पाचू ने कहा—"लेकिन अब दो रुपयों में काम नहीं चलेगा। रेट बढ़ानी पड़ेगी।"

राजा ने झिड़कते हुए कहा—"यही तो तुम लोगों में बड़ी बीमारी है। जब तुम लोगों को मैं आदमी-पीछे आठ आने देता था, तब भी तुम खुश नहीं थे और

अब जब रेट दो रुपयों की हो गई है, तब भी तुम खुश नहीं हो। तो फिर तुम लोगों को किस तरह खुश किया जा सकता है, बताओ तो? तुम लोगों का भला काम हो ऐसा क्या भारी है, जरा मैं सुनूं भी तो! आराम से रेल में बैठकर जाओगे और सियालदह स्टेशन पर उतरकर चार कदम चलकर शहीद मीनार के नीचे मीटिंग में भाषण सुनोगे। बड़े-बड़े नेता भाषण देंगे, क्या उनका भाषण तुम लोगों को अच्छा नहीं लगता? उसके बाद खाना-पीना तो है ही। दाल-भात और बैंगन-भाजा भरपेट खाकर फिर सरकारी रेल में बैठकर नवाबी चाल में तुम लोग गांव लौट आओगे। क्या इतने में ही तुम्हारे बदन में फफोले पड़ जायेंगे?"

पाचू ने कहा—"लेकिन इस बार धान की फसल बिल्कुल मारी गई है। हम लोग आखिर खायेंगे क्या?"

राजा ने कहा—"ठीक है, धान की फसल अच्छी नहीं हुई है। न सही…। लेकिन पाट की फसल तो हुई है। पाट की तो दर बढ़ गई है। सरकार ने भी तो पाट की दर बांध दी है।"

पाचू ने कहा—"सरकार ने खाक दर बांध दी है, खाक। पहले भी पाट के आढ़तियों के हाथ में सब कुछ था और आज भी है। वे जैसा चाहते हैं, वैसा नाच नचाते हैं। हमारी किस्मत में तो एक नया पैसा भी नहीं जुटता। अब भी उन्हीं आढ़तियों की ही चांदी है।"

सरकार का यह चक्रान्त भी बड़ा विचित्र है।

राजा ने यह किस्सा भी मुझे बताया था।

उसने कहा था—"आप लोग अखबारों में पढ़ते होंगे कि किसानों की भलाई के लिए सरकार ने पाट का दाम बांध दिया है। यह सब बकवास है साहब, कोरी बकवास…। क्या इसकी भीतरी बात आप जानते हैं?"

मैंने कहा—"तुम्हीं बताओ, राजा।"

यह बड़ी ही विचित्र धोखाधड़ी की कहानी है। इस तरह की धोखाधड़ी भी हो सकती है, यह मुझे मालूम न था। गांव से दस-दस मील की दूरी तय कर किसान अपना पाट बाजार में लेकर आते। बैल-गाड़ी में पाट लादकर पाचू और दूसरे किसान बाजार में आते। कितने दिनों के परिश्रम की फसल होती वह। सरकार ने 'जूट कारपोरेशन' बना दिया है। पाट की सरकारी दर है तिहत्तर रुपये। पाट के किसानों की भलाई के लिए ही सरकार ने यह व्यवस्था की है। लेकिन जब किसान अपना पाट लेकर बाजार में जाते, तब सारा नक्शा ही बदल जाता।

मैनेजर कांटे के पल्ले पर पाट रखते-रखते पाट के भीतर मीटर घुसा देता और कहता—"यह पाट तो भीगा हुआ है। ऐसा भीगा हुआ पाट क्यों लाये हो?"

पाचू और उसके साथी प्रतिवाद करते। कहते—"नहीं हुजूर···। हम लोग
गा हुआ पाट नहीं लाये हैं। यह देखिए न, बिल्कुल सूखा पाट है।"

मैनेजर कहता—"तुम सब-के-सब गधे हो। यह क्या मैं कह रहा हूं कि पाट
ला है! यह तुम्हारे सामने ही तो मीटर है। खुद अपनी आंखों से ही देख लो
! मैं झूठ कह सकता हूं, पर यह मीटर तो झूठ नहीं कहेगा।"

पाचू और उसके साथी पूछते—"तो फिर क्या दर लगायेंगे आप साहब?"

मैनेजर कहता—"दर और क्या लगाऊंगा? मन में दस केजी कम मिलेगा।"

मन में दस केजी कम! यह सुनते ही सब-के-सब चौंक पड़ते। अगर यही बात
है तो भला आढ़तिये ही क्या बुरे हैं?

आखिरकार मन मारकर सभी आढ़तियों के पास चले जाते। आढ़तिये तिहत्तर
रुपयों का भाव नहीं लगाते। वे भाव लगाते थे साठ रुपयों का।

यही सही! इतनी मेहनत से पैदा की गई फसल लाकर फिर लौटाकर वे
वापस तो नहीं ले जा सकते। इसलिए लाचार होकर उन्हें आढ़तियों के पास ही
पाट बेचना पड़ता।

किसानों को उन कुछेक रुपयों को ही कमर में बांधकर वापस घर लौटना
पड़ता। लेकिन काफी रात गये जब बाजार निर्जन हो जाता, तब 'जूट कारपोरेशन'
के मैनेजर आढ़तियों के अड्डे में चले आते। रात ही में उनकी बैठक वहां अच्छी
तरह जमती। उस समय वहां दिन-भर की लेन-देन का हिसाब होता। दूसरे दिन के
लिए पाट का भाव-ताव भी तय हो जाता।

वहां पहुंचते ही सभी आढ़तिये मैनेजर से कहते—"आइए मैनेजर बाबू,
आइए।"

फिर चाय-पान और सिगरेट का दौर चलता। और अगर सर्दी का मौसम
होता तो शराब भी आती। मैनेजर को शराब पिलाकर खुश करने में किसी को
भी आनाकानी नहीं थी। वह मैनेजर उन लोगों का कितना फायदा करा देता था।
जो आदमी फायदा कराता हो, उसे तो खुश रखना ही पड़ेगा।

सो मैनेजर बाबू थोड़ी-सी खातिर करने पर ही खुश हो जाते।

लेकिन क्या भर-पेट खिला देना ही काफी है? खाने-पीने के साथ नगद रुपयों
की भी जरूरत पड़ती। मैनेजर बाबू का वहां महीना बंधा हुआ था। महीने के पांच
सौ रुपये तय थे। मौके-बेमौके उपहार भी देने होते।

यही है किसानों की राम-कहानी। खेती-बारी करनी होगी और फिर फसल
बेचते समय आढ़तियों के दरवाजे पर लुटना भी होगा।

राजा ये सारी बातें मुझे बताया करता। फेलू बाबू से भी इन घटनाओं का जि

करता। सरकारी महकमे में जहां कहीं भी वह भ्रष्टाचार देखता, हर जगह उसकी कहानी सुनाता फिरता। राजा मन-ही-मन बड़ी तकलीफ पाता···।

राजा कहता—"यह सब और ज्यादा दिनों तक चलने वाला नहीं।"

मैं राजा की बात समझ नहीं पाता। पूछ बैठता—"क्या चलने वाला नहीं ?"

राजा जवाब देता—"यही पार्टीबाजी, और क्या ? जितना देखता हू जनाब, उतनी ही आखें खुल रही हैं मेरी। जैसे फेल बाबू, वैसे ही आप लोग ! कोई गरीब के बारे मे सोचता नहीं। किसान पसीना बहाकर धान और पाट की फसल उगायेंगे और महाजन अपने घर में बैठे-बैठे मलाई खायेंगे। यह सब और ज्यादा दिनों तक चलने वाला नहीं है।"

उसके बाद राजा फिर कहता—"अच्छा अब चलता हूं।"

राजा जाते-जाते कह जाता—"छोड़िए भी, मैं इन सबके बारे मे इतनी माथा-पच्ची नहीं करता। जो होगा, देखा जायेगा···।"

राजा की बातें सुनकर मुझे ऐसा लगता कि मानो सारे देश की फिक्र अकेले राजा को ही है। लेकिन उस राजा को ही किसी-किसी दिन मैं बहुत खुश पाता। कलकत्ते में मीटिंग होते ही राजा के होठों पर हसी फूट पड़ती। रास्ते पर जब मैं किसी लम्बे जुलूस को गुजरता हुआ देखता, तो मैं समझ जाता कि वे सभी राजेन पाइड़ के आदमी हैं। आस-पास के गांवों से पकड़कर लाये गये लोग···। खेत-खलिहानों के मजदूर। खाली पैर, नगे बदन···। आदमी-पीछे दो रुपये या तीन रुपये पाने के लोभ मे ये कलकत्ता आये हैं। वे सभी पैदल ही शहीद मीनार की तरफ बढ़े जा रहे हैं। नारे लग रहे हैं—'इन्किलाब-जिन्दाबाद···'। सबों के हाथों मे हैं लाल झण्डे। और फिर दूसरे ही दिन देखता कि उन्हीं लोगों के मुह से 'वन्दे-मातरम्' के नारे निकल रहे हैं और उनके हाथों मे हैं तिरंगे झण्डे।

ऐसे भी दिन गुजरे हैं जब हर रोज मीटिंग होती और हर रोज जुलूस निकलते। जुलूस के कारण रास्ते पर बसें और ट्रामें रुकी रह जाती। सारा कलकत्ता महा-नगर उस समय रुक जाता, थम जाता···। जब भी मैं ऐसी हालत देखता, तभी मुझे राजा की याद आ जाती। राजा के पिताजी का भी यही कारोबार था और राजा भी उत्तराधिकार के रूप में यही धन्धा चला रहा था।

इसलिए जब भी राजा को देखता, मैं उसे प्यार से अपने घर में बुलाता और अपने पास बैठाता।

मैं पूछता—"कैसा चल रहा है, राजा ?"

राजा हस पड़ता। कहता—"साहब, यह महीना बुरा नहीं गया। इस महीने मे छह जुलूसों का काम मिला था।"

मैं कहता—"तब तो बढ़िया ही कमाई हुई होगी।"

राजा मानो अधिक खुश नहीं हो पाता। कहता—"ऐसी कौन-सी कमाई हो

गई साहव ? छोटे जुलूसों में भला वचता ही क्या है ? करीव एक लाख लोगों का आर्डर मिलने पर फिर भी कुछ लाभ होता। यह सव दस हजार-वीस हजार आदमियों का आर्डर भी भला कोई आर्डर है क्या ? आजकल गांव के किसान भी वड़े चालू हो गये हैं।"

मैं पूछता—"कैसे ?"

राजा कहता—"हां सर, गांव के किसान-मजदूर भी जान गये हैं कि मैं रुपये लेकर जुलूस और मीटिंग के लिए आदमियों की सप्लाई करता हूं। पहले वे खाली हाथ चले आते थे। वे चाय-पावरोटी के लोभ में ही जुलूस में चले आते थे। अव तो उन्हें रुपये देने पड़ते हैं, वे भी एडवांस।"

"सो इसमें तुम्हारा मुनाफा कैसा रहता है ?"

राजा कहता—"ज्यादा आदमियों का आर्डर मिलने पर मुनाफा कम नहीं है। यदि दस हजार आदमियों का आर्डर मिला है तो मैं करीव आठ-नौ हजार आदमियों को जमा करता हूं और मुंह से कहता हूं कि दस हजार लोग हैं। मैं उन्हें लाकर शहीद मीनार के नीचे या किसी पार्क में इकट्ठा कर देता हूं। वहां उन्हें कौन गिनने जाता है, वोलिए तो ? आठ-नौ हजार लोगों को दस हजार वता देता हूं। इस तरह मेरी जेव में भी कुछ रुपये चले आते हैं।"

सो जवकि इसी तरह सव ठीक-ठाक चल रहा था, तभी अचानक राजा के माथे पर गाज गिरी। सचमुच ऐसी भारी मुसीवत में राजा को फंसना होगा, शायद उसने पहले कभी सोचा भी नहीं था।

मैं भी राजा के वारे में ही सोच रहा था। चारों तरफ कितनी ही घटनाएं घट रही थीं, उस वीच राजा कहां गायव हो गया ? कलकत्ता महानगर में उस समय खून की नदी वह रही थी। शाम के वाद घर से निकलना भी खतरे से खाली नहीं था। अंधेरे में कौन किसके सीने में छुरा घोंप कर कहां गायव हो जायेगा, इसका कुछ ठीक नहीं। अंधेरा होते ही सव अपने-अपने घर के भीतर दुवक जाते। सिनेमा थियेटर खाली रहने लगे, लोग वहां जाते ही नहीं थे। उसी समय पाकिस्तान के साथ लड़ाई छिड़ गई थी।...देश में चारों ओर अराजकता व्याप्त थी।

मुझे याद है कि उसी समय चुनाव के वाद जव नई सरकार वनी, तव एक दिन राजा मेरे पास आ धमका।

उसे देखते ही मैंने कहा—"आओ, आओ...। वैठो राजा। क्या हाल-चाल है, वताओ ? काम-काज कैसा चल रहा है ?"

राजा वोला—"साहव, काम-काज वुरा नहीं चल रहा है। वहुत आर्डर मिले थे मुझे। प्रायः वीस जुलूसों का काम मिला था। एक-एक जुलूस के लिए चालीस-

पचास हजार लोगों की सप्लाई करनी पड़ी थी। बहुत दिनों के बाद मेरी जेब में भी कुछ रुपये आये हैं।"

राजा बड़ा खुश नजर आ रहा था। रूमाल से अपनी गर्दन का पसीना पोंछते-पोंछते उसने कहा—"घर की छत इस बार पक्की करवा ली है। बरसात में टीन के छप्पर से पानी चूता था। बाल-बच्चों को बहुत तकलीफ थी। इस बार सोचा कि जब हाथ में रुपये आये हैं, तो फिर देर करना ठीक नहीं। सो सब मिलाकर करीब पांच हजार रुपये खर्च हो गये हैं। सीमेंट का दाम भी तो सुरसा की तरह बढ़ता जा रहा है।"

मैंने कहा—"तब तो कहना चाहिए कि तुम्हारी आमदनी बढ़िया ही हुई है।"

राजा ने कहा—"हां साहब, सो तो ठीक है। अगर इसी तरह हरेक महीने आर्डर मिलता रहे, तो फिर मुझे कुछ भी दु:ख न रहे। फेलू बाबू से भी आज मैंने यही बात कही थी। मैंने कहा था कि इसी तरह आप लोगों की पार्टी बीच-बीच में यदि दो-चार जुलूस निकलवाये, तो हम गरीब आदमियों को भी दो मुट्ठी भात मिल सकता है।"

मैंने कहा—"सो तुम्हें काम बराबर मिलता रहेगा राजा। तुम्हें जुलूस के लिए बराबर आर्डर मिलता रहेगा, यह तुम्हें मैं बता रखता हूं।"

राजा मेरी बातों का मतलब समझ नहीं पाता। वह पूछता—"क्यों, यह आप कैसे कह रहे हैं?"

मैंने कहा—"हमारे देश में जहां दस आदमी जुटेंगे, वहीं पार्टी बनायेंगे। इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम्हारा यह धन्धा किसी भी दिन बन्द होने वाला नहीं है।"

और सच पूछिए तो हुआ भी वही। राजा का कारोबार दिनों-दिन फलने-फूलने लगा। राजा ने अपना घर बना लिया था। अपने पैतृक कारोबार को उसने खूब बढ़ाया था। कांग्रेस से शुरू कर जितनी भी पार्टियां देश में हैं, सभी पार्टियों के नेताओं के साथ उसका सम्पर्क था। जिस किसी पार्टी को लोगों की जरूरत होती, उसे ही राजा का दरवाजा खटखटाना पड़ता। इस लाइन में राजा ही कलकत्ते का भरोसेमन्द सप्लायर था।

मैं कहा करता—"आजकल तो तुम्हारी ही चांदी है, राजा। तुम्हारे ही पौ-बारह है। देखता हूं कि सभी पार्टियों को तुम्हारी ही तलाश रहती है। मैंने तो सुना है कि तुम्हारी मदद के बिना कलकत्ते में कोई जुलूस ही नहीं निकाल सकता।"

राजा जवाब देता—"सब ऊपर वाले की मेहरबानी है साहब। आप सब पांच आदमी मुझे प्यार करते हैं, यही मेरा सौभाग्य है।"

सो राजा के साथ मेरा पुराना परिचय है। उसे एक जमाने से देखता आ रहा हूं। उसे मैंने कभी भी अहंकार करते नहीं देखा। जब वह बिल्कुल गरीब था, तब भी उसे मैंने देखा है और अब जब कि उसकी हालत पार्टियों की कृपा से सुधर गई

है, तब भी उसे देख रहा हूं। उसमें कोई भी परिवर्तन या बदलाव नहीं आया है। बिल्कुल जस-का-तस…। हम लोगों के मुहल्ले में कभी भी आने पर वह हमारे घर में जरूर आता।

इसी राजा का आखिरी समय ऐसा आयेगा, यह भला किसने सोचा था?

सचमुच, यह बात कभी मेरे मन में भी नहीं आई थी।

राजा के साथ क्या हुआ, वही किस्सा सुनाता हूं।

इस समय के इतिहास पर कुछ रोशनी डालना जरूरी है।

दिल्ली से अचानक एक दिन सरकारी घोषणा हुई कि पूरे देश में आपात्-स्थिति लागू कर दी गई है। यानी जिसे अंग्रेजी में कहते हैं—'इमर्जेन्सी'।

उस समय कोई भी अपने मुंह से सच्ची बात नहीं निकाल पाता। समाचार-पत्रों में भी कोई सच्ची खबरें नहीं छाप सकता था। अगर कोई ऐसा करता तो उसे देश के 'आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम' के अन्तर्गत जेल में ठूंस दिया जाता।

वह एक बड़ी ही भयावह स्थिति थी।

रास्ते में, बाजार में और बस-ट्राम में फिर तो कोई भी अपना मुंह खोलने की जुर्रत नहीं करता। पहले बस में बैठकर दफ्तर जाते वक्त सभी राजा-वजीर मारा करते थे। प्रधान मंत्री हो या राष्ट्रपति ही क्यों न हो, कोई किसी की परवाह नहीं किया करता था। पृथ्वी के सभी लोगों की निन्दा करने में लोगों को अपार आनन्द मिला करता था।

इमर्जेन्सी के लागू होते ही सब कुछ उलट-पलट हो गया। चारों तरफ सन्नाटा-सा छा गया था। पहले लोग ऑफिस में देर से जाया करते थे। कोई भी देखने-सुनने वाला नहीं था। कोई अगर कुछ कहता भी तो उसे जवाब मिलता—बस नहीं मिली तो हम क्या करें। अथवा वे जवाब देते—लोकल ट्रेन लेट आई है। उसके बीच ही था यूनियन का झगड़ा-झमेला। हाजरी-बही में सही करके ही कितने ही आदमी यूनियनबाजी करने के लिए बाहर निकल जाते। और फिर मीटिंग और जुलूस भी तो थे ही। सभी शोर करते हुए कहते—'हमारी मांगें पूरी करो'।

किसकी क्या मांगें होतीं, क्यों होतीं, उसे कोई भी जान नहीं पाता। हम लोगों की मांगों का तो कोई अन्त नहीं है। हम सबों को सब कुछ मिलना चाहिए। दफ्तर में प्रवेश करते ही हजार रुपयों की तनख्वाह मिलनी चाहिए। एक सुन्दर बहू चाहिए। गाड़ी चाहिए, मकान चाहिए और चाहिए टेलीफोन…। और यह सब नहीं मिलने पर ही हम 'मांग-दिवस' का पालन करेंगे। हम कहेंगे कि अगर हमारी मांगें पूरी नहीं हुई तो मुख्य मंत्री को विदाई लेनी होगी, या फिर प्रधानमंत्री को अपनी गद्दी छोड़ देनी पड़ेगी।

लोगों ने मानो सुख-सन्तोष की सांस ली। पहले की तरह अब डर की कोई बात नहीं थी। सिनेमा देखकर निश्चिन्त होकर सीना फुलाये घर लौटिए, कोई कुछ कहेगा नहीं।

मुहल्ले के लोगों के होंठों पर फिर से हंसी उभर आई।

एक दिन चक्रवर्ती बाबू आये।

उन्होंने कहा—"साहब, चलिए जान बची।"

सचमुच सबों ने उस समय सोचा कि अब शायद रामराज्य का सूत्रपात हुआ है। दो-तीन वर्षों की अशान्ति के बाद उस समय कलकत्ते में पूरी तरह से शान्ति स्थापित हो गई थी। लेकिन आखिरकार यह शान्ति इतनी अशान्ति का कारण बनेगी, यह किसे मालूम था।

पहले-पहल राजा ने मुझे इसके बारे में बताया। राजा ने, यानी राजेन पाड्इ ने।

एक दिन मैं कहीं जा रहा था, हठात् राजा पर मेरी नजर पड़ी।

मैंने उसे वहीं से पुकारा—"राजा, ओ राजा⋯!"

मुझे देखते ही राजा मेरे पास चला आया।

मैंने देखा कि उसके गाल बिल्कुल पिचक गये थे। होंठों पर हंसी का नाम-निशान तक नहीं था। उसके हाथ का छाता फटा हुआ था। कुरता भी था फटा-पुराना और मैला-कुचैला⋯।

मैंने पूछा—"अपनी यह कैसी हालत बना रखी है तुमने राजा? बीमार-बीमार पड़ गये थे क्या?"

राजा को देखने पर ऐसा लगा कि बस रो देगा। राजा ने उदास स्वर में पूछा—"ये क्या हुआ बताइये तो?"

मैंने पूछा—" 'क्या हुआ' का मतलब?"

राजा ने कहा—"सरकार की ही बात कर रहा हूं। सरकार ने यह क्या कर डाला? हमारे-जैसे गरीब आदमियों को मारकर भला सरकार को क्या फायदा हो जायेगा?"

मैंने पूछा—"क्यों, सरकार ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

राजा ने कहा—"क्यों, आप तो ऐसी बात कर रहे हैं जैसे आपको कुछ पता ही न हो! मेरा तो सर्वनाश हो गया है, समझे!"

मैंने पूछा—"तुम्हारा क्या सर्वनाश हो गया है, राजा?"

राजा ने जवाब दिया—"मैं तो बिल्कुल बेकार हो गया हूं। फूटी कौड़ी की भी कमाई नहीं रही। अभी फेलू बाबू से मैं यही कह रहा था।"

सचमुच मैं राजा की बातें बिल्कुल ही समझ नहीं पा रहा था।

मैंने कहा—"मैं तुम्हारी बातें कुछ भी समझ नहीं पा [illegible] राजा [illegible]

सर्वनाश कैसे हो गया है, यह मुझे साफ-साफ बताओ ?"

राजा ने कहा—"आप कुछ नहीं जानते क्या ? मीटिंग-वीटिंग तो सब बन्द हैं आजकल। फेलू बाबू तो इन दिनों सिर्फ अखबार चाटते हैं और सोते हैं। उनके हाथ में कोई भी काम नहीं। और फिर नेताओं को तो जेल में ठूंस दिया गया है। जुलूस कौन निकालेगा ? मीटिंग करने पर ही पुलिस पकड़ लेगी। और फिर फेलू बाबू की पार्टी के तो प्रायः तीन हजार आदमी जेल में बन्द हैं।"

मैंने कहा —"तब तो तुम्हारी हालत सचमुच बहुत खराब है।"

राजा ने कहा—"हालत क्या ऐसी-वैसी खराब है ? दो वक्त बच्चों को भर-पेट भात भी नहीं मिल पा रहा है। सिर पर ढेर सारे रुपयों का कर्ज हो गया है। यह देखिए न, यह छाता टूट गया है। इसकी मरम्मत तक नहीं करवा पा रहा हूं। देश की यह क्या हालत हो गई, देखिए तो !"

मैंने कहा—"क्यों, तुम ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ? दूसरे लोग चाहे जो कहें, मैं तो यही कहूंगा कि 'आपात स्थिति' लागू होने पर हमारी भलाई ही हुई है। पहले हमारी कैसी हालत थी, जरा तुम खुद ही सोचो तो ! क्या तुम रात में घर से बाहर निकल पाते थे ? तुम्हारे बच्चों के स्कूल में क्या आज की तरह पढ़ाई होती थी ? तुम खुद ही बोलो ! बस-ट्राम की हड़ताल होने पर क्या तुम एक मुहल्ले तक जा पाते थे ? अपनी मर्जी के मुताबिक जब-तब फेलू बाबू के साथ मुलाकात कर पाते थे ? इस लिहाज से तो अब सबों को निश्चित रूप से राहत मिली है।"

मेरी बातें सुनकर मानो राजा आकाश से नीचे गिर पड़ा।

उसने पूछा—"यह आप क्या कह रहे हैं ? भला आप किस देश में रहते हैं, बोलिए तो ?"

मैंने पूछा—"क्या मैंने कोई गलत बात कही है ?"

राजा ने कहा—"गलत नहीं तो क्या सही बात कही है आपने ? चीज-वस्तु की कीमत कहां जा पहुंची है, सो कभी सोचा है ? आप लोग शहर में रहने वाले हैं; शहर के बाहर क्या हो रहा है, इसका पता भी है आपको ? मुझे तो गांव-गांव में और हाट-बाजार में घूमना पड़ता है, मुझे तो सबों की फिकर करनी पड़ती है। शहर में तो आपको राशन का सस्ता चावल मिल जाता है। लेकिन गांवों में चावल का क्या भाव है, यह आप जानते भी हैं ? वहां चावल बिक रहा है तीन रुपये किलो। सरसों के तेल की कीमत हो गई है बारह रुपये किलो। सरसों का तेल आज बारह रुपये किलो है, कल सोलह रुपये हो जायेगा—यह मैं आपसे कहे रखता हूं। उस समय मैं आदमी-पीछे दो रुपये लेकर क्या खाक मीटिंग के लिए लोगों को सप्लाई करूंगा ? इसी समय लोग पांच रुपये मांगने लगे हैं। इसके बाद उनकी रेट दस रुपयों की हो जायेगी, यह समझ लीजिए।"

मैंने कहा—"राजा, तुम यह धन्धा अब छोड़ दो। और किसी दूसरे रोजगार

की तलाश करो।"

राजा ने कहा—"यह मेरी दो पीढियों का कारोबार है। इसे छोडकर मैं भला और कौन-सा कारोबार पकड़ूं, बताइए तो ? मैं तो यही एक कारोबार कर सकता हूं। यही कारोबार मैंने सीखा है। नया कारोबार मैं अब कैसे कर सकूंगा ? कौन मुझे नया कारोबार सिखायेगा ? आपने तो बस कहकर छुट्टी पा ली। हम गरीबों की मुश्किलों को भला आप क्या समझ पायेंगे ?"

मैंने देखा कि राजा गुस्से मे लाल हो रहा था। उसे इस तरह नाराज होते मैंने कभी नही देखा था।

राजा उसी तरह कहे जा रहा था—"बडी-बड़ी बातें सभी बना सकते हैं, पर काम करने के नाम पर कोई भी सामने नही आता। क्यों, हम गरीब हैं तो क्या कुछ समझते नही हैं ? मीटिंग मे खड़े-खड़े बडी-बड़ी बातें तो साहब हमने भी खूब सुनी है। यह करेंगे, वह करेंगे···। भाषण देने में तो सभी उस्ताद हैं। मंत्री बनने के पहले हरेक नेता पब्लिक को सब्ज बाग दिखाया करता है। और जब वही नेता मंत्री बन जाता है तो हमें पहचानने से भी इनकार कर देता है। उस बार हम सबों ने मिलकर फेलू बाबू को वोट दिया था। हमने सोचा था कि फेलू बाबू के मंत्री बनने पर हमारे सारे दु:ख-दर्द दूर हो जायेंगे। सो उस समय चावल पांच रुपये किलो हो गया। उसके बाद जब फिर चुनाव आया, तो सबों ने मिलकर आशू बाबू को वोट दिया। सबों ने समझा कि आशू बाबू उन्हे राजा कर देंगे। किन्तु आशू बाबू के मंत्री बनते ही सरसों के तेल का भाव हो गया चौदह रुपये किलो। मैं आशू बाबू के पास गया। आशू बाबू को मुझसे मिलने की फुर्सत ही नहीं थी। आशू बाबू मुझे पहचान ही नही पाये। और मजे की बात यह कि इन्ही आशू बाबू ने एक दिन मुझे अपने सामने बैठाकर आपकी तरह चाय पिलाई थी। चुनाव के पहले जुलूस के लिए आदमियों की उन्हें जरूरत थी। उन्होंने मुझसे कहा था—शहीद मीनार के नीचे हम लोगों की मीटिंग होगी। जरा सस्ते में ही तुम्हें दस हजार आदमी जुटा देने होंगे। सो मैंने कहा था—ठीक है साहब, आपके लिए स्पेशल रेट लगा दूंगा। आदमी-पीछे एक रुपया···।"

मैंने पूछा—"उसके बाद ?"

राजा ने कहा—"सो मैंने वैसा ही किया। मैंने सोचा कि आशू बाबू यदि मंत्री बनकर चीज-वस्त के दाम कम कर दे, तो फिर अच्छा ही है। गांव-गांव में जाकर मैंने सबों को यही समझाया। सभी मेरी बात से सहमत हुए। चावल-दाल-तेल की कीमत अगर कम हो जाये तो हम लोग भी अपने रेट कम कर देंगे। किन्तु हाय री किस्मत ! उस समय मुझे क्या मालूम होता कि ये सब चुनाव के पहले किये जाने वाले सुनहरे वादे हैं।"

राजा को सान्त्वना देते हुए मैंने कहा—"सो जो कुछ हुआ है

इस समय तो तुम लोगों की भलाई के लिए ही 'आपात्-स्थिति' लागू की गई है ।"

राजा ने कहा—"खाक भलाई हुई है, खाक । भलाई यही हुई है कि मेरी रोजी-रोटी ही खत्म हो गई । आज सोचता हूं कि उस समय आशू वावू के दल को वोट न देकर हमने यदि फेलू वावू की पार्टी को वोट दिये होते, तो आज हमारी यह दुर्दशा नहीं हुई होती !"

उसके वाद कुछ रुककर राजा ने फिर कहा—"इस वार मुझे अच्छी सीख मिल गई है, साहव । फेलू वावू हों या आशू वावू, सवको हम अच्छी तरह पहचान चुके हैं । विपत्ति आने पर कोई किसी का नहीं होता । यह देखिए, आशू वावू के घर से ही आ रहा हूं । आशू वावू से भी मैं यही कह आया हूं । मैंने उनसे कह दिया है कि मैंने आपके लिए कितना कुछ किया और आपने वदले में मेरा घोर सर्वनाश कर डाला है ! दो मुट्ठी भात किसी तरह जुटा लेता था, वह भी आप लोगों को सहन नहीं हुआ !"

मैंने पूछा—"तो आशू वावू ने क्या जवाव दिया ?"

राजा ने कहा—"आशू वावू भला क्या जवाव देते ? उन्होंने कहा—देखो राजा, मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है । दिल्ली से आर्डर आ गया तो मैं क्या कर सकता हूं, वताओ ? मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर पाऊंगा ।"

मैंने पूछा—"उसके वाद ?"

राजा ने कहा—"उसके वाद और क्या होता ? सीधा आपके पास चला आया हूं ।"

कुछ देर रुकने के वाद हठात् राजा ने फिर कहा—"साहव, मैं अव चलता हूं । इस समय मुझे काकुड़गाछी जाना होगा ।"

यह कहकर राजा झट-पट कमरे से वाहर निकल गया । अपने फटे छाते को कंधे पर लगाये वह न जाने कहां भीड़ के वीच अदृश्य हो गया ।

यह उस समय की कहानी है, जव कि देश में 'आपात्-स्थिति' लागू थी । मीटिंग, जुलूस और सभा-समिति सभी वन्द हो गये । यह नियम हो गया कि पत्र-पत्रिकाओं में जो कुछ भी छपेगा, उसे पहले सरकार से पास कराना होगा । किसी को भी यह अधिकार नहीं था कि वह मुंह खोल कर सच्ची वात कह सके । सच्ची वात वोलने की जिस तरह मनाही थी, उसी तरह मनाही थी छापने की भी । देश के जो वड़े-वड़े नेता थे, उन्हें जेल में वन्द कर दिया गया था ।

सो इन सव वातों को लेकर साधारण आदमियों को कोई सरदर्द नहीं था । वे सिनेमा-थियेटर में डूवे रहते और हो-हुल्लड़ करते हुए दिन विता देते । किन्तु इस वीच राजा को ही सवसे ज्यादा नुकसान हुआ था ।

बहुत दिनों से राजा के साथ मेरी मुलाकात भी नहीं हुई थी। देश के सभी नागरिक उस समय अपनी-अपनी समस्याओं में उलझे हुए थे। स्कूल-कॉलेज में बच्चों को दाखिल कराने के लिए कभी इसकी-उसकी सिफारिश की जरूरत पड़ती तो कभी अस्पताल में रोगी को भर्ती कराने के लिए घूस देनी पड़ती। बस-ट्राम में दफ्तर आने-जाने के लिए जानलेवा मुसीबत झेलनी पड़ती। बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में आते-आते मानो अचानक ही यह धरती आदमी के रहने काबिल नहीं रह गई। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आदमी आकाश-पाताल एक करने लगा। कहीं कोई प्रतिकार नहीं था। अन्याय का प्रतिवाद करने के सभी रास्ते जैसे बन्द हो चुके थे। कौन किसका दोस्त था और कौन किसका दुश्मन; इसकी कोई सीमा-रेखा ही नहीं थी। सभी एक-दूसरे के मित्र थे और सभी एक-दूसरे के दुश्मन। सभी एक-दूसरे का सर्वनाश करते हुए सब से आगे बढ़ निकलने की प्रतियोगिता में कूद पड़े।

ठीक इसी समय सरकारी घोषणा हुई कि फिर से चुनाव होंगे।

चुनाव होने की घोषणा होते ही देश के नेता फिर से सक्रिय हो उठे। जो जेल में बन्द थे, उनमें से अधिकांश रिहा कर दिये गए। जिनके दर्शन पाने के लिए घंटा-दर-घंटा इन्तजार करना पड़ता था, वे ही घर-घर घूमकर चरण-धूलि दे आये। फेलू बाबू की पार्टी भी मैदान में उतरी और आशू बाबू की पार्टी भी। हम लोगों ने दोनों पार्टियों के नेताओं से कहा—"साहब, हम अपना वोट आपको ही देंगे।"

सारे शहर में चुनाव की सरगर्मी छा गई। सभी उत्तेजित हो उठे। देखें इस बार कौन जीतता है और किसकी हार होती है···!

ऐसे ही समय में हठात् एक दिन राजा से मुलाकात हुई। मेरे घर के सामने से वह हड़बड़ी में गुजर रहा था। मेरे घर की तरफ नजर डालने तक की उसे फुर्सत नहीं थी। मैंने घर से निकलकर जोरों से पुकार कर कहा—"राजा, ओ राजा···!"

मेरी पुकार सुनकर राजा मेरे पास चला आया। मैंने पूछा—"आज तुमने मेरे घर की तरफ ताका तक नहीं, आखिर मामला क्या है? क्या कर रहे हो आजकल?"

राजा खड़ा-खड़ा हांफने लगा।

उसने कहा—"आजकल बहुत व्यस्त हूं साहब।"

मैंने पूछा—"क्यों, चुनाव होने वाले हैं, इसलिए क्या?"

राजा खीसें निपोर कर हंसने लगा।

उसने कहा—"हां साहब, बहुत दिनों के बाद फिर एक चांस मिला है। पांच साल पहले चुनाव हुए थे, उसके बाद अब फिर चांस मिला है। देखा जाय, इस बार अगर कुछ रुपये जमा सका तो महाजनों का कर्ज उतार सकूंगा।"

मैंने पूछा—"तुम किस पार्टी की तरफ काम कर रहे हो ? आशू बाबू की पार्टी की तरफ से या फेलू बाबू की पार्टी की तरफ से ?"

राजा ने होशियारी के साथ चारों तरफ देखा। उसके बाद मेरे और भी करीब आकर उसने दबी जुबान में कहना शुरू किया—"तो फिर आपसे खुलकर ही बताता हूं। आप किसी से कुछ कहिएगा नहीं। मैं दोनों ही पार्टियों में हूं···।"

मैं तो राजा की बातें सुनकर हैरत में पड़ गया। मैंने पूछा—"तुम दोनों ही पार्टियों में हो, इसका मतलब ? क्या तुम फेल बाबू और आशू बाबू, दोनों की पार्टियों का काम कर रहे हो ?"

राजा ने जवाब दिया—"हां साहब, हां···। मैं हूं मामूली-सा कमाने-खाने वाला एक आदमी। मेरे लिए जैसे फेलू बाबू हैं, वैसे ही हैं आशू बाबू। और सच पूछिए तो मेरी इस दुर्गति के लिए जिम्मेवार हैं आशू बाबू ही। पिछली बार मैंने आशू बाबू को अधिक वोट दिलवा दिये थे, इसीलिए तो आशू बाबू ने मेरी यह हालत बना डाली। और उस बार जो मैंने फेलू बाबू को जिता दिया था तो उन्होंने ही भला मुझे कौन-सा राजा बना दिया था ? सभी एक बराबर हैं, साहब ! सांप-नाथ के भाई नागनाथ···। इसीलिए मैंने इस बार दोनों ही दलों से रुपये लिये हैं। आशू बाबू की पार्टी से मैंने सात सौ रुपये लिये हैं और फेलू बाबू की पार्टी से पांच सौ रुपये।"

मैंने पूछा—"अच्छा राजा, तुमने फेलू बाबू से भला दो सौ रुपये कम क्यों लिये ? बताओ तो···!"

राजा ने जवाब दिया—"फेलू बाबू तो अभी सरकार में नहीं हैं। उनकी सरकार बनने पर मैं फिर दुगुना रुपया वसूल कर लूंगा।"

मैंने कहा—"तो फिर तुम दोनों पार्टियों की तरफ से काम कर रहे हो !"

राजा ने कहा—"हां साहब, बिलकुल···! एक मुहल्ले में आशू बाबू के रुपये खाकर लोगों से कहता हूं कि फेलू बाबू को वोट दो और दूसरे मुहल्ले में फेलू बाबू के रुपये खाकर लोगों से कहता हूं कि वे अपना वोट आशू बाबू को ही दें।"

उसके बाद कुछ रुककर उसने फिर कहा—"यह देखिए न, आशू बाबू से मुलाकात करके आ रहा हूं। अब मैं जाऊंगा फेलू बाबू के पास। उनसे मुलाकात कर मैं उनसे वही बातें कहूंगा जो कि आशू बाबू को अभी-अभी कह आया हूं।"

मैंने पूछा—"किन्तु राजा, ऐसा करना क्या ठीक है ?"

राजा ने कहा—"मेरे लिए न कुछ ठीक है और न कुछ बे-ठीक। मेरे लिए दोनों बराबर है। जो मेरी भलाई करेगा, मैं उसी का हूं। मेरे लिए न कोई अच्छा या बुरा है और न कोई अपना-बेगाना। अपना तो धन्धा ही यही है। खानदानी धन्धा···। उस धन्धे में अगर कोई बाधा डालेगा तो आदमी शान्त कैसे रहेगा ? आप अपनी ही बात सोचिए। आपके पेशे में अगर कोई अड़चन डाले तो क्या आप

चुप रहेंगे ? हम कुछ करें तो हमारे मत्थे दोष मढ़ दिया जाएगा। छोड़िए भी'''। आप बस मेहरबानी कर इन बातों का जिक्र किसी से मत कीजिएगा। दूसरे के लिए गड्ढा खोदने वालों की तो कमी नहीं है इस दुनिया में !"

यह कहकर राजा फिर पल भर के लिए भी नहीं रुका। वह जिधर जा रहा था, उधर ही तेजी से चला गया।

पांच दिनों के बाद ही चुनाव के नतीजे सुनाये गए। ओह, कैसी सरगर्मी छाई हुई थी। चौबीस घंटों तक लोग रेडियो के पास बैठे-बैठे चुनाव के परिणाम सुनते रहे। एक-एक दिग्गज धराशायी होते और मुहल्ले में कांसे के घंटे बज उठते और शंख-ध्वनि होने लगती। न किसी की आंखों में नींद थी, न किसी को विश्राम। सभी इसी इन्तजार में रहते कि देखें, इस बार किसकी लुटिया डूबती है !

उसके बाद एक अनहोनी घटना हो गई। चुनाव में न तो फेलू बाबू जीत सके और न ही भाणू बाबू। विजय मिली भूपति बाबू को। भूपति बाबू निर्दलीय उम्मीदवार थे। जिसकी किसी को उम्मीद न थी, वही बात हो गई। सब के मुंह पर मानो चूना पुत गया।

जिस दिन यह घोषणा हुई थी, उसी दिन घर के सामने एक मील लम्बा विजयोत्सव का जुलूस गुजरा। इतना लम्बा जुलूस मैंने अपने जीवन में कभी भी नहीं देखा था। हम लोगों में से किसी ने भी जिसे वोट नहीं दिया था, वे भूपति बाबू कैसे जीत गये ! मुहल्ले के सारे लोग हैरत में पड़ गये थे।

हठात् मेरी नजर पड़ी राजा पर। राजा यानि हमारा वही राजेन पाड्इ। जुलूस के बिलकुल आगे वह जोर-जोर से नारा लगाता हुआ चल रहा था—महान् देश नेता भूपति दास, जिन्दाबाद-जिन्दाबाद'''।

उस समय शाम गहराने लगी थी। मैंने आगे बढ़कर राजा को पकड़ा। मैंने उसके कान में फुसफुसाते हुए पूछा—"यह क्या राजा'''? तुम भूपति बाबू के दल में भी थे क्या ?"

राजा ने कहा—"मैं तो आपसे कह ही चुका हूं कि मैं हरेक दल में हूं। यही तो मेरी रोजी-रोटी है।"

मैं राजा की बात समझ नहीं पाया। मैंने पूछा—"लेकिन भूपति बाबू जीत कैसे गए ? हमारे मुहल्ले में तो कोई वोट दे ही नहीं सका। जाने कहां से आये लड़कों के एक झुण्ड ने हमें बूथ के भीतर घुसने तक नहीं दिया।"

राजा ने मेरे कान में धीरे से कहा—"आप लोगों के वोट न देने से क्या फर्क पड़ने वाला था ? हमारे आदमियों ने आप सबों के बदले खुद बोगस वोट डाल दिए थे। उसके लिए भूपति बाबू ने आदमी-पीछे दस रुपये दिए थे।"

मैंने कहा—"लेकिन तुमने तो कहा था कि तुमने फेलू बाबू और आशू बाबू—दोनों से रुपये लिये थे।"

राजा चलते-चलते हंसने लगा। उसने कहा—"क्यों साहब, आप मुझे बुद्धू समझते हैं क्या ? यही तो मेरा खानदानी पेशा है। मैंने तो भूपति बाबू के पास से भी रुपये लिये थे।"

मैं मानो आकाश से नीचे गिरा। मैंने पूछा—"तो तुमने भूपति बाबू से भी रुपये लिये थे ? कितने रुपये ?"

राजा ने जवाब दिया—"बारह सौ रुपये।"

उसके बाद राजा फिर से नारा लगाने लगा—'महान् देश नेता भूपति दास, जिन्दाबाद-जिन्दाबाद···।'

पीछे से जुलूस के सारे लोग उसी सुर में चिल्ला पड़े—'जिन्दाबाद-जिन्दाबाद···।'

जुलूस मेरी आंखों के सामने से काफी दूर चला गया। मैं उसी तरह वहीं हतप्रभ-सा खड़ा का खड़ा ही रह गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे महान् देश नेता भूपति दास के लिए 'जिन्दाबाद' के नारे नहीं लगा रहे थे, अपितु गणतन्त्र के लिए 'जिन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। मानो वे गला फाड़ कर चिल्ला रहे थे—'महान् देश का गणतन्त्र, जिन्दाबाद-जिन्दाबाद···।'

वह कौन था ?

यह मेरे जीवन का एक सच्चा अनुभव है।

बचपन मे मुझे यह विश्वास नही था कि भूत नाम की भी कोई चीज होती है। किताबों मे भूतों की कहानिया जरूर पढी हैं एवं दादी-अम्मा के मुह से भी कितनी ही रात भूत के किस्से सुने हैं। लेकिन उन किस्से-कहानियों को पढ़ने-सुनने के बाद भी मेरे मन में कभी भय नही उपजा।

दादी-अम्मा से मैं कहा करता—"दादी, भूत की कोई एक कहानी सुनाओ न !"

दादी अम्मा ठहरी एक बूढी औरत—साझ होते-न-होते नीद के मारे उसकी पलकें भारी होने लगती। फिर भी मैं बार-बार कहानी सुनने की जिद करता, खास कर भूतों की कहानियां !

दादी-अम्मा झल्ला उठती।

कहती—"नही-नही, रात मे भला कही भूत की कहानी सुनी जाती है ? भूत तुम्हारी गरदन मरोड डालेगा। चलो, तुम अब सो जाओ तो···!"

किन्तु फिर भी मैं दादी अम्मा का पिण्ड नही छोडता। भूत की कहानी सुनना मेरे लिए बहुत जरूरी था। भूत की कहानी सुनने पर मुझे डर तो लगता ही नही बल्कि खूब ही मजा आता। कहानी के भूत के हाऊ-माऊ-खाऊ जैसे शब्दो के साथ-साथ मेरी कल्पना भी काफी दूर तक दौड लगाती। इस तरह धरती से दूर—बहुत दूर···, जहा पढाई-लिखाई न हो, परीक्षा मे पास होने की फिक्र न हो और न ही हो मा-बाप और मास्टर साहब की लाल-पीली आंखे ! जहा हो सिर्फ एक सुनसान-सा खडहर और उसके भीतर हो कुछेक भूत-भूतनी। भूत-भूतनी की इस दुनिया का सपना देखना भी मुझे बहुत बढिया लगता।

उसके बाद जब कुछ बडा हुआ तो फिर मैं भूत-भूतनी की इस दुनिया मे निकलकर एक वास्तविक दुनिया मे विचरने लगा। इस वास्तविक दुनिया में मास्टर साहब की बेत भी खानी पडती एव पाठ याद न होने पर [illegible] भी मिलती। और फिर यदि परीक्षा मे फेल हो जाना पड़ता तो उसकी पीड़ा तो बात ही अलग है !

आजकल तो परीक्षा में फेल करने में किसी तरह की लज्जा या ग्लानि महसूस नहीं की जाती; लेकिन उस जमाने में ऐसी बात नहीं थी। मैं जब परीक्षा में फेल हो गया था, उस समय मेरे पिताजी ने मुझे दिन भर एक कमरे में बन्द कर दिया था एवं बाहर से दरवाजे पर ताला जड़ दिया था। खाने की बात तो छोड़ ही दीजिए, पीने को एक बूंद पानी तक नहीं मिला।

शाम को पिताजी दरवाजा खोल देते और पूछते—"अब से मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई करोगे तो?"

मैं कहता—"हां, अब से मैं मन लगाकर पढ़ूंगा।"

"परीक्षा में और कभी फेल नहीं करोगे तो?"

मैं कहता—"नहीं, कभी नहीं।"

"तो फिर चलो, अपने दोनों कान पकड़ो।"

मैं अपने दोनों कान पकड़ता। पिताजी की बात अक्षरशः मानने की प्रतिज्ञा करता। फिर भी मैं हरेक साल प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पाता। मैं जीवन में कितनी बार फेल हुआ हूं, इसका कोई ठिकाना है क्या? मेरी क्लास के लड़कों ने मेरा नाम ही रख दिया था—फेलू मास्टर। फेलू मास्टर यानी फेलू मास्टर...।

किन्तु मेरे बड़े भैया थे सच्चे अर्थों में एक बढ़िया विद्यार्थी। हरेक बार बड़े भइया परीक्षा में फर्स्ट होते। बड़े भैया ने कितनी बार मेडल और प्राइज पाये हैं, इसकी कोई गिनती नहीं। मां और बाबू जी ने भइया के मेडलों को तथा प्राइज में मिली किताबों को एक कांच की आलमारी में अच्छी तरह सजाकर रख दिया था। किसी भी आत्मीय-स्वजन या पड़ोसी के आने पर वे चीजें बड़ी सूक्ष्मता के साथ दिखाई जातीं।

वे सब बड़े भैया की क्षमता देखकर उनकी खूब ही तारीफ करते और बड़े भैया का सम्मान देखकर मां और बाबूजी भी गर्व से फूल उठते।

उसके बाद मेरी ओर देखकर वे सब बोलते—"और यह? यह कैसा है पढ़ाई-लिखाई में?"

पिताजी कहते—"इसकी बात पूछ रहे हैं? इससे कुछ भी होने वाला नहीं है। इसके माथे में गोबर भरा है—गोबर।"

शर्म के मारे मेरा माथा झुक जाता। किन्तु मैं आखिर करता भी क्या? मेरे माथे में अगर गोबर ही भरा हो तो आखिर क्या इसके लिए मैं जिम्मेवार था?

छोड़िए भी, मेरी बात रहने दीजिए। बड़े भैया की ही बात कहता हूं। बड़े भैया को लेकर ही मेरी यह कहानी लिखी गई है। बड़े भैया ही थे मां-बाप का एकमात्र भरोसा—एकमात्र निर्भर-स्थल। जिनके बड़े भैया जैसा पुत्र हो, उनके लिए भला चिन्ता-फिकर कैसी?

बड़े भैया जब कलकत्ते के कॉलिज से गर्मियों की छुट्टी में घर लौटते, तब

पिताजी उनके लिए खाने-पीने का स्पेशल इन्तजाम करवाते। उस दिन खरीद-दारी करने के लिए किसी नौकर-नौकरानी को नहीं जाना होता—पिताजी खुद बाजार जाते।

कोई-कोई पूछ बैठता—"यह क्या मित्तिर साहब, आज आप बाजार करने के लिए खुद आये हैं?"

पिताजी कहते—"आज नीलू जो आ रहा है। गर्मियों की छुट्टी हो गई है तो!"

उस दिन पिताजी बड़े भैया के लिए चुन-चुन कर बढ़िया मछलियां खरीदते बढ़िया आम, बढ़िया परवल एवं और भी सभी चीजें बढ़िया से बढ़िया। सुबह से ही घर में खाना बनाने की सरगर्मी शुरू हो जाती। बड़े भैया को बढ़िया खाना बहुत पसन्द था एवं इसीलिए मां उनके लिए एक से बढ़कर एक उम्दा चीजें तैयार करती। बड़े भैया के आते ही मानो घर में खुशी की बहार आ जाती। हम लोग ठहरे मात्र दो भाई। उनमें से एक था मां-बाप की आंखों का तारा और दूसरे के लिए था सिर्फ शून्य। सचमुच मेरे नसीब में एक शून्य के और कुछ भी न था।

परन्तु इसके लिए किसी को दोष भी तो नहीं दिया जा सकता, क्योंकि खुद मेरे माथे में गोबर भरा हुआ था।

जब बड़े भैया भोजन करने के लिए बैठते तो मां भी सामने बैठती। पंखा पूरी रफ्तार से खोल दिया जाता।

मां कहती—"यह भात क्यों छोड़ दिया है? दो कौर ही तो है; लो, खा लो।"

बड़े भइया बोलते—"नहीं मां, बिलू को दे दो। उसकी तरफ तो आप लोगों का बिल्कुल ही ध्यान नहीं। उसे तो आप लोग खाने के लिए पूछ ही नहीं रहे हैं। मैं और अब कुछ भी नहीं खा सकूंगा—मेरा पेट भर गया है।"

पिताजी भी सामने ही खड़े रहते। मानो अगर वे खुद खड़े न हों तो बड़े भैया की खातिरदारी में कमी रह सकती है।

पिताजी कहते—"यह क्या, उसे इलिश मछली के दो पीस और दो न!"

बड़े भैया कहते—"वाह-वाह, भला क्या मेरा पेट रबर का बना हुआ है? मैं तो इलिश मछली के चार पीस खा चुका हूं, और अधिक यदि खाऊंगा तो उल्टी हो जायेगी।"

"नहीं, उल्टी क्यों होगी? तुम लोगों के होस्टलों का तो हाल ऐसा है कि अध-पेट खा-खा कर तुम लोगों का हाजमा ही बिगड़ गया है। और दो पीस तुम्हें लेने ही होंगे। मैंने खुद बाजार जाकर तुम्हारे लिए खरीददारी की है। असल गंगा की इलिश मछली है, समझे? लो, खाओ। और फिर लगड़ा आम भी लाया हूं। दो आम भी इसे दो···।"

वड़े भैया को इस तरह खिलाने के वावजूद भी मानो मां और वावूजी को तृप्ति नहीं होती। और सिर्फ खाने की ही वात क्यों ? जव वड़े भइया सोये होते, उस समय कोई शोर-गुल नहीं कर सकता। वड़े भैया जिस समय पढ़ रहे होते, उस समय कोई भी उनके पास जा नहीं सकता। अगर किसी दिन उन्हें मामूली-सी सर्दी-खांसी भी होती तो उनके लिए शहर का सवसे वड़ा डॉक्ट रआता। वड़े भैया की परीक्षा के पहले मां काली मैया के पास जोड़ा पाठे की मनौती करती। और वड़े भैया भी वैसे ही थे। कभी भी भला वे परीक्षा में सेकन्ड हुए थे ! हरेक साल वे फर्स्ट होते। और फिर एक ही घर में हम लोग एक ही माता-पिता के दो लड़के थे।

मैं मन-ही-मन भगवान को अभिशाप देता—"भगवान, तुम ऐसे पक्षपाती क्यों हो ? अगर किसी को कुछ देना ही है तो क्या दूसरे किसी को विलकुल उजाड़ ही कर देना चाहिए ?"

तो फिर उसके वाद भैया ने ऑनर्स लेकर वी० एस-सी० पास किया। फर्स्ट क्लास फर्स्ट !

उस दिन हमारे घर पर आदमियों का मानो समुद्र ही उमड़ पड़ा ! जिस दिन परीक्षा-फल निकला, उसी दिन समाचार-पत्र में वड़े भैया की फोटो छपी। संक्षेप में वड़े भैया की जीवनी भी छपी। साथ-ही-साथ पिताजी के नाम का भी जिक्र था। शहर के सभी गण्यमान्य व्यक्तियों को घर पर आमंत्रित किया गया। पूड़ी, पुलाव, मछली, मांस, चप, कटलेट, संदेश, रसगुल्ला, राजभोग, चटनी— सभी कुछ का इन्तजाम था; किसी भी चीज की कमी न थी। भोजन करने के वाद सभी वड़े भइया की जी खोल कर वड़ाई करने लगे।

वड़े भैया को भीतर-ही-भीतर वहुत संकोच होने लगा।

उन्होंने कहा—"इसमें ऐसी कौन-सी वड़ी वात हो गयी ? हरेक साल ही कोई-न-कोई फर्स्ट होता ही है। इस वार जैसे मैं फर्स्ट हुआ हूं, आगामी साल भी तो फिर कोई फर्स्ट होगा ही।"

आगन्तुक सज्जन कहते—"आगामी साल जो लड़का फ़र्स्ट होगा, उसके मां-वाप भी इसी तरह खुश होंगे। खुश होने में कुछ दोप है क्या ?"

वड़े भैया लेकिन फिर भी खुश न होते।

वे कहते—"उसके वजाय आप लोग मुझे यह अशीर्वाद दें कि मैं अपने जीवन की शेप परीक्षाओं में भी फर्स्ट हो सकूं। वह फर्स्ट होना ही सच्चे अर्थों में फर्स्ट होना होगा।"

वाह, वड़े भैया की प्रतिभा का भी कोई जवाव नहीं। केमिस्ट्री में उन्होंने एम० एस-सी० की परीक्षा दी। फिर वही फर्स्ट क्लास फर्स्ट।

मां और वावूजी की खुशी का कोई पार न था !

लेकिन सिर्फ परीक्षा में पास हो जाना ही काफी नहीं। अच्छी तरह कोई पास करे या फेल ही करे, असल बात तो है बडी नौकरी हासिल कर बेशुमार रुपये कमाना। कोई एम० ए० पास करे अथवा रास्ते का आवारा छोकरा ही क्यों न हो; वह कितने रुपये कमाता है, उसी के आधार पर यह विचार किया जायेगा कि वह जीवन की परीक्षा में पास है या फेल।

फिर ठीक इसी समय लड़ाई छिड़ गयी। इस तरह लड़ाई छिड़ेगी और सभी कुछ उलट-पुलट हो जायेगा, इसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। अंग्रेजो और जर्मनों के बीच युद्ध छिड़ गया—महायुद्ध। सच कहा जाये तो सारी पृथ्वी ही उस लडाई में कूद पडी थी।

हठात् कलकत्ता से बडे भैया की चिट्ठी आयी। बडे भैया ने लिखा था कि उन्होंने मिलिट्री में नौकरी हासिल कर ली थी। शुरू में दो हजार रुपयों की तनख्वाह! उसके बाद नौकरी में बढ़िया काम दिखाने पर तनख्वाह और भी बढेगी। यहा तक कि तनख्वाह पांच-छह हजार रुपयों तक की भी हो सकती है।

चिट्ठी पढते ही मा रो पडी। पिताजी के सिर पर जैसे गाज गिर पडी हो। खबर सुनकर शहर के सभी गण्यमान्य व्यक्ति आये।

उन्होंने कहा—"मित्तिर साहब, बस इतनी-सी बात के लिए आप इतने परेशान हैं? आपको मालूम होना चाहिए कि इस नौकरी को पाने के लिए लाखो-लाख नौजवान पागलों की तरह घूमते फिर रहे हैं। और आपके लडके ने वह नौकरी हासिल कर ली तथा इसीलिए आप इतने भयभीत हो रहे है।"

पिताजी ने कहा—"नही-नही, वैसी कोई बात नही। युद्ध का मामला ठहरा। अगर कोई आपद-विपद की बात हो गयी तो! इसीलिए चिन्तित हू। युद्ध का मतलब ही है मरना और मारना—अस्त्र-शस्त्र के द्वारा एक-दूसरे को मारना। कौन किनके कितने आदमियो को मार सका है, इसकी प्रतियोगिता का ही तो नाम है युद्ध।"

आगत भद्रजनों ने कहा – "उनमे से क्या सब मर ही जाते हैं? बल्कि सच तो यह है कि युद्ध मे हमारे-आपके जैसे निरीह प्राणी मारे जाते है, जो युद्ध मे जाते ही नहीं। बम तो हमारे माथे पर ही गिरते है। अधिकाश बेकसूर आदमी ही लडाई मे मारे जाते हैं। इसका कारण यह कि उनके हाथ में न तो बन्दूक होती है और न ही रायफल। उनके पास कुछ नही होता। उनकी विपदा तो सबो से ज्यादा है।"

एक दूसरे सज्जन ने कहा—"और फिर लडाई तो चिरकाल तक जारी नहीं रहेगी। खूब जोर एक साल या दो साल। उसके बाद तो गवर्नमेंट आपके लड़के को मोटी तनख्वाह वाली नौकरी देगी। यह भी तो आपको सोच कर देखना चाहिए।"

लड़ाई में जाने के पहले बडे भैया एक बार घर पर आये। मां

को उन्होंने अच्छी तरह समझाया। उन्होंने कहा कि लड़ाई अधिक दिनों तक नहीं चलेगी। ज्योंही लड़ाई थम जायेगी, त्योंही एक अच्छी-सी नौकरी मिलेगी। इस समय बड़े भैया को सीधे लेफ्टिनेंट के पद पर लिया जा रहा था। कुछ ही दिनों के वाद वे कैप्टन होंगे, उसके वाद मेजर होंगे और उसके वाद कर्नल।

पिताजी ने पूछा था—"तो क्या तुम्हें जर्मनों के साथ लड़ाई करनी पड़ेगी?"

बड़े भैया ने पिताजी को आश्वस्त करते हुए कहा—"मैं कोई युद्ध थोड़े ही करूंगा! जो युद्ध करेंगे—मैं उनके पीछे-पीछे रहूंगा। 'इंजीनियरिंग स्टोर्स' का मैं इंचार्ज रहूंगा।"

बड़े भइया सीधे लड़ाई में भाग नहीं लेंगे, यह जानकर मां और वावूजी कुछ हद तक आश्वस्त हुए। और फिर दो हजार रुपयों की तनख्वाह की वात सुनकर भी बहुत खुशी हुई। बड़े भइया के जाने के पहले दिन मां ने काली-मंदिर में जाकर पूजा की एवं मंदिर से आकर उन्होंने बड़े भैया के माथे पर पूजा के सिंदूर से टीका लगा दिया। और फिर वह मन-ही-मन कुछ प्रार्थना करने लगी। क्या प्रार्थना करने लगी सो मां ही जाने। संभवतः प्रत्येक मां अपने बच्चे के लिए जो प्रार्थना करती है, उसी तरह की कुछ प्रार्थना करने लगी वह। मैं तो कुछ समझ पाया नहीं।

बड़े भैया लड़ाई में जाने के वाद से हर हफ्ते घर पर चिट्ठी भेजते। बड़े भैया खूब ही मजे में थे—खूब ही आराम से। किसी तरह की तकलीफ न थी। चिट्ठी पढ़ कर मां और वावूजी खुश ही होते।

और हरेक महीने पिताजी के नाम से बड़े भैया के वेतन के रुपये चले आते। विलकुल पूरे दो हजार रुपये। पिताजी उन रुपयों को बड़े भैया के नाम से वैंक में जमा कर आते। और मुहल्ले के हरेक आदमी को वे बड़े भैया की चिट्ठी के संबंध में बता आते। जिनको विशेष दिलचस्पी होती, वे खुद बड़े भैया की चिट्ठी पढ़ते और साथ ही दूसरे लोगों को भी सुनाते।

कभी फ्रांस से चिट्ठी आती तो कभी लन्दन से। अनुमान से यह समझ लेना पड़ता कि चिट्ठी कहां से आयी है। कारण यह कि मिलिट्री में पता लिखना मना है।

पिताजी चिट्ठी के जवाब में लिखते—"हम लोग सभी कुशल-पूर्वक हैं। तुम अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना। अगर कुछ दिनों के लिए छुट्टी मिल सके तो एक वार घर चले आना। तुम्हारी मां तुम्हें देखने के लिए वड़ी वेचैन है।"

इस तरह चिट्ठी-पत्री का सिलसिला कुछ दिनों तक चला। पिताजी हरेक दिन अखवार खोल कर वहुत ही ध्यान से खवरें पढ़ते। कौन विजयी हो रहा है और कौन हार रहा है—वे इसकी छान-वीन करते। मां एवं मुहल्ले के अन्य लोगों के साथ वे इस संवंध में तरह-तरह की चर्चाएं करते। शहर के सभी लोग जव कि जर्मनी की विजय की कामना करते, मां और वावूजी चाहते कि अंग्रेजों की जीत

हो। कारण यह कि उनका पुत्र अंग्रेजों के दल में था।

और सिर्फ अखबार ही क्यों, रेडियो सुनना भी उन दिनों सनक की सीमा तक पहुंच गया था। जब जर्मनों की विजय की खबर आती, तब हम लोगों को बुरा लगता एवं जब अंग्रेजो की जीत का संवाद मिलता, तब हम सब खुश होते।

एक दिन बड़े भैया ने अपनी चिट्ठी में लिखा कि वे कैप्टन बन गये थे। साथ ही वेतन में एक हजार रुपयों की वृद्धि भी हुई थी।

जब-जब बड़े भैया की नौकरी में उन्नति होती, तब-तब मां काली-मंदिर में जाकर पूजा कर आती ताकि लड़का और भी उन्नति करे, मां-बाप का नाम रौशन करे एवं राजी-खुशी स्वस्थ शरीर के साथ वापस घर लौट आये।

तो मां काली ने मां की प्रार्थना सुनी कि नहीं, कौन जाने ! हम लोगों ने पूजा का प्रसाद जरूर खाया।

इसके बाद हठात् खबरें आने लगी कि जर्मनी हार रहा है। इटली हार रहा है। जापान हार रहा है। और अमेरिका अंग्रेजो के दल में आ गया था।

पिताजी तो खुशी के मारे बस नाचने लगे। अंग्रेजों की जीत यानी उनके अपने बेटे की जीत !

उस समय चीज-वस्त के दाम दिनों-दिन बढ रहे थे। देश में जगह-जगह बम गिर रहे थे। कलकत्ता नगरी से लोग डर के मारे भाग रहे थे। उन कुछेक वर्षों में जाने कितना दुर्योग घटित हुआ। लेकिन बड़े भैया की कमाई के रुपयों के कारण हमें कोई भी अभाव नहीं हुआ। उनके वेतन के रूप में आये हुए बेशुमार रुपये बैंक में जमा थे।

जब वह युद्ध समाप्ति की ओर था तथा अंग्रेजों की जयजयकार गूंजने लगी थी, ठीक उसी समय बड़े भइया की एक चिट्ठी आयी। उसमें बड़े भैया ने लिखा था—"मैं पन्द्रह दिनों की छुट्टी लेकर गांव आ रहा हूं। आगामी माह की दसवीं तारीख को शाम की ट्रेन से मैं पहुंचूंगा। स्टेशन से हम लोगों की मिलिट्री-गाड़ी से सीधा घर चला आऊंगा। अगर ट्रेन ठीक समय पर पहुंच गयी तो फिर मैं रात नौ बजे तक जरूर घर पर पहुंच जाऊंगा।"

चिट्ठी पढ़ने पर कुछ क्षण तक किसी के मुंह से भी कोई शब्द नहीं निकला। खुशी में शायद बहुत बार आदमी गूंगा भी हो जाता है। मेरे माता-पिता की हालत भी ठीक वैसी ही हो गयी थी।

कुछ क्षणों के बीतने पर पिताजी ने कहा—"आज हुई सात तारीख। और नीलू आयेगा दसवीं तारीख को। और तीन दिन बाकी हैं।"

तीन दिन'''। वे तीन दिन मानो हम सबों के लिए तीन साल हो गये। वे तीन दिन जैसे बीत ही नहीं रहे थे। बड़े भइया आयेंगे। बड़े भइया इतने वर्षों के बाद घर पर आयेंगे। ऐसा लग रहा था कि मानो हम लोगों ने अपनी हथेली

करती चली आयेगी। यह कोई टैक्सी या बस तो नहीं जो कि थमते-थमते आयेगी। मिलिट्री गाड़ी को रोकने की हिम्मत तो पुलिस में भी नहीं है। और फिर गाड़ी में जो आयेगा, वह भी तो कोई मामूली आदमी नहीं— कर्नल है, कर्नल। कर्नल—यानी सबों का हेड।

किन्तु कहां? कुछ भी तो नहीं! चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है—घना अंधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता···।

चटर्जी महाशय बोले—"इतनी फिकर क्यों कर रहे हैं मित्तिर साहब? शायद कलकत्ता में ही ट्रेन देर से पहुंची हो।"

यही बात होगी। पिता जी ने सोचा—यही बात होनी चाहिए। रेल का सब कारबार ही ऐसा है। लड़ाई के जमाने में क्या कोई भी काम ठीक समय पर हो रहा है? हो सकता है कि ट्रेन देर से पहुंचेगी।

आखिरकार रात के दस बज गये। चटर्जी महाशय, मुखर्जी महाशय और गांगुली महाशय—सभी एक-एक कर अपने घर लौट गये। आज रहने दीजिए। हो सकता है कि लड़का ठीक आधी रात को घर पहुंचे! कल सुबह ही सब फिर आयेंगे। उस समय आकर नीलू को देख जायेंगे। उसे आशीर्वाद दे जायेंगे।

मां ने कहा—"और कुछ देर तक देख लिया जाये। अभी भी समय है। उसके आये बिना मैं तो खाना नहीं खाऊंगी।"

पिता जी ने कहा—"तो फिर बिलू को खाना दे दो। उसे नींद आ रही है। उसे खा-पीकर सोने दो। नीलू के आने पर उसे जगा देंगे।"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, मुझे अभी नींद नहीं आ रही है। मैं अभी खाना नहीं खाऊंगा। बड़े भइया के आने पर हम सब एक साथ खाना खायेंगे।"

तब तक घड़ी में ग्यारह बज गये। सारे मुहल्ले में नीरवता छा गयी। हम लोग तीनों— मैं, पिताजी और मां—बड़े भैया के आने की आशा में जागते रहे। कहीं हठात् कुछ आवाज हुई और हम सभी आनन्द से चमक उठे। ऐसा प्रतीत हुआ मानो बड़े भैया आ गये हों।

किन्तु नहीं, एक बिलाव छत से भंडार-घर के टीन के छप्पर के ऊपर कूद पड़ा था। यह उसी की आवाज थी।

आखिर और कब तक हम सब बैठे रहेंगे! पिता जी का चेहरा क्रमशः गम्भीर हो आया। मां की दोनों आंखें सजल हो आयीं···।

पिता जी मां को सांत्वना देने लगे—"तुम इतना फिकर क्यों कर रही हो? नीलू ठीक चला आयेगा। तुम फिकर मत करो तो। आखिर मिलिट्री का अफसर ठहरा। यों ही भागकर तो वह चला आयेगा नहीं। उसे अपना सारा काम किसी दूसरे आदमी को समझाकर आना पड़ेगा। और फिर इस समय ही तो उसके ऊपर अधिक जिम्मेवारी है। अब जापानी लड़ाई में हार चुके हैं। तुम क्या अपने लड़के

होनी चाहिए। नीलू के आने पर उसे हरेक घर पर ले जाना होगा। चटर्जी महाशय के घर पर सबसे पहले जाना होगा। पिताजी कहेंगे—"चटर्जी महाशय को प्रणाम करो। ताऊजी के आशीर्वाद से ही तो तुम इतने बड़े हुए हो।"

चटर्जी महाशय कहेंगे—"शाबाश बेटे, शाबाश। तुम और भी तरक्की करो। मैं तुम्हें आशीष देता हूं कि तुम राजा बनो; हमारे देश का नाम रौशन करो।"

उसके बाद पिता जी बड़े भइया को मुखर्जी महाशय के घर पर ले जायेंगे। इस तरह हरेक घर पर जाकर बड़े भइया से सबों का चरण-स्पर्श करायेंगे।

क्या-क्या परिकल्पनाएं हैं पिताजी की ! मां खाने की तैयारी में जुटी थी और पिता जी मां के साथ अपनी परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे।

एकाएक उन्होंने कहा—"मांस में अधिक मिर्च मत डाल देना, समझी ? नीलू अधिक मिर्च नहीं खा सकता।"

मां ने कहा—"इसके लिए तुम्हें फिक्र करने की जरूरत नहीं। मुझे सब मालूम है।"

"और देखो, एक भूल तो रह ही गयी।"

"क्या ?"

पिता जी ने कहा—"नीलू को अनन्नास बहुत पसन्द है। अनन्नास की बात तो बिल्कुल ही ध्यान से उतर गयी।"

यह कहकर पिता जी फिर बाजार दौड़े। इस तरह एक-एक चीज याद आती और पिताजी बाजार भागते। दिन-भर यही चलता रहा। न तो पिता जी को आराम मिल पाया और न मां को ही। जब सारे काम खत्म हो गये, उस समय रात के सात बज चुके थे।

पिता जी ने घड़ी की ओर देखा और कहा—"लगता है कि अब तक नीलू कलकत्ता जरूर पहुंच गया होगा।"

उसके बाद घड़ी ने आठ बजाये। पीता जी ने कहा—"अब तक शायद नीलू रानाघाट तक पहुंच गया होगा। एक घंटे का रास्ता और बाकी है···।"

रानाघाट से बाजितपुर पहुंचने में एक घंटे का समय लगता है। पक्का रास्ता है। जीप गाड़ी से आने की बात लिखी है बड़े भइया ने। देखते-ही-देखते पलक मारते ही आ पहुंचेंगे। खाना-वाना सब तैयार है ही। मुखर्जी महाशय, चटर्जी महाशय, गांगुली महाशय एवं पिता जी के और सभी मित्र घर पर आये—नीलू दा को देखने के लिए। वे सभी बड़े भइया को आशीर्वाद देंगे। सबों की नजरें घड़ी की सुई की तरफ लगी हुई थीं।

घड़ी में आठ बजे और इसके बाद नौ। बस, अब नीलू के आने का समय हो गया। पिता जी सदर दरवाजे के पास जाकर खड़े हो गये। मिलिट्री गाड़ी हू-हू

पर चांद को पा लिया हो। नीलू दा के आने पर पिताजी क्या-क्या करेंगे, उसकी योजना बनने लगी। नीलू दा जो-जो चीजें खाना पसंद करते हैं, उन सभी चीजों की लिस्ट तैयार की गयी।

मां बोली—"इलिश मछली लानी होगी। इलिश मछली नीलू को बहुत पसंद है…।"

"और भला नीलू को क्या पसंद है, भई ?"

मां बोली—"लंगड़ा आम।"

पिताजी ने कहा—"लेकिन लंगड़ा आम इस समय मिलेगा कहां ?"

उस समय लंगड़े आम बाजार में उपलब्ध नहीं थे। आम का मौसम चला गया था। लेकिन कोशिश करने पर क्या नहीं मिल सकता ? अभी भी तो तीन दिन थे हाथ में ! इन तीन दिनों के बीच ही यदि कोई कलकत्ता चला जाये तो सभी चीजें मिल सकती हैं। पैसे फेंकने पर कलकत्ता नगरी में क्या नहीं मिल सकता है।

तो फिर पिताजी ने और देर नहीं की। नौ तारीख को सुबह ही वे ट्रेन के द्वारा कलकत्ता चले गये। वहां सारी खरीददारी पूरी कर दस तारीख को सुबह ही वापस पहुंच गये। लंगड़ा आम, बढ़िया इलिश मछली और तरह-तरह की मिठाइयां। और उनके साथ किसमिस, पिस्ता, बादाम, अंगूर, सेब और नारंगी। सब-की-सब दामी चीजें !

सुबह से ही खाना बनाने का काम प्रारंभ हो गया। मुहल्ले के जिस आदमी के साथ भी पिताजी की मुलाकात होती, पिताजी कहते—"जानते हैं जनाब, हमारा नीलू आज रात में घर आ रहा है !"

"क्या कहा ? नीलू आ रहा है !"

"हां, इस समय वह कर्नल है। कर्नल नीलरतन मित्तिर। मेरा लड़का कर्नल हो गया है। जानते तो हैं आप ?"

पिताजी ने चटर्जी महाशय, गांगुली महाशय और बोस महाशय—सबों को यह खबर दी। मैंने भी अपने दोस्तों को यह खुशखबरी सुनाई। सबों से मैंने कहा—"मेरे बड़े भइया छुट्टी लेकर आ रहे हैं। अब वे कर्नल हो गये हैं।"

अपने ऐश्वर्य की गाथा यदि लोगों को नहीं सुनाई तो फिर आनन्द क्या। किन्तु दरअसल यह खबर सुनकर मुहल्ले के सभी लोग बहुत खुश हुए। मेरे पिताजी सबों के बीच बहुत ही लोकप्रिय थे। मित्तिर साहब का कुछ भी भला होने पर सबों को आनन्द ही होता।

मां तो उस दिन सुबह से ही व्यस्त थी।

नीलू किस कमरे में सोयेगा, क्या खायेगा, देखने में वह कैसा हो गया है—इन तरह की ही बातें मां और बाबूजी के बीच होने लगीं। नीलू कोई साधारण लड़का तो है नहीं। आखिर कर्नल है, कर्नल। अतएव उसकी खातिर भी कुछ निराली ही

होनी चाहिए। नीलू के आने पर उसे हरेक घर पर ले जाना होगा। चटर्जी महाशय के घर पर सबसे पहले जाना होगा। पिताजी कहेंगे—"चटर्जी महाशय को प्रणाम करो। ताऊजी के आशीर्वाद से ही तो तुम इतने बड़े हुए हो।"

चटर्जी महाशय कहेंगे—"शाबाश बेटे, शाबाश। तुम और भी तरक्की करो। मैं तुम्हें आशीष देता हूं कि तुम राजा बनो, हमारे देश का नाम रोशन करो।"

उसके बाद पिता जी बड़े भइया को मुखर्जी महाशय के घर पर ले जायेंगे। इस तरह हरेक घर पर जाकर बड़े भइया से सबों का चरण-स्पर्श करायेंगे।

क्या-क्या परिकल्पनाएं हैं पिताजी की ! मां खाने की तैयारी में जुटी थी और पिता जी मां के साथ अपनी परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे।

एकाएक उन्होंने कहा—"मांस में अधिक मिर्च मत डाल देना, समझी ? नीलू अधिक मिर्च नहीं खा सकता।"

मां ने कहा—"इसके लिए तुम्हें फिक्र करने की जरूरत नहीं। मुझे सब मालूम है।"

"और देखो, एक भूल तो रह ही गयी।"

"क्या ?"

पिता जी ने कहा—"नीलू को अनन्नास बहुत पसन्द है। अनन्नास की बात तो बिल्कुल ही ध्यान से उतर गयी।"

यह कहकर पिता जी फिर बाजार दौड़े। इस तरह एक-एक चीज याद आती और पिताजी बाजार भागते। दिन-भर यही चलता रहा। न तो पिता जी को आराम मिल पाया और न मां को ही। जब सारे काम खत्म हो गये, उस समय रात के सात बज चुके थे।

पिता जी ने घड़ी की ओर देखा और कहा—"लगता है कि अब तक नीलू कलकत्ता जरूर पहुंच गया होगा।"

उसके बाद घड़ी ने आठ बजाये। पिता जी ने कहा—"अब तक शायद नीलू रानाघाट तक पहुंच गया होगा। एक घंटे का रास्ता और बाकी है'''।"

रानाघाट से काजितपुर पहुंचने में एक घंटे का समय लगता है। पक्का रास्ता है। जीप गाड़ी से आने की बात लिखी है बड़े भइया ने। देखते-ही-देखते पलक मारते ही आ पहुंचेंगे। खाना-वाना सब तैयार है ही। मुखर्जी महाशय, चटर्जी महाशय, गांगुली महाशय एवं पिता जी के और सभी मित्र घर पर आये—नीलू दा को देखने के लिए। ये सभी बड़े भइया को आशीर्वाद देंगे। सबों की नजरें घड़ी की सुई की तरफ लगी हुई थी।

घड़ी में आठ बजे और इसके बाद नौ। बस, अब नीलू के आने का समय हो गया। पिता जी सदर दरवाजे के पास जाकर खड़े हो गये। मिट्टी गाड़ी हू-हू

करती चली आयेगी। यह कोई टैक्सी या बस तो नहीं जो कि थमते-थमते आयेगी। मिलिट्री गाड़ी को रोकने की हिम्मत तो पुलिस में भी नहीं है। और फिर गाड़ी में जो आयेगा, वह भी तो कोई मामूली आदमी नहीं— कर्नल है, कर्नल। कर्नल— यानी सबों का हेड।

किन्तु कहां? कुछ भी तो नहीं! चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है—घना अंधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता···।

चटर्जी महाशय बोले—"इतनी फिकर क्यों कर रहे हैं मित्तिर साहब? शायद कलकत्ता में ही ट्रेन देर से पहुंची हो।"

यही बात होगी। पिता जी ने सोचा—यही बात होनी चाहिए। रेल का सब कारबार ही ऐसा है। लड़ाई के जमाने में क्या कोई भी काम ठीक समय पर हो रहा है? हो सकता है कि ट्रेन देर से पहुंचेगी।

आखिरकार रात के दस बज गये। चटर्जी महाशय, मुखर्जी महाशय और गांगुली महाशय—सभी एक-एक कर अपने घर लौट गये। आज रहने दीजिए। हो सकता है कि लड़का ठीक आधी रात को घर पहुंचे! कल सुबह ही सब फिर आयेंगे। उस समय आकर नीलू को देख जायेंगे। उसे आशीर्वाद दे जायेंगे।

मां ने कहा—"और कुछ देर तक देख लिया जाये। अभी भी समय है। उसके आये बिना मैं तो खाना नहीं खाऊंगी।"

पिता जी ने कहा—"तो फिर बिलू को खाना दे दो। उसे नींद आ रही है। उसे खा-पीकर सोने दो। नीलू के आने पर उसे जगा देंगे।"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, मुझे अभी नींद नहीं आ रही है। मैं अभी खाना नहीं खाऊंगा। बड़े भइया के आने पर हम सब एक साथ खाना खायेंगे।"

तब तक घड़ी में ग्यारह बज गये। सारे मुहल्ले में नीरवता छा गयी। हम लोग तीनों— मैं, पिताजी और मां—बड़े भैया के आने की आशा में जागते रहे। कहीं हठात् कुछ आवाज हुई और हम सभी आनन्द से चमक उठे। ऐसा प्रतीत हुआ मानो बड़े भैया आ गये हों।

किन्तु नहीं, एक बिलाव छत से भंडार-घर के टीन के छप्पर के ऊपर कूद पड़ा था। यह उसी की आवाज थी।

आखिर और कब तक हम सब बैठे रहेंगे! पिता जी का चेहरा क्रमशः गम्भीर हो आया। मां की दोनों आंखें सजल हो आयीं···।

पिता जी मां को सांत्वना देने लगे—"तुम इतना फिकर क्यों कर रही हो? नीलू ठीक चला आयेगा। तुम फिकर मत करो तो। आखिर मिलिट्री का अफसर ठहरा। यों ही भागकर तो वह चला आयेगा नहीं। उसे अपना सारा काम किसी दूसरे आदमी को समझाकर आना पड़ेगा। और फिर इस समय ही तो उसके ऊपर अधिक जिम्मेवारी है। अब जापानी लड़ाई में हार चुके हैं। तुम क्या अपने लड़के

को मामूली लडका समझती हो ? ब्रिटिश-राज तो इस समय नीलू के ऊपर ही निर्भर है। सच पूछो तो नीलू ही सारा काम अकेला संभाल रहा है।"

कहते-कहते हठात् फिर कोई आवाज हुई।

हम लोग फिर चमक उठे। हम लोगों ने समझा कि फिर कोई बिलाव भंडार-घर के छप्पर पर कूद पड़ा होगा !

किन्तु नहीं। हठात् मैंने बडे भैया को देखा।

"मुन्ने, तुम आ गये ? कैसे आये ? हम लोगों ने तो गाड़ी आने की कोई आवाज नहीं सुनी।"

बड़े भैया ठहाका मारकर हंस पडे।

बडी मुश्किल से अपनी हंसी को रोकते हुए वे बोले—"मैं तो खिड़की की तरफ से कूदकर घर में आया हूं।"

"क्यों रे ? सदर दरवाजा तो खुला ही रखा था मैंने। फिर तुम खिड़की की तरफ से कूदकर आये क्यों ?"

बड़े भइया ने कहा—"आप सबों को एकाएक चौंका देने के लिए ! लड़ाई में जाकर हम लोगों को कितने ही मकानों की खिड़कियों से कूदकर भीतर जाना पड़ा है—इन सबों का खूब अभ्यास हो गया है मुझे।"

"किन्तु गाड़ी की तो कोई आवाज सुनी नहीं मैंने !"

बड़े भैया ने कहा—"गाड़ी मैंने मोड पर ही छोड़ दी है। गाडी अभी ही कलकत्ता लौट जायेगी। वहां बहुत ही जरूरी काम है। मैं मोड़ से यहां तक पैदल ही आया हूं।"

पिता जी उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—"ठीक है—ठीक है, रहने भी दो। इस समय बस और बातचीत नहीं ! तुम अपने कपड़े बदल लो। नहाने के लिए गर्म पानी तैयार है। उसके बाद खाते-खाते बातचीत करेंगे।"

मां की ओर देखते हुए पिता जी फिर बोले—"चलो, हम सबों का खाना परोस दो।"

मैंने बड़े भैया की ओर एक नजर डाली। बडे भैया का चेहरा-मोहरा क्या खूब खिल रहा था ! पहले उनके बदन का रंग गोरा था, अब ताम्बई हो गया था। लेकिन कैसा स्वस्थ और मजबूत शरीर था उनका ! माथे के बाल छोटे-छोटे सवारे गये थे। बदन पर खाकी वर्दी थी। छाती के पास न जाने कितने मेडल टंके हुए थे एवं दोनों कंधों के पास थे बहुत से स्टार। बडे भइया को देखकर मैं बहुत ही गर्वित हो रहा था। मेरे ही तो बडे भैया हैं वे। मां-जाये बडे भैया।

बडे भइया ने हठात् मेरी ओर देखकर कहा, "क्यों रे बिलू, तुम कितने बड़े हो गये हो ? लिखाई-पढ़ाई मन लगाकर कर रहे हो तो ? खूब मन लगाकर पढ़ोगे और फिजिकल एक्सरसाइज भी करोगे। अपने शरीर को बिलकुल फिट रखना होगा।

रात और दिन

निहायत ही शान्त और शरीफ आदमी का लड़का था वह। लेकिन पेट भरने की गरज से उसे हमारे दफ्तर में चपरासी की नौकरी करनी पड़ी। मतलब यह कि क्लास-फोर की नौकरी···।

यों देखा जाये तो क्लास-फोर में भी वेतन कम नहीं था। सब मिलाकर एक सौ रुपयों से ऊपर···। बड़ा ही विनम्र व्यवहार था उसका। किसी समय उसके पिताजी मेदिनीपुर में पेशकार थे। उस समय उनकी माली हालत बढ़िया थी। घर था, पोखरा था और थे गाय-बैल। बचपन में उसने खुद अपनी आंखों से यह सब देखा था। उसके बाद सब कुछ चला गया। कह सकते हैं कि लड़ाई के जमाने में ही सब कुछ बाढ़ के कारण बर्बाद हो गया। उसके बाद धीरे-धीरे बाप भी गुजर गया और मां भी परलोक सिधार गई।

रह गई कुछेक बीघा ऊसर जमीन।

लक्ष्मण कहा करता—"सभी किस्मत की बात है सर। नहीं तो क्या मुझे आज रेलवे के दफ्तर में चपरासी की नौकरी करनी पड़ती? सच पूछिए तो इस वक्त मुझे लन्दन में होना चाहिए था।"

"लन्दन में? क्यों, लन्दन में क्यों?"

लक्ष्मण कहता—"हम लोगों के दफ्तर के सारे लोग मुझसे जलते थे, क्या आपको यह मालूम है?"

लक्ष्मण यानी लक्ष्मण बोस की कहानी उस समय मुझे खूब बढ़िया लगी थी। ऐसा ही होता है शायद। और फिर रेलवे के एक मामूली-से चपरासी के लन्दन जाने की कहानी ही अपने आप में एक अजूबा है। लड़ाई के जमाने में कितनी ही तरह की घटनाएं हुई हैं। कितने ही लोगों की तरक्की हुई है और कितनों को उठाना पड़ा है भारी नुकसान भी। उस जमाने की बहुत-सी अजीबोगरीब कहानियां मैंने पहले भी सुनी थीं।

लेकिन लक्ष्मण के मुंह से मैं ऐसी एक अजीब कहानी सुनूंगा, यह मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था।

लक्ष्मण कहता—"देखिए सर, आप लोग चाहे जो भी कहें; अंग्रेज़ लोग आदमी

अच्छे नहीं थे।"

मैं कहता—"तुमसे ऐसा किसने कह दिया ?"

"मैं सब कुछ जानता हूं सर। अंग्रेजों ने ही तो इतने दिनों तक हमारे देश पर इतने जुल्म किए थे। अंग्रेजों ने ही तो हमारे देश के खुदीराम को फांसी दी थी। अंग्रेजों ने ही तो हमारे नेता जी को जेल में बन्द कर रखा था।"

लक्ष्मण सरीखे एक मामूली-से चपरासी के मुंह से ये सब बातें सुनने पर ताज्जुब होता ही। फिर लक्ष्मण बिल्कुल ही गोबर-गणेश हो, ऐसा भी नहीं था। मेदिनीपुर से उसने मैट्रिक पास किया था। उसके बाद जिन्दगी की धारा में डूबते-उतराते उसने न जाने कितनी ठोकरें खाई हैं और कितने घाट का पानी पिया है! एक समय लक्ष्मण ने चाय की दुकान पर जूठे कप-प्लेट धोने की नौकरी भी की है।

आखिरकार किस घटनाक्रम में वह कैप्टन स्कॉट की नजर में पड़ गया था, यह खुद उसे भी मालूम नहीं। आर्डनन्स डिपो की नौकरी थी। लड़ाई के जमाने में हथियार जमा करने के लिए जगह-जगह पर ऑर्डनन्स डिपो बनाये गए थे। किसी ने शायद उस पर तरस खाकर उसे वह नौकरी दिला दी थी। चाहे टैम्पोरेरी ही क्यों न हो, नौकरी आखिर नौकरी होती है। कम-से-कम कप-प्लेट साफ करने की तुलना में तो यह काम बढ़िया ही था।

"कितनी तनख्वाह मिलती थी ?"

"साठ रुपये। और यूनिफॉर्म मिलती मुफ्त में। कपड़े-लत्ते का खर्च कुछ भी नहीं लगता।"

लक्ष्मण सुबह घर से खा-पीकर निकलता और डिपो में हाजिर हो जाता। वह दिन-भर काम में जुटा रहता और फिर छुट्टी के बाद···!

लक्ष्मण कहता—"सर, मेरा असल काम तो होता था छुट्टी के बाद ही।"

"कौन-सा काम ?"

लक्ष्मण कहता—"तब मुझे ऑफिस से कैप्टन स्कॉट साहब के क्वार्टर पर जाना पड़ता। वहां मुझे रात के नौ बजे तक रुकना होता। कभी-कभी रात के दस बजे तक भी।"

"वहां तुम्हें क्या काम करना पड़ता था ?"

"वह एक बड़ा ही अजीब काम होता, सर।"

यह कहकर लक्ष्मण हंसने लगता। एक अजीब-सी हंसी, कौतुक-भरी हंसी···।

लक्ष्मण कहता—"बहुत दुःख से कहना पड़ता है कि सब नसीब का खेल है सर। इतनी-सी ही उम्र में बहुत कुछ देख लिया मैंने। इतना कुछ देख लिया है, फिर भी साध मिटती नहीं और फिर उन दिनों मैं यही विश्वास करता था कि कैप्टन स्कॉट को देख लेने के बाद देखने को कुछ बाकी बचा ही नहीं है।"

कैप्टन स्कॉट दिन के वक्त जब ऑफिस आते, तब वे बिलकुल दूसरे ही आदमी होते। उनके सामने खड़े होने की तब भला किसकी हिम्मत होती थी? भारी बूट पहने खट्-खट् की आवाज करते जब वे आते, तब आस-पास के अर्दली, चपरासी और क्लर्क—सभी चुप हो जाते। सभी सिर झुकाये अपने-अपने काम में मशगूल हो जाते।

"गुड मार्निंग सर!"

"गुड मार्निंग···।"

इस प्रकार एक के बाद एक 'गुड मार्निंग' लेते हुए साहब अपने चेम्बर में जाकर बैठते। उसके बाद वहां भी एक के बाद एक बम फूटता रहता। किसी को झाड़ खानी होती, किसी की नौकरी खत्म और किसी पर जुर्माना। या फिर किसी को मिलती बूट की ठोकर भी···।

लड़ाई का जमाना था। किसी को भी कुछ भी कहने का अख्तियार नहीं था। कैप्टन, मेजर और कर्नल—बस इन्हीं का राज था। उनकी नजरों में इण्डियन आदमी नहीं थे; जानवर थे, जानवर···। समूची ऑफिस के लोग ऑफिसरों से उसी तरह डरते, जैसे शेर से मेमना। ठीक उसी समय न जाने कैसे लक्ष्मण कैप्टन स्कॉट की नजर में पड़ गया।

भुवन बाबू एक दिन कैप्टन स्कॉट के चेम्बर से कांपते-कांपते बाहर आए।

उन्होंने कहा—"अरे लक्ष्मण, तुमने फिर क्या नयी मुसीबत खड़ी कर दी, बोल तो?"

यह सुनते ही लक्ष्मण का तो डर के मारे बुरा हाल हो गया।

उसने कहा—"कैसी मुसीबत बड़े बाबू? मेरी नौकरी तो बची हुई है?"

भुवन बाबू ने कहा—"नौकरी बची हुई है या नहीं, यह तो मालूम नहीं भैया। क्या साहब से इतनी बातें पूछी जा सकती हैं? इतनी बातें पूछने पर साहब मुझे मार नहीं बैठते! वे तो बात-बात में कितने गर्म हो जाते हैं! कैसे गुस्सैल हैं साहब, बाप रे बाप! हर वक्त उनका मिजाज बिगड़ा हुआ रहता है।"

"साहब ने क्या कहा है, यही बताइए न बड़े बाबू।"

भुवन बाबू ने कहा—"तुम्हें आज से साहब के क्वार्टर में जाना पड़ेगा।"

"कब सर? क्यों?"

"शाम को। साहब जब दफ्तर से अपने क्वार्टर में जायेंगे, उसी वक्त।"

"मुझे वहां क्या करना होगा?"

भुवन बाबू ने कहा—"मैं यह सब नहीं जानता भैया। मेरा कलेजा इतना बड़ा नहीं कि साहब से सारी बातें पूछता। मुझे जो हुक्म मिला है, वह मैंने तुम्हें सुना दिया!"

लक्ष्मण तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा—"सर, मेरी नौकरी तो

अभी पक्की नही हुई है। आखिरकार नौकरी तो नहीं जाएगी न ?"

"कौन जाने भैया ! आज नौकरी है, कल रहेगी या नही सो भगवान जाने !"

उसके बाद उन्होंने कुछ सोचते हुए पूछा—"तुमने साहब के पास कोई अर्जी-वर्जी तो नही दी थी न ?"

"अर्जी ? कैसी अर्जी ?"

"प्रमोशन के लिए।"

लक्ष्मण ने कहा—"नहीं सर। अर्जी देता तो आपको भी जरूर मालूम होता।"

"तो फिर ? साइकिल के लिए एडवांस मांगा था क्या तुमने ?"

"नहीं सर। मेरा घर तो खिदिरपुर मे ही है। मैं तो पैदल ही आता-जाता हूं। इतनी थोड़ी-सी दूरी के लिए साइकिल लेकर मैं करूगा भी क्या ?"

सिर्फ भुवन बाबू ही नही, पूरी ऑफिस के लोग चर्चा करने लगे। साहब ने लक्ष्मण को क्यों बुलाया है ! ऐसी कोई बडी नौकरी तो है नही लक्ष्मण की। एक मामूली-सा क्लर्क है वह। दूसरे के घर में सिर छुपाकर रहता है और दो वक्त के खाने के लिए वह उन्हे महीने में तीस रुपये देता है !

फिर भी एक बात थी।

लक्ष्मण सबसे पहले ऑफिस मे चला आता। कितनी ही बार ऐसा भी हुआ है कि तब ऑफिस में कोई भी नही आया होता। अच्छी तरह झाड-पोंछ भी नही हुई होती। तभी लक्ष्मण हाजिर हो जाता। वह दफ्तर में आकर खुद ही अपनी टेबुल-चेयर साफ कर काम करना शुरू कर देता।

और कैप्टन साहब भी सबो से पहले आफिस आ जाते।

जिनके आगे-पीछे कोई नही होता, वही इतने सवेरे ऑफिस में चले आया करते हैं। साहब भी इस मामले में लक्ष्मण के दल में ही थे।

खाली दफ्तर···। उस समय सभी टेबुल-कुर्सी खाली रहते। साहब अकेले ही बूट बजाते-बजाते आफिस मे आते।

"गुड मार्निंग सर !"

"गुड मार्निंग !"

ऐसा कई बार हुआ है। साहब देखते कि यह लडका नियम से ऑफिस आता है। शायद इसीलिए वह विशेष तौर पर साहब की नजर में पड़ता।

एक दिन साहब ने पूछा था—"हू आर यू ? तुम कौन हो ?"

लक्ष्मण ने उठकर नमस्कार किया था और कहा था—"मैं हू आपका एक अदना-सा क्लर्क। आइ एम योर पुअर क्लर्क सर···।"

बस यही तक···। उसके बाद और कोई भी बात नही हुई।

अचानक भुवन बाबू की बात सुनकर इतने दिनों के बाद वे बातें लक्ष्मण के

याद आने लगीं ।

तो क्या साहब उसकी वदली कर उसे वर्मा भेज देंगे ?

उस समय ऑफिस में वर्मा भेज देने की धमकी खूब चला करती। वर्मा में उन दिनों घमासान लड़ाई चल रही थी और कोई भी वर्मा जाना नहीं चाहता था। वहुत-से लोग पहले ही वर्मा चले गये थे। कोई-कोई तो वर्मा जाने के डर से नौकरी छोड़कर गायव भी हो गये थे। उनके नाम से ऑफिस वालों ने वारण्ट भी जारी किये थे। मतलव यह कि उन्हें देखते ही गिरफ्तार कर लिया जायेगा।

लेकिन नौकरी आखिर नौकरी ही होती है। नौकरी करनी है तो मालिक का हुक्म वजाना ही होगा।

लक्ष्मण की कहानी वेहद दिलचस्प लगी थी मुझे। मैं लक्ष्मण से कहता—"हां भई, उसके वाद ?"

लक्ष्मण फिर अपना किस्सा शुरू कर देता···।

उस दिन कैप्टन स्कॉट के ऑफिस से क्वार्टर चले जाने के साथ-साथ ही भुवन वावू ने मुझसे कहा—"जाओ, साहव के क्वार्टर पर चले जाओ।"

डर के मारे मां काली का नाम जपते-जपते मैं साहव के क्वार्टर पर पहुंचा।

साहव के अर्दली का नाम था पीरू। उसने कहा—"तो आप आ गये हैं? कैप्टन साहव आपके वारे में पूछ रहे थे।"

साहव के पास खवर पहुंचते ही उन्होंने मुझे वुलवाया।

वलि के वकरे की भांति कांपता-कांपता मैं साहव के ड्राइंग-रूम में जा पहुंचा। वड़ा ही सजा-धजा कमरा था। ईजी-चेयर पर ही साहव वैठा करते थे। उस समय साहव गुसलखाने में थे।

पीरू अर्दली ने कहा—"आप यहां वैठिए। मैं ह्विस्की की वोतल और सोडा लेकर आ रहा हूं।"

यह कहकर पीरू ने शराव की एक वोतल और सोडे की चार वोतलें लाकर सामने रख दीं।

मैंने पूछा—"यह सव लेकर मैं क्या करूंगा ?"

पीरू अर्दली ने कहा—"साहव को शराव डाल कर देनी होगी।"

पीरू की वात खत्म होने के पहले ही साहव नहा-धोकर कमरे में आ धमके।

उन्होंने पूछा—"आर यू वोस ? क्या तुम्हारा नाम वोस है ?"

मैं उठकर खड़ा हो गया। मैंने कहा—"हां सर।"

"तुम वैठ जाओ। सिट डाउन देअर···।"

यह कहकर साहव खुद ईजी-चेयर पर वैठ गये।

उन्होंने पूछा—"तुम्हें भुवन बाबू ने मेरे पास भेजा है तो ? भुवन बाबू, मेरे हेड क्लर्क···।"

"यस सर।"

"ऑल राइट ! तुम रोज दफ्तर की छुट्टी के बाद यहां आओगे और मेरी ह्विस्की की बोतल मे ह्विस्की डालकर मुझे पिलाओगे। कर सकोगे तो ? ह्विस्की में थोड़ा सोडा भी मिला दोगे।"

यह कहकर साहब ने दिखा दिया कि किस तरह और कितनी ह्विस्की गिलास में डालनी होगी और उसमे कितना सोडा मिलाना होगा।

मैंने शराब और सोडे का माप समझ लिया।

"इससे ज्यादा मत देना, समझे ?"

साहब ने आहिस्ता-आहिस्ता शराब का पेग खाली कर दिया। उसके बाद मैंने ठीक माप से फिर एक पेग तैयार किया।

साहब ने ध्यान से देखा। उन्होंने कहा—"ठीक है, माप ठीक है।"

पहला गिलास खाली करने में साहब को करीब आधा घंटे का समय लगा। साहब ने कहा—"नेक्स्ट···। दूसरा पेग···।"

मैंने शराब का पेग तैयार किया। साहब पीने लगे।

साहब ने कहा—"देखो बस, मेरा यह जो अर्दली है न—पीरू, वह एक नम्बर का चोर है। तुम समझ लो कि वह साला है सूअर का बच्चा। ही इज ए स्वाइन···।"

मैं चुप ही रहा। मेरे लिए कहने को भला था ही क्या ?

साहब ने कहा—"देखो बोस, तुम मुझे चार बार ह्विस्की दोगे। समझ गये न। डू यू अण्डरस्टैण्ड ? ओनली फोर पेग्स···।"

"मैंने कहा—समझ गया सर।"

"चार पेग से ज्यादा अगर मैं मागू, तो भी तुम मुझे नही दोगे। हर्गिज नही। नो, अगर मैं बार-बार मागूं, तब भी नही दोगे। डू यू अण्डरस्टैंड ?"

मैंने कहा—"यस सर।"

"रोज चार पेग से ज्यादा शराब पीना ठीक नही। नो, नाट मोर दैन फोर पेग्स। चार पेग से ज्यादा पीने से लीवर खराब हो जायेगा। नो, नेवर। डू यू अण्डरस्टैंड ?"

—यस, मेरे मांगने पर भी नही देना। डू यू अण्डरस्टैंड ?

मैंने कहा—"मैं समझ गया, सर।"

"दो, और एक पेग तैयार करो।"

मैंने साहब के माप के मुताबिक फिर ह्विस्की का एक पेग तैयार किया।

साहब ने पूछा—"इसे लेकर कितने पेग हुए ?"

मैंने कहा—"थ्री सर'''। हुजूर तीन'''।"

"ऑल राइट, इसके बाद सिर्फ एक पेग दोगे ओनली वन'''। डू यू अण्डर-स्टैंड ?"

मैंने कहा—"यस सर।"

साहब कहने लगे—"देखो बोस, मेरा वह अर्दली है न, पीरू, ही इज ए स्वाइन'''। वह साला सुअर का बच्चा है। डू यू अण्डरस्टैंड ?"

मैंने कहा—"यस सर।"

"वह मुझे छह पेग तक पिला देता था, समझे ? छह पेग, सात पेग तक भी'''। वह चाहता है कि मेरा लीवर खराब हो जाये, डू यू अण्डरस्टैंड ?"

मैंने कहा—"हां सर, मैं समझ गया।"

"हां, इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है। तुम मुझे चार पेग से ज्यादा कभी नहीं पिलाओगे। नॉट मोर दैन फोर पेग्स, नेवर'''। डू यू अण्डरस्टैंड ?"

साहब की हरेक बात में वही बात। डू यू अण्डरस्टैंड ? मैंने समझा कि नहीं ! तीन पेग पीने के बाद ही साहब मानो दूसरे आदमी बन गये। बिलकुल दूसरे ही आदमी। ऑफिस में दिन के वक्त जो साहब होते, उनसे बिलकुल ही अलग। साहब लगातार बातें करते जाते।

अचानक साहब ने पूछा—"कितने पेग हुए ? हाउ मैनी पेग्स ?"

मैंने कहा—"थ्री सर।"

"तो फिर एक ही पेग बाकी है क्या ?"

मैंने कहा—"यस सर।"

साहब ने तीसरा पेग पीकर कहा—"दो, इस बार चौथा पेग दो। फोर्थ पेग'''।"

मैंने चौथा पेग तैयार कर दिया। साथ-ही-साथ सोडा डालकर मैंने गिलास भर दिया। साहब तब तक नशे में मस्त हो चुके थे।

साहब ने कहा—"जानते हो बोस, यह जो पीरू अर्दली है न, ही इज स्वाइन। वह साला सुअर का बच्चा है। डू यू अण्डरस्टैंड ? वह मुझे छह पेग-सात पेग ह्विस्की पिला देता था। वह चाहता था कि मेरा लीवर सड़ जाये। डू यू अण्डर-स्टैंड ?"

और भी कितनी ही बातें सुनाने लगे साहब।

तब तक साहब शराब के नशे में चूर हो चुके थे। साहब उठ खड़े हुए। वे लड़खड़ाने लगे। उसके बाद एक ही घूंट में उन्होंने चौथा पेग खाली कर दिया और खाली गिलास सामने रख दिया।

उन्होंने कहा—"दो, लास्ट पेग दो बोस। आखिरी पेग'''।"

मैंने कहा—"सर, चार पेग हो चुके हैं। आपने तो मुझे चार पेग देने के लिए

कहा था।

"नो नो, गिव मी ऐनदर पेग। एक पेग और…।"

मैंने कहा – "लेकिन आपको तो मैं चार पेग दे चुका हूं।"

"नो, तुमने सिर्फ तीन पेग दिये हैं। ओनली थ्री पेग्स…। गिव मी ऐनदर…। और एक पेग प्लीज…।"

साहब मेरे दोनों हाथ पकड़ने के लिए आगे बढ़े।

मैं पीछे हट गया।

साहब ने कहा—"बोस, एक पेग और दो। प्लीज…।"

मैं क्या करूं, यह समझ में ही नहीं आ रहा था। मैं असहाय-सा चारों तरफ देखने लगा। मैंने देखा कि दूर खड़ा पीरू अर्दली, ब्वाय और खानसामा—सभी साहब की कारस्तानी देख रहे थे। और सभी ढीठता के साथ हंस रहे थे।

साहब ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये थे। वे किसी भी तरह मेरे हाथ छोड़ते ही नहीं थे।

उन्होंने कहा—"और एक पेग दो बोस। प्लीज…। मेरा कोई नहीं, कोई भी नहीं। मैं किसके सहारे जिन्दा रहूंगा? मैं तुम्हें इग्लैंड ले जाऊंगा बोस। आइ शैल टेक यू विथ मी—टेक यू टू माइ कन्ट्री। मैं तुमको अपने देश ले जाऊंगा और एक पेग दो बोस, प्लीज…।"

न जाने क्या सोचकर मैंने और एक पेग तैयार किया और साहब के हाथ में गिलास थमा दिया।

साहब उसे गटागट पी गये।

उसके बाद तो कैसा अद्भुत कांड घट गया। साहब के मुंह से लगातार गालियों की बौछार शुरू हो गई। उफ्, कैसी-कैसी गालियां सुनाने लगे कैप्टन स्कॉट साहब। डैम, स्वाइन दोज इंग्लिशमेन! डू यू अण्डरस्टैंड?

उस समय सचमुच मैं डर गया। साहब का वह रूप मैंने कभी नहीं देखा था। सारी अंग्रेज जाति को वे मां-बाप की गालियां सुनाने लगे थे।

गालियां देते-देते ही वे कहने लगे—"और एक पेग दो बोस…। प्लीज और एक पेग…।"

कहते-कहते साहब उसी ईजी-चेयर पर निढाल होकर गिर पड़े। ऐसे लगा मानो साहब बेहोश हो गये थे। उनकी सांस जोरों से चलने लगी थी।

मैं कुछ पलों के लिए उधर एकटक देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

इसी बीच पीरू अर्दली, ब्वाय, बावर्ची और खानसामा—सभी कमरे में आ गये। उन सबों ने मिलकर साहब को उठाया और उन्हें बगल के कमरे में सुला दिया।

मेरी तो जैसे बोलती ही बन्द हो गई थी।

उन लोगों ने मुझसे कहा—"वाबू, अब आप अपने घर लौट जाइए।"

मैंने उनसे पूछा—"साहब को यह क्या हो गया ? अचानक साहब वेहोश कैसे हो गये ?"

पीरू ने कहा—"वह सब कुछ भी सोचने की आपको जरूरत नहीं। काफी रात हो चुकी है। अब आप अपने घर लौट जाइए।"

आखिरकार मैं उस दिन अपने घर लौट गया।

मैंने पूछा—"फिर ?"

लक्ष्मण ने कहा—"वह तो मेरा पहला ही दिन था। इसीलिए मैं शुरू में समझ नहीं पाया था। मैं इतनी रात गये पैदल ही साहब के क्वार्टर से अपने घर लौट आया। घर पर मेरा कोई भी ऐसा नहीं था जो कि मेरी फिक्र करता।"

दूसरे दिन···।

दूसरे दिन मैं ठीक समय पर ही दफ्तर पहुंचा। ऑफिस शुरू होने के पहले ही मैं पहुंच गया था। अचानक वूट की खट्-खट् आवाज सुनाई पड़ी। मैंने देखा कि साहब आ रहे थे।

मैंने कहा—"गुड मार्निंग सर।"

"गुड मार्निंग।"

विलकुल दूसरे ही आदमी। मुझे जैसे पहचान ही नहीं पाये।

भुवन वाबू आये। उन्होंने पूछा—"क्या रे, कल क्या हुआ था ?"

मैंने कहा—"साहब को खूब जोर का नशा चढ़ गया था वड़े बाबू। पीने के वाद उन्हें होश ही नही रहा।"

"तुम्हें क्या काम करना पड़ा ?"

"मैंने सिर्फ गिलास में शराव डाल दी थी। और फिर साहब शराव पीने लगे···।"

"उसके वाद ?"

"उसके वाद उन्होंने मेरे हाथ-पैर पकड़ लिये और कहा—"और थोड़ी-सी शराव दो वोस। और एक पेग···।"

भुवन वावू ने कहा—"खवरदार···! खूब होशियार रहना। ज्यादा शराव देने पर ही साहव का मिजाज विगड़ जायेगा। ज्यादा शराव देने की वजह से ही पीरू अर्दली के हाथों से साहव शराव नहीं लेते। अव साहव को पीरू पर विश्वास नहीं रहा।"

मैंने कहा—"लेकिन साहव ने तो अंग्रेजों को जी खोलकर गालियां देना शुरू कर दिया। ऐसा क्यों वड़े वावू, वताइए तो ?"

भुवन बाबू हंसने लगे।

उन्होंने कहा—"अंग्रेजों को तो वे गालियां देंगे ही। उनकी मेम साहब को अंग्रेज ही तो भगा ले गया है।"

"अंग्रेज? कौन अंग्रेज?"

भुवन बाबू ने कहा—"तुमने उस साहब को नहीं देखा है। हम लोगों के इसी दफ्तर में मेजर स्मिथ थे। वही साहब कैप्टन स्कॉट साहब की मेम साहब को भगाकर ले गये और उसके बाद कैप्टन का दिमाग ही फिर गया है।"

मैंने कहा—"शराब के नशे में साहब ने मुझसे कहा कि वे मुझे विलायत ले जायेंगे।"

"सचमुच साहब ने ऐसा कहा?"

भुवन बाबू ने कुछ रुक कर फिर कहा—"सो अगर साहब तुम्हें विलायत ले जायें तो समझो कि तुम्हारी किस्मत खुल गई लक्ष्मण। देखो, अगर तुम साहब की अच्छी तरह देख-भाल कर पाये हो···।"

भुवन बाबू ने फिर उस दिन और कुछ भी नहीं कहा। मैं भी यथारीति ऑफिस का वक्त खत्म होने पर कांपते-कांपते कैप्टन साहब के क्वार्टर की ओर चल पड़ा।

मैंने पूछा—"उसके बाद?"

लक्ष्मण ने फिर किस्सा सुनाना शुरू किया।

यह एक बड़ा मजेदार किस्सा है साहब। पिछले दिन की तरह हां उस दिन भी मैंने शराब के पेग तैयार कर साहब को दिये। साहब दिन के वक्त दफ्तर में एक दूसरे ही साहब होते और रात में उनका कुछ और ही रूप होता। पीरू अर्दली उस दिन भी ओट में खड़ा-खड़ा सब कुछ देखने लगा।

उस दिन भी साहब ने शुरू में ही मुझे होशियार कर दिया।

साहब ने कहा—"देखो चार पेग देने के बाद मुझे और शराब मत देना। मैं हजार हुक्म करूं, फिर भी नहीं। मैं अगर रोना-धोना शुरू कर दूं, तब भी नहीं। डू यू अण्डरस्टैण्ड?"

मैंने कहा—"यस सर।"

उस दिन भी साहब अंग्रेजों को गालिया देने लगे। भद्दी-भद्दी गालिया··। अंग्रेज साले जुआचोर है, लोफर हैं। डैम, ब्लडी, स्वाइन··।

और उसके बाद साहब कहने लगे—"तुम्हें मैं अपने मुल्क में ले जाऊंगा। तुम खूब बढ़िया लड़के हो। आइ लाइक यू···। डू यू अण्डरस्टैंड?"—

फिर तो मुझे भी बहुत लोभ होने लगा साहब। साहब मुझे

इस कल्पना से ही मैं सिहर उठता। मैं एक मामूली-से घर का लड़का इण्डिया छोड़कर विलायत जा पाऊंगा, यह कोई साधारण वात थी क्या ?

साहव उस दिन भी अंग्रेजों को गालियां देने लगे और मुझे विलायत ले जाने की वात भी उन्होंने दुहराई।

मैं क्या करूं, यह समझ ही नहीं पा रहा था।

उस दिन भी जव चार पेग पूरे हो गये, तव पिछले दिन की तरह साहव ने तंग करना शुरू कर दिया। साहव मेरे पैरों पर पड़ने लगे। वही, और शराव देने के लिए आरज़ू-मिन्नतें, रोना-धोना...।

ठीक पिछले दिन की तरह ही और एक पेग देते ही साहव थोड़ी देर में निढाल होकर ईजी-चेयर पर गिर पड़े। साहव अचेत हो गये।

और फिर उसके वाद पिछले दिन की भांति ही पीरू अर्दली, व्वाय, वावर्ची और खानसामा आये और उन्होंने साहव को पकड़कर उठाया और वगल के कमरे में ले जाकर सुला दिया।

भुवन वावू ने उस दिन कहा—"लक्ष्मण, तुमने तो साहव को अच्छी तरह पटा लिया है रे !"

मैंने कहा—"क्यों, आपने यह कैसे समझा ?"

"साहव ही कह रहे थे। साहव कह रहे थे कि तुम वड़े ऑनेस्ट हो !"

मेरा मन खुशी से खिल उठा।

भुवन वावू ने कहा—"हां, साहव कह रहे थे कि पहले पीरू अर्दली खूव चोरी करता था। ह्विस्की का कोई हिसाव ही नहीं रहता था। और फिर वह शराव भी ज्यादा पिला दिया करता था। अव हिसाव में गोलमाल नहीं होता। अव ह्विस्की की एक वोतल कई दिनों तक चलती है।"

मैंने कहा—"आते वक्त मैं आलमारी में ताला वन्द कर देता हूं और चावी अपने साथ ही ले आता हूं। उन लोगों के हाथों में मैं चावी छोड़ता ही नहीं।"

"खूव वढ़िया करते हो तुम। हमेशा साहव का मन रखना। साहव खुश रहेंगे तो तुम्हें राजा वना देंगे रे। साहव खुद स्कॉटलैंड के रहने वाले हैं तो क्या हुआ ? स्कॉटलैंड के दूसरे साहवों की तरह वे कंजूस नहीं हैं। देखते नहीं, अंग्रेज उन्हें फूटी आंखों भी नहीं सुहाते।"

मैंने पूछा—"अच्छा वड़े वावू, साहव की वीवी क्यों भाग गई, वताइए तो ?"

भुवन वावू ने कहा—"भागेगी नहीं ? इस तरह के पियक्कड़ साहव के साथ भला कोई औरत गिरस्ती निभा सकती है ? दिन के वक्त तो साहव रहते चुस्त और दुरुस्त, लेकिन रात में ? रात में भला क्या साहव आदमी रहते हैं ?"

मैंने कहा—"साहब कह रहे थे कि वे मुझे विलायत ले जायेंगे।"

"रात में कही गई उनकी बात की कोई कीमत नहीं भाई। फिर भी देखो, अगर तुम्हारी किस्मत खुल जाये तो···।"

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे ही बढ़ती गई मेरी उम्मीद भी। साहब हरेक दिन मुझे पकड़कर कहते—"तुम्हें बोस मेरे साथ विलायत जाना ही होगा। तुम अगर नहीं गये तो मेरा काम नहीं चल सकता। अगर तुम मेरे साथ नहीं जाओगे तो भला मुझे कौन ठीक माप से शराब पिला सकेगा? दूसरा आदमी मुझे ज्यादा शराब पिला देगा और मेरा लीवर सड़ जायेगा। जानते हो बोस, ज्यादा शराब पीना ठीक नहीं! ज्यादा शराब पीना बहुत खतरनाक है।"

शराब के नशे में साहब मुझे जकड़कर पकड़ लेते।

कहते—"बोलो बोस, तुम जाओगे न? बोलो, तुम मेरे साथ यू० के० चलोगे न?"

मैं कहता—"जरूर जाऊंगा साहब, जरूर।"

तब साहब खुशी के मारे नाचने लगते और कह उठते—"वेरी गुड ब्वाय, लाओ और एक पेग शराब दो··।"

रोज ऐसा ही होता।

आखिरकार एक दिन ऐसा ही हुआ कि सचमुच ही साउथ ईस्ट एशिया के हेड-क्वार्टर से साहब को चले जाने की इजाजत मिल गई। साहब ने दरख्वास्त दी थी कि वे अपने घर लौट जाना चाहते हैं। साहब की दरख्वास्त मन्जूर हो गई थी। फिर तो पूरी ऑफिस में चर्चा शुरू हो गई कि साहब चले जा रहे हैं। साहब की जगह कौन आयेगा, इसी बात को लेकर माथापच्ची शुरू हो गई।

लेकिन मैं उस समय खुशी के झूले में झूल रहा था। मैं विलायत जाऊंगा। मेरे रिश्तेदार जो अब तक मुझे ओछी निगाहों से देखा करते थे, वे अब मुझे दूसरी ही नजर से देखेंगे। मैं उनकी नजरों में बड़ा बन जाऊंगा। मेरी हालत सुधर जायेगी। सही मायने में मैं बड़ा आदमी बन जाऊंगा।

आखिर एक दिन ऑफिस में सबों ने कहा—"अब साहब चले जा रहे हैं।"

भुवन बाबू ने भी मुझे बुलाकर कहा—"अरे लक्ष्मण, इसी बुधवार को तो साहब विलायत जा रहे हैं। आखिरकार तुम्हे वे अपने साथ ले जायेंगे तो!"

मैंने कहा—"देखू, आज रात को साहब से कहूंगा।"

भुवन बाबू ने कहा—"खूब होशियारी से कहना, समझे? यह मौका हाथ से निकलने न पाये।"

मैंने पूछा—"प्लेन कब छूटेगा, क्या आप बता सकते हैं?"

भुवन बाबू ने कहा—"रात के डेढ़ बजे···।"

उस रात भी वैसा ही हुआ। साहब ने खुद ही बात छेड़ी।

उन्होंने कहा—"सुनते हो बोस, मैं बुधवार को रात के प्लेन से यू० के० जा रहा हूं। तुम रेडी तो हो ?"

मैंने कहा—"हां सर, रेडी।"

उस दिन शनिवार था। रविवार की रात बीती। उस दिन भी वही एक ही बात।

उसके बाद आई सोमवार की रात।

उस दिन साहब ने पूछा—"आर यू रेडी ? तुम रेडी तो हो ?"

सचमुच मैं तब तक तैयार हो चुका था। कोट-पैंट-सूट सभी तैयार करवा चुका था। ऑफिस की नौकरी से मैंने इस्तीफा भी दे दिया। एस्टाब्लिशमेंट सेक्शन से मैंने अपना हिसाब भी चुकती करवा लिया।

मंगलवार को भी वही बात।

पीरू अर्दली, ब्वाय, बावर्ची और खानसामा—सभी सचमुच मुझसे जलने लगे। लेकिन मैं तब तक उनके कब्जे से बाहर निकल चुका था। सिर्फ उनके ही कब्जे से बाहर क्यों, सबों के कब्जे से बाहर था मैं।

बुधवार आया। बुधवार की रात भी आई। मैं अपनी नई सूटकेश लेकर साहब के क्वार्टर पर गया। साहब को मैंने हर रोज की तरह शराब पिलाई। उस दिन साहब ने ज्यादा शराब नहीं पी। फिर भी चार पेग पीने के बाद साहब हमेशा की तरह ईजी-चेयर पर लुढ़क पड़े। लेकिन दो-एक घंटे बाद साहब उठ खड़े हुए। झट-पट तैयार हो गये। हम लोग दोनों गाड़ी में बैठकर बैरकपुर के मिलिटरी एयर-पोर्ट में पहुंचे। प्लेन के छूटने की बात थी रात के डेढ़ बजे। लेकिन सुना गया कि प्लेन में कुछ खराबी आ गई थी। खबर मिली कि प्लेन के छूटने में देर होगी।

हमने काफी देर इंतजार किया। लेकिन बाद में सुना गया कि उस रात प्लेन नहीं छूटेगा। साहब परेशान होकर मेरे साथ पहले क्वार्टर पर लौट आये। साहब ने कहा—"डैम इट, ऑल डैम···।"

मैंने पूछा—"उसके बाद ?"

लक्ष्मण ने कहा—"उसके बाद और फिर क्या कहूं ! उसके बाद वाले दिन दोपहर के वक्त प्लेन में बैठकर साहब विलायत चले गये।"

मैंने पूछा—"और तुम ? साहब तुम्हें अपने साथ ले नहीं गये ?"

लक्ष्मण ने कहा—"उस समय दिन जो था। दिन का वक्त ! दिन के वक्त साहब जो दूसरे ही आदमी बन जाते थे। अगर प्लेन रात में छूटा होता तो क्या मैं इस समय यहां चपरासी की नौकरी करता ? तब तो मैं लन्दन में होता।"

आत्महत्या या हत्या ?

पिछले तीस वर्षों से मैं अनिद्रा का मरीज हू। वगैर दवा खाये मुझे नींद नही आती। हिन्दुस्तान मे जितनी भी तरह की नीद की दवाएं है, वे सभी मैंने खाई हैं। शुरू-शुरू में दो-तीन महीनो तक वे दवाएं फायदा दिखाती हैं, लेकिन उसके बाद उन दवाओं का कोई असर नही होता। तब लाचार होकर नींद की गोलियो की संख्या बढानी पड़ती है। लेकिन जब आखिरकार गोलियों की सख्या बढाने पर भी कोई लाभ नही होता, तब दवा बदल देनी पड़ती है।

सबसे ज्यादा तकलीफ होती है सुबह के वक्त ही। सुबह करीब साढे नौ बजे तक माथा भारी रहता है। किसी के साथ बातें करने की तबीयत नही होती। किसी भी काम में मन नही लगता। असल बात यह है कि उस समय तक मेरा मिजाज ठीक नही रहता है।

पिछले तीस सालों से ऐसा ही चल रहा था। अचानक मन में यह बात आई कि डॉक्टर कुशारी से इलाज कराया जाये तो कैसा रहे ! डॉक्टर कुशारी कलकत्ता के एक जाने-माने मनोवैज्ञानिक डॉक्टर हैं।

एक दिन टेलीफोन पर सम्पर्क कर मैंने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने मुलाकात करने का समय तय भी कर दिया।

लेकिन ताज्जुब की बात यह थी कि उन्होंने जो समय तय किया था, वह मेरे लिए सुविधाजनक नही था। उन्होंने समय दिया था आगामी शुक्रवार को रात के साढ़े नौ बजे !

डॉ० कुशारी ठहरे मानसिक रोग के डाक्टर। तो फिर वे जरूर मेरे सामने सवालों की झडी लगा देंगे। मेरा जवाब सुनकर ही वे मेरी अनिद्रा का कारण समझ सकेंगे और उसके निदान की व्यवस्था करेंगे। तो फिर प्रश्नोत्तर समाप्त होते-होते और दो घंटे बीत ही जायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि रात के साढ़े नौ बजे से साढ़े ग्यारह बजे तक का समय लेकर वे मेरी दवा का इन्तजाम करेंगे। और फिर इतनी रात बीतने के बाद दवा की दुकानें भी तो बन्द हो जायेंगी।

मेरी बातों के जवाब में डॉ० कुशारी ने कहा—"रात मे देर तक जागने में मुझे कोई तकलीफ नही होगी। रात का वक्त इसीलिए तय कर रहा हू कि उस सम

यहां भीड़ नहीं रहेगी। और मैं भी मन लगाकर एकांत में ध्यान से आपकी बातें सुन सकूंगा।"

सो फिर ठीक वैसा ही किया गया। शुक्रवार के दिन मैं डॉक्टर कुशारी के कहने के मुताबिक घड़ी देखकर ठीक साढ़े नौ वजे उनके पास जा पहुंचा। जो दो-एक मरीज बचे हुए थे, उन्हें विदा करने के बाद डॉ० कुशारी ने मुझे अपने पास बुलाया।

उन्होंने पूछा—"कहिए, आपको क्या बीमारी है?"

मैंने कहा—"मुझे नींद नहीं आती। मुझे कोई ऐसी दवा दीजिए कि मुझे नींद आ जाया करे।"

डॉक्टर कुशारी ने पूछा—"आप कहां रहते हैं?"

मैंने कहा—"बादामतल्ला में।"

"आपका घर बड़े रास्ते के किनारे है या भीतर गली में?"

मैंने जवाब दिया—"भीतर गली में। मेरे घर का पता है—उन्नीस ए, केदार वसु लेन।"

डाक्टर कुशारी ने कहा—"मैं उस केदार वसु लेन में जा चुका हूं। वहां मेरा एक मरीज रहता था। खैर, वह एक दूसरी कहानी है। लेकिन आपको नींद क्यों नहीं आती, बताइए तो?"

मैंने कहा—"शायद रात में देर तक जागने के कारण···।"

डॉक्टर कुशारी ने पूछा—"इतनी रात तक आप आखिर जागते क्यों थे?"

मैंने कहा—"मैं रात-भर जाग-जाग कर साप्ताहिक पत्रिका के लिए धारा-वाहिक उपन्यास लिखा करता था।"

"उपन्यास?"

मैंने कहा—"जी हां।"

डॉक्टर कुशारी ने कहा—"तो फिर आप एक लेखक हैं?"

मेरी बात सुनकर शायद डॉक्टर कुशारी और भी ध्यान से मेरा परीक्षण करने लगे।

उन्होंने पूछा—"सो दिन के वक्त आप क्यों नहीं लिखा करते थे? शायद दिन में आप कोई नौकरी करते थे।"

मैंने जवाब दिया—"जी नहीं···। मैं पार्ट-टाइम लेखक नहीं हूं। मैं दिन के वक्त भी लिखा करता था और रात के वक्त भी। रात में नींद न आये, इसीलिए मैं बहुधा आंखों में सरसों का तेल लगा लिया करता था। कभी-कभी मैं 'रेटालिन', नामक दवा की गोली भी खा लिया करता था, ताकि मुझे नींद नहीं आये। वह गोली खा लेने के बाद फिर नींद नहीं आती। इसी तरह साल-दर-साल मोटे-मोटे उपन्यास लिखता रहता हूं। इसीलिए बहुत-से लोग मुझे गालियां भी देते थे।"

—गालियां देते थे ? आखिर क्यों ?

मैंने कहा—क्योंकि मेरी किताबें अधिक कीमती होने पर भी दूसरों की किताबों से ज्यादा बिकती थीं।

—उसके बाद आप सोते कब थे ?

मैंने कहा—रात के साढ़े तीन या चार बजे। सो उस समय भी थोड़ी नींद ले सकूं, इसका उपाय नहीं था। इसका कारण यह है कि उसी वक्त गाना शुरू हो जाता था।

—गाना ? कैसा गाना ? क्या लाउड-स्पीकर पर बम्बइया फिल्मों के गाने बजने लगते थे ?

मैंने कहा—नहीं। हम लोगों की गली के भीतर तड़के चार-साढ़े चार बजे कारपोरेशन का एक जमादार अपनी गाड़ी लेकर आता और कूड़ा इकट्ठा करके गाड़ी में डालता। काम करते-करते वह तुलसीदास के पद गाया करता। उसका चीत्कार सुनकर मेरी नींद टूट जाती।

—अच्छा, तो जमादार का गाना सुनने पर आपकी नींद टूट जाती थी ?

संभवतः डॉक्टर कुमारी को मेरी बातें बड़ी दिलचस्प लग रही थीं।

उन्होंने कहा—मैं आपलोगों के बादामतल्ला की उसी केदार बसु लेन में एक मरीज को देखने के लिए उसके घर में एक बार गया था।

मरीजों का नाम बताना शायद मानसिक चिकित्सकों के लिए मना है। इसी-लिए मैंने उनके मरीज का नाम नहीं पूछा। फिर भी मैंने सिर्फ यही पूछा—आप कितने नम्बर के मकान में गये थे ?

—बीस नम्बर के मकान में।

मकान का नम्बर बताते ही सारी घटना मुझे याद आ गई। याद आ गई एक भीषण काण्ड की। वह काण्ड इतना भयावह था कि हम लोग सभी चौंक उठे। कारपोरेशन का जमादार रामदास भी उसी तरह चौंक उठा था। वही किस्सा पहले सुनाता हूं।

असल कहानी है कारपोरेशन के उस जमादार को लेकर ही।

मैंने एक दिन उससे उसका नाम पूछा था। मैंने पूछा था—तुम्हारा क्या नाम है भैया ?

उसने जवाब दिया था—हुजूर, मेरा नाम है रामदास।

मैंने पूछा था—सो तुम इतनी भोर में इतना चीखते-चिल्लाते क्यों हो ?

रामदास ने कहा था—मैं तो चिल्लाता नहीं हुजूर। मैं तो रामायण का पाठ करता हूं।

यह कहकर वह फिर गाने लगा था—

"सियाराममय सब जग जानी।
करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी।"

मैंने उससे पूछा था—भैया, इसका मतलब क्या है?

रामदास ने जवाब दिया था—हुजूर, इसका मतलब यही है कि सारी दुनिया सीताराममय है और मैं उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।

तुलसीदास जी की चौपाई का अर्थ मुझे बड़ा अच्छा लगा था। लेकिन मैंने उस जमादार रामदास से कहा था—भैया, मैं सारी रात जाग-जाग कर लिखता हूं और उसके बाद भोर में कुछ देर तक सोया करता हूं। तुम्हारे गाने की आवाज से मेरी नींद टूट जाती है। मुझे बड़ी तकलीफ होती है। इसीलिए कहता हूं कि सुबह-सुबह इतनी जोर से रामायण मत गाया करो। जरा धीरे-धीरे गाया करो ताकि मैं कम-से-कम और एक घंटे तक सो सकूं।

लेकिन मेरी बात उसने सुनी नहीं। नतीजा यह हुआ कि पिछले तीस वर्षों से मैं अनिद्रा के रोग से पीड़ित हूं।

वह जमादार हमेशा भोर के साढ़े चार बजे रामायण की चौपाइयां गाया करता था। उसका नियम कभी टूटा नहीं। किन्तु इस बीच सिर्फ एक दिन उसके गाने की आवाज सुनाई नहीं पड़ी। उस दिन जब मेरी नींद टूटी, तब घड़ी देखने पर पता चला कि आठ बज चुके थे। मैं यह देखकर हैरान रह गया। तो क्या आज रामदास ने तुलसीदास की चौपाइयां गाईं नहीं? या फिर रामदास गैरहाजिर हो गया। अथवा वह फिर बीमार पड़ गया है क्या? आखिर माजरा क्या है? नहा-धोकर नाश्ता कर जब मैं बरामदे में आया, तब मैंने देखा कि हमारे मकान के पूरब की तरफ बहुत-से लोगों की भीड़ जमा थी। किसी एक विशेष चीज को केन्द्र कर अनगित लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। भीड़ किसलिए जमा हो गई थी, यह मैं ऊपर बरामदे से समझ नहीं पाया। असल माजरा समझने के लिए मैं नीचे रास्ते पर चला आया। वहां भीड़ के बीच आते ही मैंने देखा कि रामदास रोज की तरह अपनी गाड़ी के पास एक झाड़ू अपने हाथ में लिये गुम-सुम खड़ा था। सबों की भांति वह भी चुपचाप हैरान-सा खड़ा था और सबों की भांति ही उसकी नजर भी किसी एक विशेष चीज की तरफ केन्द्रित थी। वह चीज थी एक मृत देह—एक लाश। वह लाश एक पुरुष की थी। सबों की जुबान पर एक ही सवाल था—यह हत्या है या आत्महत्या? मजा यह है कि इस सवाल का जवाब किसी के पास न था।

कोई भी जब इस सवाल का उत्तर नहीं दे पा रहा था, तभी पुलिस की एक गाड़ी आई। उस गाड़ी से पुलिस के पांच-छह कांस्टेबल उतरे। उनके साथ ही खुद दरोगा बाबू भी आये थे। साथ-ही-साथ सारा मामला भी स्पष्ट होने लगा···।

दरअसल मामला खूब सीधा और सरल था। और फिर यह भी सच था कि

इस तरह की जटिल घटना और कोई हो ही नही सकती। इस घटना मे कोई फरियादी भी नहीं था और न ही कोई आसामी। इसका कारण यह है कि यह पाप किसका था, पता नही। मुझे तो ऐसा लगा कि यह मेरा पाप है, आपका पाप है, हम सबों का पाप है। इस पाप के जहर मे हम सभी जर्जर हो चुके हैं। यह शायद सभ्यता का ही पाप है। सभ्यता जो, विगत पांच हजार सालों पहले शुरू हुई थी। जी हां, इस नागर-सभ्यता की उम्र है सिर्फ पांच हजार साल।

इसीलिए शायद गोस्वामी तुलसीदास के दोहों ने जमादार रामदास को इतना प्रभावित किया था। रामदास, जिसने शायद बिहार के आरा या छपरा जिले के निकट गांव में जन्म लिया था। गरीब के घर मे जन्म हुआ था, इसीलिए पढने-लिखने का मौका मिला नही। इसीलिए कलकत्ता कारपोरेशन के जमादार की कम तनख्वाह की नौकरी पाकर भी उसे नागर-सभ्यता का पाप छू नही पाया। इसीलिए कलकत्ता के रास्ते का कूड़ा-कर्कट साफ करने में भी वह परम तृप्ति का अनुभव करता था। इसीलिए वह अपने स्वर मे सुबह-सुबह रामायण की चौपाइयां गाकर सबो की नींद तोड दिया करता था और सबों को याद दिला दिया करता था—

"जह राग न लोभ न मान मदा।
तिन्ह के सम बैभव वा विपदा॥"

अर्थात जिस मनुष्य में आसक्ति नही, अभिमान नही, दंभ नही; उसके लिए सुख और दुःख दोनो ही समान हैं। वह उन सबो के परे है।

और इधर हम ये शहर के पढे-लिखे आदमी। विद्या, बुद्धि और अर्थ के घमड मे चूर हम लोग रामदास को आदमी भी नही समझ पाते थे। सुबह-सुबह अपने शोर से हमारी नींद तोड़ देने के कारण हम लोग उसे अभिशाप दिया करते थे। मुहल्ले के अजय बाबू इसीलिए मुझसे बीच-बीच मे कहा करते थे—यह रामदास तो बडा परेशान करता है विमल बाबू। भोर मे जरा तबीयत के साथ नींद ले सकू, यह भी मुमकिन नहीं। क्या आप कारपोरेशन के अफसरो के पास एक कम्प्लेन नही भेज सकते?

अजय बाबू यानी अजय सरकार। अजय सरकार बीस नम्बर के मकान के तीसरे तल्ले में किरायेदार थे। एक अरसा बीत गया, जब कि उन्होंने नब्बे रुपये मासिक किराये पर उस मकान का तीसरा तल्ला किराये पर लिया था। आज को बाजार-दर के हिसाब से बारह सौ रुपये देने पर भी ऐसा मकान मिल नही सकता। सलामी देनी पड़ेगी अलग से। किन्तु उस जमाने में ये सारे झमेले नही थे। सरकार बाबू के पास पांच बड़े-बड़े कमरे थे, रसोई-घर था और था भण्डार-घर।

मालिक अपने नावालिग लड़के को छोड़कर परलोक सिधार गये थे। वे लोग रहते थे चकतल्ले में और दो तल्ले में। मामले-मुकदमे के झमेलों में वे कभी पड़े नहीं। किराये के नव्वे रुपये के अलावा उनकी अपनी अलग से भी आमदनी थी। इसलिए यह नुकसान इतना ज्यादा इन्हें अखरता नहीं था। इस तरह अजय सरकार साहव मजे में ही अपने दिन गुजार रहे थे।

मेरे साथ भेंट होते ही अजय वावू कहा करते—चीज-वस्त की कीमतें बढ़ रही हैं, यह देख रहे हैं तो ? मामूली-सी चीज है आलू, वह भी है दो रुपये किलो। फिर भी अभी तो वारिश का समय है, तो फिर दीपावली के वक्त इसकी कीमत क्या होगी, जरा सोचिए तो !

हर वक्त इसी तरह महंगाई की एक-न-एक शिकायत वे करते ही रहते। वे कभी आलू का रोना रोते, कभी साड़ी का, कभी वनियान-जांघिए का या फिर कभी मछली और मांस का। किसी-न-किसी चीज का रोना वे हर समय रोते ही रहते। आफिस से लौटते वक्त भेंट होते ही मुझसे कहते—अच्छा साहव, इतनी जगहों में भूकम्प होते रहते हैं। क्या इस कलकत्ता महानगर में एक बार भूकम्प नहीं हो सकता ? लेवनान में लड़ाई चल रही है, यहां क्यों नहीं होती लड़ाई ? वैसा हो तो जान वचे !

मैं पूछता—क्यों ? अचानक आप ऐसी वात क्यों कह रहे हैं ?

अजय वावू कहते—कहूं क्यों नहीं ? चीज-वस्तों की कीमत इसी तरह उछलती रही तो आदमी जिन्दा कैसे रहेगा, वताइए तो ? देखिए साहव, यह कलकत्ता शहर अगर तहस-नहस हो जाये, तो जान वचे। अव और वर्दाश्त नहीं होता साहव !

मैं कहता—प्राय: तीन सौ साल की उम्र हो गई कलकत्ता की। भला वताइए तो, कव इसकी हालत अच्छी रही है ?

अजय वावू कहते—पहले फिर भी कलकत्ता के रास्तों में चलना-फिरना मुमकिन था। अव तो वस कोई उपाय ही नहीं रहा। आदमी क्या गाय-वैल हो गये हैं ? कल का शान्ति-जुलूस देखा था आपने ? जुलूस तो पहले भी निकलते रहे हैं। लेकिन शान्ति-जुलूस के कारण कितने ही लोग अपने घर लौट नहीं पाये, क्या यह आप जानते हैं ? सवों को हाड़ा और सियालदह स्टेशन में रात वितानी पड़ी। इसीलिए कितने ही लोग आज हमारे दफ्तर में आये ही नहीं।

अजय वावू की यह शिकायत कोई नयी नहीं थी। जिस रोज से अजय वावू के साथ मेरा परिचय हुआ है, उसी दिन से उनके मुंह से इस तरह की वातें सुनता आया हूं। उनकी एक लड़की थी। उसके विवाह के समय मैं भी निमंत्रित होकर गया था। वह, अजय वावू ने कैसा इन्तजाम किया था। खूव धूम-धाम की थी उन्होंने। एक-एक प्लेट में परोसी गई चीजों की कीमत उस जमाने में भी तीस रुपये से कम नहीं रही होगी। कितनी तरह की मछलियां और कितनी तरह की मिठाइयां।

इसकी कोई गिनती ही नहीं थी। और कैसी थी शान-शौकत।

तीन-चार दिनों के बाद रास्ते में ही उनके साथ मुलाकात हो गयी थी। मैंने पूछा था—लड़की की शादी में आप इतना खर्च करने क्यों गये?

अजय बाबू की सूरत ऐसी लग रही थी कि मानो अभी रो देंगे। उन्होंने जवाब दिया था—यह सब हुआ है मेरी पत्नी की वजह से !

मैं उस समय उनका मतलब समझ नहीं पाया था। मैंने पूछा था—पत्नी की वजह से ! इसका मतलब ?

अजय बाबू ने जवाब दिया था—यह आप समझ नहीं पायेंगे।

इसके बाद मैंने भी उनसे कुछ विशेष पूछ-ताछ नहीं की। उन्होंने भी अपनी ओर से अपनी बात को स्पष्ट नहीं किया।

हम लोगों के मकान आस-पास थे। इसीलिए गली से जाते वक्त बहुधा उनसे भेंट हो जाती। एक दिन मैंने देखा कि खूब ही कीमती सूट पहनकर वे ऑफिस जा रहे थे। गले में नेकटाई भी झूल रही थी। मैंने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने भी मुझे नमस्कार किया। लेकिन मैं तो सचमुच ही उनका सूट और उनकी नेकटाई देखकर हैरान रह गया था। सूट को देखने पर ऐसा लगा कि उसकी कीमत हजार रुपए से कम तो हर्गिज नहीं होगी। अचानक इतना कीमती सूट क्यों पहनने लगे वे ? तो क्या वे किसी विशेष कार्य से कहीं जा रहे हैं ?

सिर्फ उस दिन ही नहीं। उसके बाद मैं उन्हें हर रोज कीमती सूट पहने देखता। अचानक उनके इस परिवर्तन को देखकर मुझे भारी ताज्जुब हुआ था। तो क्या उनकी तनख्वाह बढ़ गई है ? या फिर उन्हें नौकरी में तरक्की मिली है ?

उसके बाद और भी हैरान कर देनी वाली बात मैंने देखी। मैंने देखा कि उन्होंने एक गाड़ी खरीदी थी। वे गाड़ी में बैठकर दफ्तर जाने लगे। उनका ड्राइवर गाड़ी चलाता और वे पिछली सीट पर बैठे-बैठे सिगरेट के कश लेते।

आखिर यह हुआ क्या ? मुझे ऐसा लगा कि संभवतः उन्हें किसी दूसरे दफ्तर में मोटी तनख्वाह की नयी नौकरी मिल गई होगी।

एक दिन मुझे उन्होंने देखकर गाड़ी रोक दी। मैंने भी सौजन्यवश उन्हें नमस्कार किया।

उन्होंने भी नमस्कार किया। उसके बाद वे गाड़ी से उतरकर मेरे पास आये।

मैंने पूछा—शायद कोई नयी नौकरी मिली है आपको ? या फिर आपको प्रमोशन मिला है ?

अजय बाबू ने कहा—शायद मेरी गाड़ी देखकर आप ऐसा कह रहे हैं !

मैंने कहा—नहीं, ठीक ऐसी बात कोई नहीं।

अजय बाबू ने कहा—मेरा यह सूट देख रहे हैं तो ? और यह नेकटाई ? इस सूट को तैयार कराने में करीब बारह सौ रुपये खर्च हुए हैं। और इस तरह के छह

सूट मैंने तैयार कराये हैं। और यह नेकटाई भी तो देख रहे हैं आप ! क्या पहले कभी आपने मुझे नेकटाई पहनते देखा है? और क्या सिगरेट? क्या पहले कभी आपने मुझे सिगरेट पीते देखा है?

—तो फिर किसी दूसरी ऑफिस में आपको जरूर कोई बढ़िया नौकरी मिली है !

—नहीं साहब, वही नौकरी है। नौकरी भी वही और तनख्वाह भी वही। वही कैशियर की नौकरी…।

मैं हैरान रह गया। मैंने पूछा—तो फिर ?

अजय बाबू ने मेरी बातों का कोई जवाब दिये बगैर गाड़ी में बैठकर ड्राइवर को गाड़ी चलाने के लिए इशारा किया। गाड़ी चलने लगी। चलती हुई गाड़ी से ही उन्होंने कहा—यह सब हुआ मेरी पत्नी की वजह से।

—पत्नी की वजह से ?

—यह आप समझ नहीं पायेंगे विमल बाबू…।

उनकी बात पूरी होते-होते गाड़ी काफी दूर निकल गई।

सच पूछिए तो उस समय से ही अजय बाबू के दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में मेरा कौतूहल बढ़ गया। और वैसे देखा जाये तो अजय बाबू और मैं काफी वर्षों से एक ही मुहल्ले में पास-पास ही रह रहे थे। फिर भी उनके ऊपर मेरी कोई विशेष नजर नहीं पड़ी। अजय बाबू की लड़की की शादी में गया था। वहां जाते ही पहले-पहले अजय बाबू की पत्नी को मैंने देखा था। इतनी भीड़ के बीच भी उन्हें देख कर मैं जरा चौंक गया था। जिस महिला की अपनी लड़की की शादी हो, उसे इस तरह सजे-संवरे और जेवरों से लदे हुए देख कर कोई भी आदमी चौंक ही पड़ता। पूरे शरीर पर जड़ाऊ गहने थे। गालों पर रूज लगा हुआ था और होंठों पर लिपस्टिक। मैंने तो पहले-पहल लड़की की मां को देख कर यही समझा था कि यही दुल्हन है।

लेकिन अजय बाबू ने ही अपनी पत्नी से मेरा परिचय करा दिया था। उन्होंने कहा था—ये ही हैं मेरी मिसेज।

मैंने उसी दिन पहले-पहल मिसेज सरकार को देखा था। उसके बाद यहां-वहां, बरामदे में और खिड़कियों में कितनी बार उन्हें देखा था, इसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन मैंने जब भी उन्हें देखा, वे हमेशा सजी-धजी और जेवरों से लदी हुई होतीं।

इसी तरह साल दर साल गुजरते गये। अचानक एक दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसके लिए मैं कतई तैयार नहीं था। उस रोज अजय बाबू सीधे मेरे घर में चले आये। उन्होंने कहा—कल शाम को मेहरबानी करके मेरे घर पर आइए। आपको थोड़ी तकलीफ दूंगा…।

—शाम को ? क्या बात है, पहले यह तो बताइए।

अजय बाबू ने कहा—मेरी मिसेज की विशेष इच्छा है कि आप हमारे यहां आकर चाय पियें।

क्यों, बात क्या है ?

अजय बाबू ने हंसकर कहा—कल हमारी मैरीज-ऐनिवर्सरी है। यानी शादी की साल-गिरह...।"

उसके कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा—वैसे सच पूछिए तो मैंने कभी इसके बारे में अपनी दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेकिन मेरे साडू भाई लोग हमेशा ही धूम-धाम से अपनी मैरिज-ऐनिवर्सरी मनाते हैं। इस बार मेरी मिसेज की भी बड़ी इच्छा है कि मैरिज ऐनिवर्सरी मनाई जाये।

—तो मैं अकेला ही रहूंगा या और भी कोई आयेगा ?

—नहीं, और कोई नहीं आयेगा। सिर्फ आप ही...।

—सिर्फ मैं ही ? लेकिन क्यों ?

—आप ठहरे एक लेखक। इसीलिए मेरी मिसेज की इच्छा है कि आप भी आयें।

मैंने पूछा—तो क्या आप अपने साडू भाई को नहीं बुला रहे हैं ?

अजय बाबू ने जवाब दिया—वे लोग तो इण्डिया में नहीं रहते। वे रहते हैं अमेरिका में। वहां मेरे साडू भाई एक यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। डाक्टरेट हासिल करने के बाद वे यहीं नौकरी कर रहे हैं। मोटी तनख्वाह मिलती है। हम लोग उनके सामने कुछ भी नहीं...।

आखिर किया क्या जा सकता था। दूसरे दिन शाम को मुझे उनके घर पर जाना ही पड़ा। अगर वहां नहीं जाता तो जीवन में एक बहुमूल्य अनुभव से वंचित ही रह जाता। वहां जाकर मैंने देखा कि बड़ा जोरदार आयोजन था। फल, मिठाई, नमकीन, कॉफी, केक, पेस्ट्री, अण्डा-फ्राई और पैटिस्—सबों का इन्तजाम था और श्रीमती सरकार के उस मन-भावन मेक अप और साज-पोशाक का क्या कहना! उन्हें देखकर कौन कह सकता था कि उनकी इतनी उम्र हो गई है। कौन कह सकता था कि उनकी लड़की की शादी हो चुकी है और वे नानी भी बन चुकी हैं ?

औपचारिक परिचय के बाद मिसेज सरकार ने कहा—हम लोग आस-पास के मकान में ही रहते हैं। फिर भी आपके साथ हमारा घनिष्ठ परिचय नहीं। इसी लिए मैंने इनसे कहा कि वे आपको निमन्त्रित कर आयें।

मैं खाने के लिए बैठा। अप-टू-डेट साज-सज्जा, अप-टू-डेट आचरण और अप-टू-डेट परिवेश...। कमरा भी बहुत सजा हुआ था। कई साल पहले उनकी लड़की की शादी में जब मैं आया था, तब इन चीजों पर नजर डालने का मौका ही नहीं

मिला था। आज नजर-भर सब कुछ मैंने देखा। उनके घर के सामने मेरा घर कुछ भी नहीं था। देखने पर ही पता चलता था कि गृहिणी की रुचि और उनका सौन्दर्य-बोध आले दर्जे का है।

मिसेज सरकार की बातों से मेरा ध्यान टूटा। उन्होंने कहा—आप तो कुछ भी खा ही नहीं रहे हैं। क्या एक प्याली कॉफी और दूं?

अजय बाबू भी खूब सजे-धजे नजर आ रहे थे। मैंने उन्हें अपनी एक किताब और रजनीगंधा का एक गुच्छा उपहारस्वरूप दिया था। वे मेरा तुच्छ उपहार पाकर कितने खुश हुए थे, इसका बार-बार बखान करके भी मानो वे अघा नहीं रहे थे। शायद आधुनिक उच्चवित्त समाज की यही रीति है, यही अदब-कायदा है, यह सोचकर मैंने भी कोई प्रतिवाद नहीं किया। मैं जानता था कि ये सब बातें औपचारिकता के रूप में ही कही जाती हैं। इससे ज्यादा इसका महत्व और कुछ नहीं···।

—और एक केक लीजिए न! इसे मैंने खुद अपने हाथों से बनाया है!

जब उन्होंने खुद केक तैयार किया है तो मुझे भी एक केक लेकर मुंह में ठूंसना ही पड़ा। वैसे भी मैं यह भली भांति समझ चुका था। केक बाजार का खरीदा हुआ था। केक खाकर मैंने कहा—वाह आपने अपने हाथों से यह केक बनाया है, इसीलिए यह इतना बढ़िया बना है।

और ठीक इसके बाद ही वहां मेरी आंखों के सामने ही एक दुर्घटना घट गई।

अजय बाबू का कसूर सिर्फ यही था कि उन्होंने कहा था—मेरी मिसेज खाना खूब बढ़िया बनाती है, क्या यह आपको मालूम है?

और साथ ही-साथ मिसेज सरकार ने अण्डा-फ्राई की एक प्लेट अजय बाबू के मुंह पर दे मारी। और फिर उन्होंने चीखते हुए कहा—बदमाश कहीं के···। स्काउण्ड्रल···। एक नम्बर के पाजी···। निकल जाओ घर से, निकल जाओ, निकलो···अभी निकलो···।

अपनी आंखों के सामने यह दुर्घटना अगर मैंने नहीं देखी होती, तो मैं हर्गिज विश्वास न करता कि कोई स्त्री बाहर के किसी सज्जन की मौजूदगी में अपने पति के मुंह पर जूठी प्लेट फेंक कर उसका अपमान भी कर सकती है।

—आपने ऐसा स्काउण्ड्रल हस्बैण्ड और कहीं देखा है विमल बाबू, जो इस तरह अपनी पत्नी की बेइज्जती कर सकता हो? जिसकी खुद की एक बावर्ची रखने की हैसियत नहीं, वह बाहर के एक आदमी से कह सकता है—मेरी मिसेज खाना खूब बढ़िया बनाती है!···तुम्हें यह कहते हुए शर्म भी नहीं आई? बढ़िया खाना बनाना एक बहुत बड़ा क्वालिफिकेशन है न? तुम मामूली-सी तनख्वाह पाते हो, इसीलिए एक खानसामा भी नहीं रख सकते। अपनी बीबी को नौकरानी की तरह खटाते हो, यह कहने में तुम्हें शर्म आ रही है क्या?

अजय बाबू उस समय क्या करें, यह समझ नहीं पा रहे थे। अण्डा-फ्राई में सने मुंह को लेकर ही वे बाथरूम में घुस गये। अपना मुंह धोकर और तौलिए से पोंछ कर वे फिर कमरे के भीतर चले आये। मैं भी क्या करूं, यह समझ नहीं पा रहा था। मैं वहां से चले जाने के लिए उठ कर खड़ा हो रहा था लेकिन अजय बाबू ने मुझे रोक लिया। उन्होंने कहा—क्या आप चले जा रहे हैं ?

मिसेज सरकार ने कहा— आप चले मत जाइए विमल बाबू। बैठिए'''। देख जाइए कि कैसे बेशर्म और बेहया गरीब भिखारी के पल्ले पड़ी हूं मैं। अपनी आंखों से देख जाइए कि कैसे पापी आदमी के साथ मेरे पिता ने मेरी शादी की है। और मेरी बहन के पति हैं अमेरिका में, उन्होंने कितने सुख से रखा है मेरी बहन को ! अगर आप देख पाते तो आप भी हैरान रह जाते। जानते हैं, मेरी बहन के पास एक गाड़ी है और उसके पति के पास और एक गाड़ी। दोनों के पास ही अलग-अलग गाड़ियां हैं और अलग-अलग ड्राइवर। और मेरी किस्मत ऐसी फूटी हुई है कि घर में एक फ्रिज तक नहीं है। मेरी बहन जब कलकत्ता आने पर मुझसे कहती है कि तेरे पास गाड़ी भी नहीं और फ्रिज भी नहीं, तब मुझे कैसा लगता है, यह क्या बताऊं विमल बाबू ! आप एक लेखक हैं। आप ही मेरी पीड़ा समझ सकते हैं। आपके सिवाय और कोई भी मेरी पीड़ा को समझ नहीं सकता। इसके लिए मैं अपनी फूटी हुई किस्मत के सिवाय और किसे दोष दूं, आप ही कहिए ! सबों के घरों में टी० वी० है। लेकिन मेरी शादी एक ऐसे नीच आदमी के साथ हुई है कि घर में एक टी० वी० तक नहीं। मैं बोल-बोल कर हार गई। घर में टेलीफोन तक नहीं लग सका। किसी तरह एक गाड़ी खरीदवाई है। लेकिन वह भी सेकण्डहैण्ड। मेरी कितनी साध है कि मैं एक इम्पोर्टेड विलायती कार खरीदूंगी, वह भी नहीं हो सका। ऐसे पाजी के साथ शादी होने पर भला किसी औरत की साध पूरी हो सकती है ? आप ही बोलिए।

मैं वहां और रुका नहीं। वहां रुकना मुमकिन था ही नहीं। तब तक मिसेज सरकार फूट-फूट कर रोने लगी थी। बिना कुछ कहे-सुने मैं झट-पट सीढ़ियों से उतर कर भागा। घर पर पहुंचकर ही फिर मैंने दम लिया। मेरे कानों में तब भी मिसेज सरकार के शब्द गूंज रहे थे। मुझे ऐसा लगा मानो ये शब्द सिर्फ मिसेज सरकार के शब्द नहीं थे। वरन् यह मानो बीसवीं के उत्तरार्द्ध के सारे हिन्दुस्तान का क्रन्दन था। हमारे पास विलायती गाड़ी नहीं है, हमारे पास टेलीफोन नहीं है और हमारे पास टी० वी० नहीं है। हमारे पास वीडियो, कैसेट, रेकार्ड-चेंजर, रेडियोग्राम और टेपरेकार्डर—कुछ भी नहीं है। मानो बीसवीं शताब्दी के सभी लोगों का कोरस-क्रन्दन मेरा पीछा कर रहा था। मैंने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिये। फिर भी वह क्रन्दन मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा था। और मानो अजय बाबू तौलिए से अपना मुंह पोंछते हुए कह रहे थे—मैं गरीब देश का म''

हूं, यह जानते हुए भी देश में ये सब चीजें क्यों तैयार की जा रही हैं, बोलिए तो?

दूसरे दिन ही सुबह मेरे घर पर आकर खुद अजय बाबू इसी तरह की बातें कह गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था—आप मुझे माफ कर दीजिए विमल बाबू। एक बार बताइए, आपने मुझे माफ कर दिया तो! मैंने आपको अपने घर पर निमन्त्रित करके अपमानित किया... ! कहिए, आपने मुझे माफ कर दिया तो?

मैंने कहा—यह आप क्या कह रहे हैं अजय बाबू! सच तो यह है कि मुझे ही आप से माफी मांगनी चाहिए।

अजय बाबू के हाथ में शायद अधिक समय न था। उनकी आंखों से भर-भर आंसू बहने लगे। मैंने उन्हें रोने से रोका भी नहीं। रोइए अजय बाबू, रोइए। रोने से ही यदि जी थोड़ा-सा हल्का हो तो वही बेहतर है। उसी तरह रोते-रोते ही वे कहने लगे—हम लोग गरीब देश के आदमी हैं। यह जानते हुए भी ये सारी चीजें बनाने की इजाजत क्यों दी जाती है? टेलीफोन, फ्रिज, टी० वी०, कैसेट, रेकार्ड-चेंजर, रेडियोग्राम और टेपरेकार्डर—ये सब क्या इतनी ही जरूरी चीजें हैं कि इन्हें बनाना होगा ही? मैं मामूली-सी तनख्वाह पाने वाला एक कैशियर हूं। मैं ये सारी चीजें किस तरह खरीद पाऊंगा, क्या कोई इसके बारे में एक बार सोचेगा भी नहीं? इन सारी चीजों को बनाने के लिए लाइसेंस ही क्यों दिया जाता है, बताइए तो?

इन बातों का कोई जवाब मेरे पास मौजूद नहीं था। उन्हें दिलासा दे सकूं, ऐसे कोई शब्द भी मैं ढूंढ़ नहीं पाया। जिस तरह से वे रोते-रोते आये थे, उसी तरह रोते-रोते ही वे चले भी गये।

डॉ० कुशारी ने लगभग दो घंटों तक मेरी जांच की। उसके बाद उन्होंने कहा—आपको नींद नहीं आ सकती साहब। मैं आपके रोग का इलाज नहीं कर पाऊंगा। मेरी बात तो छोड़ ही दीजिए, साक्षात् शिव भी आपका रोग ठीक नहीं कर सकते।

—क्यों?

डॉ० कुशारी ने कहा—आप लोगों के बीस नंबर केदार बसु लेन वाले सज्जन से भी मैंने यही कहा था। मैंने कहा था—साक्षात् शिव भी आपकी बीमारी का इलाज नहीं कर सकते।

मैंने पूछा—तो क्या बीस नंबर मकान वाले सज्जन को जो रोग था, मुझे भी वही रोग है?

डॉ० कुशारी ने कहा—आपके रोग का लक्षण तो गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर बहुत पहले ही लिख चुके हैं। उन्होंने लिखा है—

"महत् कर्मेर भार
विधाता याहारे देन
तारे देन वेदना अपार
तार नित्य जागरण ।"

यानी विधाता जिसे बड़े कामों का भार सौंपते हैं, वे उसे अपार दुःख भी देते हैं। नित्य जागरण ही उसकी नियति है'''।

मैंने पूछा—और बीस नम्बर के मकान वाले सज्जन को क्या बीमारी थी ?

डॉ० कुशारी ने कहा—उनकी पत्नी को एक खतरनाक बीमारी हो गयी थी। उस बीमारी का नाम है मैटेरियल एम्बिशन—भौतिक महत्वाकांक्षा'''। हम लोगों की किताबों में इस बीमारी की दवा जरूर है। लेकिन वे तो दवा खाना ही नहीं चाहती थी। जो आदमी दवा नहीं खायेगा, उसकी बीमारी दूर कैसे होगी ?

डॉ० कुशारी की बात सच ही थी। अजय बाबू से मैंने कई बार कहा था कि वे अपनी पत्नी का इलाज डाक्टर कुशारी से करायें। अजय बाबू अपनी पत्नी को वहां ले जाना चाहते थे, पर उनकी पत्नी राजी ही नहीं हुई। एक बार उन्होंने जोर-जबर्दस्ती डॉ० कुशारी को अपने घर पर ही बुलवाया था। लेकिन उनकी पत्नी डॉ० कुशारी की दवा खाने के लिए तैयार नहीं हुई। उन्होंने कहा था—क्या पागल हूं कि पागलों के डॉक्टर की दवा खाऊंगी ?

मुझे याद है कि उसके बाद ही वह दुर्घटना घटी।

उस रात भी अपना लेखन समाप्त कर मैं सोने चला गया। न जाने सोचते-सोचते मुझे कब नींद आ गई। सुबह-सुबह लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनकर मेरी नींद टूटी। मुझे ऐसा लगा कि जरूर गली में भीड़ इकट्ठी हो गई है। मैंने घड़ी की तरफ देखा—आठ बज रहे थे। मैं घड़ी देखते ही हैरान रह गया। तो क्या रामदास ने तुलसीदास के दोहे नहीं गाये ? या फिर रामदास आज आया ही नहीं या फिर रामदास बीमार हो गया है ? आखिर बात क्या है ? नहा-धोकर जब मैं बरामदे में आया, तब मैंने देखा कि हमारे मकान के पूरब की तरफ लोगों की खासी भीड़ जमा थी। किसी एक चीज को केन्द्र कर अनेकों लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। यह भीड़ क्यों इकट्ठी हो गई थी, यह मैं अपने दोमंजिले मकान के बरामदे से समझ नहीं पाया। असल बात का पता लगाने के लिए जब मैं नीचे उतरकर गली में आया, तब मैंने देखा कि रामदास हर रोज की तरह अपनी गाड़ी के पास एक झाड़ू हाथ में लिये गुमसुम खड़ा था और उसकी नजर भी सबों की भांति किसी एक खास चीज पर केन्द्रित थी। वह चीज थी एक मृत देह—एक लाश। वह लाश एक पुरुष की थी। लाश को देखते ही मैंने पहचान लिया। यह लाश और किसी की नहीं थी, स्वयं अजय सरकार बाबू की थी।

घूस

यह कहानी है भी और कहानी नहीं भी। यह मेरे पुलिस-जीवन के एक संस्मरण का रोचक टुकड़ा है। मेरे बहुत-से पाठकों को यह मालूम नहीं है कि किसी जमाने में पुलिस में नौकरी भी कर चुका हूं।

जी हां, एक जमाने में मैं पुलिस का गुप्तचर था। एक उम्दा केस पकड़ने के लिए मुझे भारत के राष्ट्रपति की तरफ से एक बार 'सम्मान-पत्र' भी मिला था।

कहानियां तो मैंने खूब लिखी हैं, मोटे-मोटे उपन्यास भी बहुत से लिख डाले है। यह बात सभी जानते हैं।

किन्तु इस बार कहानी नहीं, एक सच्चा वाक्या सुना रहा हूं। लेखक के रूप में गिने जाने से पहले उसी पुलिस की नौकरी के समय की एक घटना यहां बयान करता हूं।

कुछेक वर्षों के लिए मेरी आंख खराब हो गई थी। डॉक्टर के निर्देश के अनुसार लिखने-पढ़ने का काम बन्द हो गया। अब जिन्दगी-भर शाम के बाद मुझे लिखना-पढ़ना बन्द करना होगा···!

तो फिर क्या किया जाये? ऐसी नौकरी भला कहां है, जिसमें लिखने-पढ़ने की जरूरत न पड़े!

वैसे आड़े वक्त में मैंने एक ऐसे सज्जन की मदद पाई, जिनका उपकार मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूगा। वे थे परम श्रद्धेय रायबहादुर खगेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के रूप में वे पूरे बंगाल में उस समय सुविख्यात थे। वे पुलिस के उस विभाग से सम्बद्ध थे, जिसे आजकल सी० बी० आई० कहा जाता है। उन्होंने मेहरबानी करके मुझे एक नौकरी दे दी। उस नौकरी में लिखाई-पढ़ाई की कोई मुसीबत नहीं थी। काम के नाम पर अग़र कुछ काम था, तो वह था सिर्फ घूमना-फिरना। कहां कौन चोरी कर रहा है अथवा कहां कौन घूस ले रहा है, उसकी खोज़-खबर लेकर यथास्थान रिपोर्ट कर देना भर मेरा काम था। बस इतना ही···! उसके बाद जिन्हें जो कुछ करना हो, वे समझें···!

प्राय: छह महीने तक कलकत्ते में रहने के बाद मेरी बदली बिलासपुर में हो गई। बिलासपुर, यानी मध्य प्रदेश का छत्तीसगढ़-अंचल। पहले सिर्फ कलकत्ता महानगर में ही मेरा कार्य-क्षेत्र सीमाबद्ध था, किन्तु उसके बाद से सारा मध्य प्रदेश

ही मेरा कार्य-क्षेत्र बन गया।

एक दिन वहां एक अजीब घटना घटी।

एक आदमी ने मेरे पास आकर मुझे खबर दी कि सरसों के तेल का एक सप्लायर सरसों तेल में तीसी तेल मिलाकर सरकार को मिलावटी तेल सप्लाई कर रहा है।

मैंने उस आदमी से पूछा—"आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मिलावटी सरसों तेल सप्लाई किया गया है?"

उस आदमी ने कहा—हां सर, मुझे सब कुछ मालूम है। खुद हम लोगों की भी एक तेल-मिल है। हम लोगों ने भी टेण्डर दिया था। लेकिन उस कम्पनी ने घूस देकर यह आर्डर हासिल कर लिया।

अब मेरी समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई कि उस आदमी की नाराजगी का असल कारण क्या था!

मैंने पूछा—"कितने रुपयों का सरसों तेल उन लोगों ने सप्लाई किया है?"

उस आदमी ने बताया—"कुल तीस हजार रुपयों का। उस तेल में पचास प्रतिशत सरसों तेल है और पचास प्रतिशत तीसी तेल।"

मैंने पूछा—"क्या आप ये बातें लिखकर दे सकते हैं?"

उस आदमी ने कहा—"नहीं सर, लिखकर तो मैं नहीं दे सकता। वैसा करने पर मेरा नाम सामने आ जायेगा। आप अगर खुद जाकर देखें तो पता चल जायेगा कि वह तेल मिलावटी है या नहीं।"

बिलासपुर में रेल के कर्मचारियों के लिए जितनी भी खाद्य सामग्री खरीदी जाती थी, उसका गोदाम था अकलतरा में। अकलतरा बिलासपुर के ठीक बाद का स्टेशन है। वहीं सारा माल जमा रहता था। उस आदमी के चले जाने के बाद दूसरे दिन ही मैं बिलासपुर से जबलपुर चला आया। बिलासपुर से जबलपुर की दूरी है लगभग अढाई सौ मील की। वहां से डी० आई० जी० की अनुमति लेकर मैं अकलतरा चला आया। वहां जाकर मैंने देखा कि गोदाम में सरसों तेल से भरे हुए ढेर के ढेर ड्राम पड़े थे। मैंने एक शीशी में सरसों तेल का सेम्पल लिया और फिर सभी ड्रामों को सील करके मैं लौट आया।

उसके बाद कलकत्ते के 'अलीपुर टेस्ट हाउस' में जाकर मैंने वहां के अफसरों से सारी बातें बताईं। उस समय सारे भारत वर्ष में सभी चीजों की क्वालिटी की जांच की जाती थी। शायद अब भी वही व्यवस्था हो।

दूसरे दिन तेल की जांच पूरी होने पर मुझे बताया गया की तेल मिलावटी था। वह तेल मनुष्य के उपयोग के लायक था ही नहीं।

वह रिपोर्ट मैंने सीधे जबलपुर के दफ्तर में भेज दी। बस मेरा कर्त्तव्य पूरा हो चुका था।

इस काम के लिए जाने-आने में मेरा काफी समय वेकार चला गया। लेकिन एक बड़े जालसाज को पकड़ पाने की खुशी भी कम न थी मन में। मैं सोचने लगा कि मेरे ऊपर वाले अफसर मेरे काम से बहुत खुश होंगे। सभी लोग मुझे मेरी ईमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता के लिए वाह-वाही देंगे।

इसके वाद कई महीने वीत गये। इस सरसों तेल के केस के वारे में मेरी ऑफिस से मेरे पास कोई भी निर्देश नहीं आया। मैंने भी इस मामले में अपनी ऑफिस को और कुछ भी खबर नहीं भेजी। मैंने सोचा कि शायद मामला दब गया हो!

उसके वाद वर्षा आई, शरद् आया और आया हेमन्त भी। इस सरसों तेल के केस के सम्बन्ध में किसी भी पक्ष को तरफ से कोई वात आगे नहीं वढ़ी। सभी चुप्पी साधे रहे। मैं भी दूसरे केस में व्यस्त हो गया। महीने में छब्वीस-सत्ताईस दिनों तक मैं रेल में ही घूमता रहता। कोई भी कहीं मुझे हुक्म देने वाला न था। मैं विलासपुर स्टेशन से जव जिधर इच्छा होती, घूमने निकल जाता।...और साथ-ही-साथ मैं अपने आंख-कान खुले रखता। कहीं भी चोरी, घूस अथवा भ्रष्टाचार की खवर मिलते ही अपनी डायरी में लिखकर मैं अपने दफ्तर में रिपोर्ट भेज देता। प्रत्येक सप्ताह मेरी डायरी जवलपुर जाती। कव किस तारीख को क्या किया है, कव गया हूं और कव लौटा हूं, इन सभी वातों का सविस्तार वर्णन रहता उस डायरी में। जहां भी घूस लेने कि खवर मिलती, मैं वहीं चला जाता। ऑफिस से मेरे अफसर लिख भेजते कि मैं सभी अंचलों में घूमता रहूं। जहां-जहां कांग्रेस के कार्यालय थे, वहां जाकर कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ मुलाकात करने का निर्देश भी मिलता। उस समय वह कांग्रेस कुछ और ही थी, आज की जैसी कांग्रेस नहीं थी।

इसी वीच एक केस के लिए भारत के राष्ट्रपति की ओर से मुझे एक सम्मान-सूचक प्रमाण-पत्र मिला। उससे मेरा उत्साह और भी वढ़ गया। मैं देश से भ्रष्टाचार मिटाने के लिए और भी ज्यादा परिश्रम करने लगा।

ठीक उन्हीं दिनों मैंने लक्ष्य किया कि एक आदमी प्रतिदिन मेरे घर के सामने रहस्यमय ढंग से चहलकदमी करता। लेकिन वह मुझसे कहता कुछ भी नहीं। मैं शहर में जहां भी जाता, वह मेरे पीछे हो लेता। उसके वाद मैं और उसे फिर देख नहीं पाता। न जाने वह कहां भीड़ के भीतर गुम हो जाता।

एक दिन मैं अपने-आप को रोक नहीं पाया। ठीक उसके सामने जाकर मैंने पूछा—"आप कौन हैं?"

उसने हंसते हुए मुझे सलाम किया और कहा—"हुजूर, हमारा सरसों तेल आपने रोक रखा है। उस मामले का क्या हुआ?"

मैंने कहा—"उस मामले में मुझे अपने ऊपर वालों का कोई भी आदेश

नहीं मिला है।"

उस आदमी ने कहा—"लेकिन हमारे ड्रामों में मोरचा लगता जा रहा है। ड्रामों में मोरचा लग जाने पर तो फिर सारा तेल खराब हो जायेगा।"

मैंने कहा—"आपका तेल तो मिलावटी तेल है। खराब तेल भला और कितना खराब होगा?"

उस आदमी ने कहा—"वह तेल भी मैं बाजार में बेच सकूंगा। उस तेल को बेच कर भी मेरी जेब में कुछ रुपये आ सकेंगे।"

मैंने कहा—"आपके रुपये बर्बाद हो जाना ही ठीक है। आपके मिलावटी तेल को अगर मैं नहीं पकड़ता तो न जाने कितने लोग उस तेल का व्यवहार करके मर जाते…"

वह आदमी बोला—"नहीं सर…, यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने कभी भी मिलावटी तेल सप्लाई नहीं किया।"

मैंने कहा—"तो फिर क्या आप यह कहना चाहते हैं कि कलकत्ते के 'टेस्ट-हाउस' द्वारा दी गई रिपोर्ट झूठी है? उन लोगों ने कहा है कि यह तेल अगर गाय और बकरी, बल्कि कुत्ते भी खायें तो वे मर जायेंगे। यह तेल जमीन में गड्ढा खोदकर दफन कर दिया जायेगा अथवा इसमें आग लगाकर इसे नष्ट कर दिया जायेगा।"

वह आदमी मानो इस बार कुछ डर गया।

वह बोला—"तो फिर क्या होगा सर? क्या मेरे इतने रुपये बर्बाद हो जायेंगे?"

मैं उसके साथ कुछ भी बात न कर अपने काम में चला गया। उसके साथ बातें करने का मतलब ही था अपना समय बर्बाद करना।

लेकिन दो दिनों के बाद ही वह आदमी मेरे घर पर आ धमका।

मैंने पूछा—"क्या हुआ? आप फिर क्यों आये हैं? मैं तो आपको पहले ही बता चुका हूं कि इस मामले में मुझे अपनी ऑफिस में कोई भी निर्देश नहीं मिला है।"

उस आदमी ने कहा—"आपसे एक बात कहूं, सर? अगर आप इजाजत दें, तो…!"

मैंने कहा—"ठीक है। कहिए, क्या बात है?"

उस आदमी ने दबी हुई आवाज में कहा—"सर, आपके घर में तो कोई भी फर्नीचर नहीं है। आप नये फर्नीचर क्यों नहीं बनवा लेते?"

मैंने पूछा—"यह जानकर आपको क्या फायदा होगा? मैं गरीब आदमी हूं। गरीब आदमी की तरह रहना ही मेरे लिए उचित है।"

उस आदमी ने कहा—"रुपये आपको नहीं देने पड़ेंगे सर! आप सिर्फ फर्नीचर वालों की दुकान में जाकर आर्डर दे आइए। यही काफी है। उसके बाद

जो कुछ करना होगा, हम करेंगे।"

इस वार मैं उसकी वातें सुनकर क्रोधित हो उठा।

मैंने कहा—"आप मेरे घर से निकल जाइए। इसी वक्त निकल जाइए।"

"सर, आप नाराज क्यों होते हैं? इस तरह हम लोग हमेशा रेलवे के अफसरों को देते रहते हैं।"

मैंने कहा—"किन्हें देते हैं? मेरे सामने उनके नाम वताइए।"

वह आदमी वड़ा शैतान था। उन लोगों का नाम उसने किसी भी तरह नहीं वताया।

वह आदमी कहने लगा—"इस तरह अगर आप डर रहे हों तो फिर सोना लीजिए न। आपको हम सोने के विस्कुट देंगे। कोई भी समझ नहीं पायेगा।"

हठात् मेरे दिमाग में विजली कौंध गई। मैंने सोचा कि अगर मैं इस आदमी को पकड़वा दूं, तो कैसा रहे! घूस लेना जिस तरह अपराध है, घूस देना भी तो उसी तरह एक अपराध है।

मैंने उस आदमी को कुछ भी समझने नहीं दिया और कहा—"ठीक है, आप एक काम कीजिए। आप पन्द्रह दिनों के वाद मेरे साथ मुलाकात कीजिए।"

वह आदमी खिल उठा। उसने सोचा कि मैं उसके प्रस्ताव पर राजी हो गया हूं और लोभ को संभाल नहीं पा रहा हूं।

उसी दिन डायरी में लिखा कि मैंने तीस हजार रुपये का जो मिलावटी सरसों का तेल पकड़ा है, उसका मालिक मुझे घूस में सोने के विस्कुट देना चाहता है। मैं इस आदमी को अपना जाल विछाकर पकड़ लूंगा।

उस दिन डायरी डाक के द्वारा भेजने के वजाय मैं खुद अपने साथ डायरी लेकर जवलपुर रवाना हुआ। भोर छह वजे हौवाग जवलपुर स्टेशन पर ट्रेन पहुंची। मैंने नेपियर टाउन के डाक वंगले में अपना सामान रखा। उसके वाद मैं यथासमय अपनी ऑफिस में पहुंचा। लेकिन एस० पी० के पास डायरी भेजने के पहले मैंने एक वार किसी आदमी से परामर्श कर लेने की वात तय की।

ऑफिस में जितने भी अफसर थे, सभी दूसरे प्रदेशों के रहने वाले थे। महाराष्ट्रियन, गुजराती और सिन्धी से शुरू कर असमिया, उड़िया, विहारी और मद्रासी—सभी थे। किसी भी प्रदेश के आदमी वाकी न थे। एकमात्र एक अफसर थे वंगाली। श्री ए० के० घोष नाम के एक वंगाली सज्जन। पूरा नाम था अजित-कुमार घोष।

मैंने अजित वावू को ही सारी वातें खोलकर वताईं। वे मन लगाकर मेरी वातें सुनने लगे।

मैंने कहा—"यह एक नये ढंग का केस होगा अजित वावू। वह आदमी पुलिस को घूस देना चाहता है और पुलिस ही उसे ट्रैप करेगी। संभवतः ऐसा हमारे

विभाग में पहले कभी नहीं हुआ। मैं इस केस के रूप में एक आदर्श दृष्टान्त रखना चाहता हूं।"

अजित बाबू ने कहा—"विमल बाबू, आपने जो कुछ भी कहा, मैंने उस पर विश्वास कर लिया है। लेकिन आप यह काम हर्गिज न करें। इस में आपका ही नुकसान होगा।"

मैं उनकी बातें सुनकर हैरत में पड़ गया।

मैंने पूछा—"क्यों ?"

उन्होंने कहा—"आप इस डायरी को फाड़कर फेंक दीजिए और दूसरी डायरी जमा कीजिए। उस तारीख को आप दिखाइए कि आप किसी दूसरी जगह गये थे।"

मैं और भी ताज्जुब में पड़ गया।

मैंने पूछा—"क्या मैं झूठी डायरी लिखूंगा ?"

अजित बाबू ने कहा—"हां, अगर बचना चाहते हैं तो बेशक झूठी डायरी भी लिखनी होगी। पहले जिन्दगी है या पहले सिद्धान्त ? जिन्दगी बची रहेगी तो उसके बाद ही तो है सिद्धान्त ! यदि आप सच्ची बात लिखते हैं तो साहब समझेंगे कि आपकी घूस लेने की आदत है। बाजार के व्यवसायी जानते हैं कि आप घूस लेते हैं। अन्यथा आपको घूस देने की हिम्मत कैसे होती उस आदमी को ? साहब यही मतलब निकालेंगे।"

उसके बाद कुछ रुककर अजित बाबू फिर बोले—"मैं खुद पैंतीस वर्षों से पुलिस की लाइन में हूं। मैं पुलिस को जितनी अच्छी तरह पहचान पाया हूं, उतनी अच्छी तरह आप अभी नहीं पहचान पाये हैं। आप ठहरे नये आदमी। आप भी बंगाली हैं और मैं भी हूं बंगाली। आपने मुझसे मेरी राय मांगी है, इसीलिए आपके भले के लिए ही मैं कह रहा हूं। आप डायरी बदल कर उसमें झूठी बातें घुसा डालिए। लिख दीजिए कि आप उस दिन रामगढ़ गये थे।"

अभी तक मेरे आश्चर्य की खुमारी कटी नहीं थी।

अजित बाबू फिर कहने लगे—"आपसे और एक बात कह रहा हूं। आप चौंक मत उठिएगा। हम लोग पुलिस के आदमी हैं। हम किसी पर भी विश्वास नहीं करते। हम अपनी मां पर भी विश्वास नहीं करते और न ही अपनी पत्नी पर। यही क्यों, हम लोग अपने आप पर भी विश्वास नहीं करते। हम लोग साल में छह-सात महीने घर के बाहर बिताते हैं। यही है हम लोगों की इस नौकरी की नियति।

उसके बाद कुछ रुककर वे उसी सुर में कहने लगे—"देखिए, अगर आप मेरी बात मानें तो आप इतना ईमानदार बनने की कोशिश न करें। आप घूस लिया कीजिए, समझे ?"

मैं और भी चौंक उठा।

मैंने पूछा—"मैं घूस लूंगा ? क्या कह रहे हैं आप ?"

अजित बाबू ने कहा—"हां, जरूर लीजिए। घूस लेने का एक आसान तरीका आपको मैं बता देता हूं। किसी के बाप की भी हिम्मत नहीं कि वह आपको पकड़ सके। यदि कोई आपको घूस देना चाहे, तो आप खुद अपने हाथों में रुपये मत लीजिए। उससे कह दीजिए कि वह आपके ताला-बन्द लेटर-बॉक्स में रुपये फेंक जाये। उसके बाद जब रात होगी, तब आप लेटर-बॉक्स खोल कर रुपसे निकाल लीजिए। बस, मामला सलट जायेगा। फिर आपको कौन पकड़ेगा ? आपके लेटर-बॉक्स में अगर कोई रुपये फेंक जाये तो इसमें आप कर भी क्या सकते हैं ? इसके लिए तो कोई आपको जिम्मेवार नहीं मान सकता !"

मैं अजित बाबू की बातें सुन रहा था और सोच रहा था कि मैं कैसी नौकरी में आ फंसा हूं।

अजित बाबू फिर कहने लगे—"और फिर तीस हजार रुपयों का तेल पकड़ने के लिए आप गर्व कर रहे हैं, किन्तु क्या आप जानते हैं कि वह तेल कितना भी मिलावटी क्यों न हो, उसे आपको उस सप्लायर को वापस देना ही पड़ेगा !"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

अजित बाबू बोले—"इसका इन्तजाम पहले से ही किया हुआ है। जिस अफसर ने उस व्यापारी को तेल सप्लाई करने का कंट्रैक्ट दिया है, उस कंट्रैक्ट में ही यह शर्त लिखी हुई है कि अगर तेल मिलावटी प्रमाणित हो तो तेल वापस लेकर बदले में नया शुद्ध तेल देना होगा।"

मैंने पूछा—"तो फिर कंट्रैक्ट में ऐसी चूक कैसे रह गई ?"

अजित बाबू बोले—"वही, मैंने कहा न, घूस खाकर। आप घूस लेने के विरोधी हैं। लेकिन घूस कौन नहीं लेता, क्या आप बता सकेंगे ? एक भी ऐसा आदमी आप दिखाइए तो सही जो इस युग में घूस नहीं लेता। अजी साहब, आजकल भगवान तक घूस लेने लगा है। क्या आप कभी तिरुपति बाला जी के मन्दिर में गये हैं ? आन्ध्र प्रदेश में अवस्थित इस मन्दिर में क्या आपने बाला जी का दर्शन किया है ? वहां जाकर आप देखेंगे कि वहां भगवान को इतनी घूस दी जाती है कि बीस आदमी भी उन रुपयों को गिन नहीं पाते। आप वहां जाकर देखेंगे कि लाख-लाख रुपयों की रेजगारी चलनी से चाली जा रही है। यह दृश्य अगर मैंने खुद अपनी आंखों से नहीं देखा होता, तो मैं भी विश्वास नहीं कर पाता।"

यह प्रायः आज से तीस साल पहले की घटना है। उसके बाद तो गंगा में न जाने कितना पानी बह चुका है। घूस की लेन-देन और भी बढ़ गई है। घूसखोरों को पकड़ने के लिए और भी बहुत-से अफसर बहाल किये गये हैं। फिर भी घूस की लेन-देन बन्द नहीं हुई। वरन् और बढ़ी ही है। लेकिन इसे मैं अपना सौभाग्य कहूं या दुर्भाग्य कि मैं नौकरी छोड़ कर साहित्य के क्षेत्र में चला आया हूं। मैंने सोचा

था कि साहित्य के माध्यम से ही मैं घूसखोरी के खिलाफ आवाज बुलन्द करूंगा। लेकिन साहित्य के क्षेत्र मे भी इतनी घूस चलती है, काश मुझे पहले इसका पता होता ?

इसके बारे मे एक उदाहरण देता हू। मैंने खुद एक बार अपनी एक साहित्यिक कृति के लिए एक सरकारी पुरस्कार पाया था। खबर पाकर मेरे एक पजाबी साहित्यकार-मित्र श्री हरनाम दास सहराई मुझे बधाई देने के लिए मेरे घर पर पधारे। उन्होंने पुरस्कार पाने के लिए मुझे बधाई दी और उसके बाद उन्होंने चुपचाप दबी जुबान में मुझसे पूछा—"इस पुरस्कार के लिए क्या खर्च पड़ा है भाई ? कितनी घूस देनी पड़ी।"

कर्फ्यू

एक अरसे के बाद मिस्टर वॉमफिल्ड इण्डिया आये हैं। एक अरसा यानी लगभग बीस साल···बीस साल में इण्डिया कितना-कुछ बदल गया है। कितना-कुछ उलट-पलट हो गया है। सर जॉन एण्डर्सन जव वंगाल के गवर्नर थे, उन दिनों आई० सी० एस० अफसर थे मिस्टर वॉमफिल्ड। तत्कालीन वंगाल सरकार के होम सेक्रेटरी।

कलकत्ता के इसी सेंट जॉन चर्च के वगल के कब्रिस्तान में ही जूली को दफना कर मिस्टर वॉमफिल्ड चले गये थे। जूली थी मिस्टर वॉमफिल्ड की वीवी। यानी मिसेज वॉमफिल्ड···।

आखिरी दिनों में जूली के मन में भारी डर समा गया था। जव मिस्टर वॉमफिल्ड मेदिनीपुर के मजिस्ट्रेट थे, तव जूली को रात में नींद नहीं आती। एक-एक कर वहुतेरे मजिस्ट्रेटों का उसी मेदिनीपुर में खून हो चुका था। इसी लिए जूली कहा करती—"चलो डियर, हमलोग अपने मुल्क लौट चलें। अव हम इण्डिया में नहीं रहेंगे।"

चटगाँव में हथियारों की लूट हुई। पूर्वी वंगाल में एक के वाद एक कई अफसर टेररस्टों की गोलियों के शिकार वनने लगे। उन दिनों कोई भी अफसर वंगाल में आना नहीं चाहता था। सचमुच वह जमाना वहुत ही खराव था···!

उसी जमाने में मिस्टर वॉमफिल्ड आखिर तक सशरीर वचे रहे और नौकरी करते रहे। और फिर सिर्फ नौकरी ही नहीं···। नौकरी के साथ-साथ सम्मान भी उनकी किस्मत में लिखा था। 'किंग' ने एस० वी० ई० और वी० ई० तथा और भी कितनी ही उपाधियाँ उन्हें दी थीं।

लेकिन सिर्फ वही एक नुकसान हो गया था। जूली हठात् एक दिन कलकत्ते में ही मर गई। जूली के मरने की घटना वड़ी ही मर्मान्तिक थी। ओ डियर,डियर···! इतना वड़ा नुकसान भी एक दिन मिस्टर वॉमफिल्ड को सहन करना पड़ा था। फिर सेंट जॉन चर्च के वगल के कब्रिस्तान में जूली को दफना कर साहव नौकरी छोड़ कर चले गये। उसके वाद और फिर कभी उन्होंने इण्डिया की तरफ रुख नहीं किया।

इमी बीच ब्रिटिश गवर्नमेंट इण्डिया को छोड़ कर चली गई। उन बातों को भी आज उन्नीस साल हो गये। नाइन्टीन इयर्स'''। मनुष्य के जीवन में उन्नीस साल कुछ कम होते हैं क्या ?

अचानक उन्हें बदन में एक झटका-सा लगा।

जेट प्लेन इण्डिया की माटी पर लैण्ड कर चुका था। मिस्टर बॉमफिल्ड ने आहिस्ता-आहिस्ता कमर का बोल्ट खोल डाला। तब तक जेट प्लेन सरकते-सरकते एक जगह रुक गया था। मिस्टर बॉमफिल्ड ने शीशे की खिड़की से बाहर की तरफ देखा। लेकिन वे कुछ भी पहचान नहीं पाये।

कुछ दूरी पर झुण्ड बनाये कुछ लोग खड़े थे। ताज्जुब की बात है कि उन्हें रिसीव करने के लिए आज कोई नहीं आया। कोई भी नहीं '''। नो बडी'''। और फिर एक दिन ऐसा भी था, जब वे आसाम से या दिल्ली से आते तो उनकी ऑफिस के बाबू लोग उनके लिए सियालदह अथवा हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़े रहते। अगर ट्रेन लेट होती तो वे घंटों इन्तजार भी करते। उसके बाद जब मिस्टर बॉमफिल्ड ट्रेन से उतरते, तब उनके सामने आने के लिए बाबू लोगों में होड़ मच जाती। उन्हें विश करने के लिए, उनकी नजर में पड़ने के लिए''') एक दिन यही मिस्टर बॉमफिल्ड बहुतेरे इण्डियन्स के भाग्यविधाता थे। ऐसा भी एक जमाना था! पर वे सब बातें अब पुरानी पड़ गयी हैं। शायद इससे इण्डिया का कोई नुकसान नहीं हुआ है। इण्डिया आजाद हो गया है, किन्तु मिस्टर बॉमफिल्ड को भारी नुकसान उठाना पड़ा है। पेंशन की रकम पर ही निर्भर होकर उन्हें अपनी एकरस और उबाऊ जिन्दगी जीनी पड़ रही है। जूली नहीं रही'''। जूली इसी कलकत्ते के सेण्ट जॉन चर्च के बगल के कब्रिस्तान में अभी भी सो रही है। पुअर जूली'''।

वही कलकत्ता ! दैट ओल्ड सिटी। इस रास्ते से होकर बीस साल पहले मिस्टर बॉमफिल्ड कई बार गुजर चुके हैं। इस दमदम सेंट्रल जेल में भी उन्हें कई बार आना पड़ा है। कितने ही कांग्रेस-कर्मियों को इसी दमदम सेंट्रल जेल के भीतर ठूंस दिया गया था। और क्या सिर्फ दमदम सेंट्रल जेल में ही ? मिस्टर बॉमफिल्ड को अलीपुर प्रेसिडेंन्सी जेल में भी जाना होता था। वहीं सुभाष चन्द्र बोस को गिरफ्तार करके रखा गया था।

मिस्टर बॉमफिल्ड को सभी कुछ याद आने लगा। सर जॉन एण्डर्सन बड़े ही गुस्सैल गवर्नर थे। जाति के आस्ट्रेलियन अंग्रेज, क्रिकेट के बढ़िया खिलाड़ी। इण्डियन लीडरों ने उस समय जेल में भूख हड़ताल कर दी थी। वही सुभाष चन्द्र बोस, दि स्प्रिंगिंग टाइगर, उछलता हुआ बाघ'' । वे किसी भी तरह खाना नहीं खायेंगे।

मिस्टर बॉमफिल्ड ने जाकर सुभाष चन्द्र बोस से अनुरोध किया। लेकिन

मिस्टर बोस ने उनकी एक न सुनी।

पहला दिन बीता, दूसरा दिन बीता और तीसरा दिन भी। मिस्टर बॉमफिल्ड बहुत ही अनईजी फील करने लगे। उनकी रात की नींद हराम हो गई। एक आदमी भूख हड़ताल पर बैठा रहेगा और वे खर्राटे भरेंगे, क्या यह मुमकिन है? इम्पॉसिबल···। अचानक···।

अचानक होटल के सामने आकर गाड़ी रुक गई। होटल के बेयरे दौड़े आये। उसके बाद मिस्टर बॉमफिल्ड उसी पुराने होटल के भीतर गये। वे इस होटल में पहले भी आ चुके हैं। बहुत-सी पार्टियां हुई हैं यहां, बहुत-से लंच और डिनर···। मिस्टर बॉमफिल्ड को कितनी ही बार यहां आना पड़ा है।

लेकिन वह जमाना बीत चुका है। इस बार किसी ने भी उन्हें विश नहीं किया। आगे बढ़कर किसी ने उन्हें रिसीव भी नहीं किया। शायद किसी ने उन्हें पहचाना ही नहीं।

उन्होंने अपना नाम बताया। रजिस्टर में उनका नाम दर्ज किया गया। टू हड्रेड टेन। दो सौ दस···। दो सौ दस नम्बर के कमरे में उनके ठहरने का इन्तजाम किया गया। ट्रैवेल एजेन्सी को पहले ही बताया जा चुका था। सारी व्यवस्था पहले से ही की गई थी। मिस्टर बॉमफिल्ड को भी असुविधा नहीं हुई।

अपने कमरे में आकर मिस्टर बॉमफिल्ड ने भली भाँति चारों तरफ देखा। कमरा खूब ही सजा-संवरा था और था एयरकंजीशण्ड, वातानुकूलित···।

उसके बाद खिड़की खोल कर उन्होंने बाहर की तरफ़ देखा। बाहर धूप खिल उठी थी। लवली सन···। उन्होंने गवर्नर्स हाउस को देखने की कोशिश की। कहीं भी कुछ नहीं बदला है। जैसा था, वैसा ही है। सिर्फ जूली नहीं है। जूली इज नो मोर···।

मिस्टर बॉमफिल्ड टेलिफोन-स्टैण्ड के पास गये। उनकी इच्छा हुई कि वे एक बार राइटर्स बिल्डिंग में फोन करें—होम सेक्रेटरी मिस्टर बनर्जी को।

उधर बालीगंज की तरफ से एक गाड़ी उत्तर की तरफ बढ़ी जा रही थी। ऑफिस के दिन वह गाड़ी नियम-पूर्वक ठीक सवेरे नौ बजे हाजिर हो जाती। इस बड़े होटल के सामने से गुजरती हुई गाड़ी कुछ आगे बढ़ी और फिर बायीं तरफ मुड़ गई।

मिस्टर बनर्जी गाड़ी की पिछली सीट पर चुपचाप बैठे हुए थे और ड्राइवर रहीम सावधानी के साथ गाड़ी को सभी गाड़ियों से आगे बढ़ाता हुआ ले जा रहा था। बहुत ही पुराना ड्राइवर है रहीम। चालीस साल पुराना लाइसेंस है उसका मिस्टर बनर्जी की गाड़ी चलाने के पहले और भी अनेकों मालिकों की बहुत-सी

गोपनीय बातों का गवाह रहा है रहीम उन बातों के बारे में और किसी के लिए नामुमकिन था।

रहीम आज का आदमी नहीं है। एक के बाद एक लाट साहब आये और गये। एक के बाद एक सेक्रेटरी आये और विदा भी हो गये। वे सभी विलायती साहब थे। दरियादिल साहब···! आजकल के देशी साहबों की भांति नहीं। लेकिन रहीम अब तक यहीं है।

पीछे से बनर्जी साहब हठात् पुकारते—"रहीम···!"

"जी हुजूर।"

"इस होटल के सामने एक बार गाड़ी रोको तो।"

बाहर से बहुत-से साहब आकर इस होटल में ठहरते। लेकिन जो विशिष्ट राजकीय अतिथि होते, वे रुकते राजभवन में ही। जिसका नाम पहले था गवर्नर्स-हाउस। लेकिन सभी वहां नहीं ठहरते। जो इस होटल में ठहरते थे, बनर्जी साहब बीच-बीच में उनसे मुलाकात करने जाया करते। बहुत बार शाम को वहां पार्टी होती। उस समय रहीम सामने के फुटपाथ पर गाड़ी खड़ी कर बैठा रहता। कितनी ही बार शाम को पार्टी शुरू होती और काफी रात गये खत्म होती। कभी-कभी रात के साढ़े दस-ग्यारह बज जाते। कभी-कभी बारह भी···।

तब तक रहीम गाड़ी के भीतर बैठा-बैठा दुनियादारी की बातें सोचा करता। रातों-रात दुनिया किस तरह बदली जा रही है, रहीम उसके बारे में सोचता। विलायती साहबों के जाने के बाद एक दिन फिर देशी साहब आये। इसके बाद कौन आयेंगे, रहीम इसी मसले पर माथापच्ची करता। रहीम के सोचने का कोई ओर-छोर न होता। इसी बीच सोचते-सोचते कब उसकी पलकें बोझिल हो उठतीं और कब वह सो जाता, इसका उसे पता ही नहीं चलता।

हठात् बनर्जी साहब की पुकार सुनकर रहीम हड़बड़ाकर उठ बैठता और कहता—"हुजूर।"

उस समय बनर्जी साहब के कदम डगमगा रहे होते। बनर्जी साहब के मुंह से उस समय शराब की एक तीखी-सी बू निकल रही होती। उस समय वे नरम पड़ जाते, बिलकुल भीगी बिल्ली···।

तब वे मनुहार-भरी आवाज में पुकारते—"रहीम बख्श···!"

एक-एक दिन बनर्जी साहब की मेम साहब रहीम को ओट में बुलाती और पूछती—"रहीम, साहब कल रात कहां गए थे? बता तो···!"

रहीम जवाब देता—"मालूम नहीं, मेम सा'ब।"

शुरू-शुरू में मेम साहब रहीम की बातों पर यकीन करती। शुरू-शुरू में मेम साहब समझती कि रहीम जो कुछ भी कह रहा है, सच है। लेकिन जब पानी सिर के ऊपर से गुजरने लगा, तब मेम साहब को संदेह होने लगा।

एक दिन रहीम को बुलाकर मेम साहब ने कहा—"रहीम, लो, यह रही तुम्हारी बख्शीस।"

अचानक बख्शीस की बात सुनकर रहीम ताज्जुब में पड़ गया। कारण यह कि बख्शीस तो विलायती मेम सा'ब दिया करती थीं। देशी हुकूमत आने के बाद से तो बख्शीस देने का रिवाज ही बन्द हो गया था।

रहीम ने पूछा—"किस बात की बख्शीस, मेम सा'ब ?"

मेम साहब ने कहा—"साहब रात में कहां-कहां जाते हैं, क्या तुम मुझे बता सकते हो ?"

"जी हुजूर।"

सभी बातों के जवाब में 'जी हुजूर' कहना रहीम की आदत बन गई थी। उसी अंग्रेज साहबों के जमाने से ही। ड्राइवर को किसी भी बात का प्रतिवाद नहीं करना चाहिए, किसी भी बात से इन्कार करना नहीं चाहिए। सभी बातों के जवाब में ही उसे कहना चाहिए—'जी हुजूर'।

उसके बाद जितनी बार रहीम ने देर कर साहब को घर पर छोड़ा था, उतनी ही बार मेम साहब ने पूछा था—"कल रात साहब कहां गये थे, रहीम ?"

रहीम जवाब देता—"होटल में मेम सा'ब।"

"होटल में क्यों ?"

"शायद कोई पार्टी थी।"

ताज्जुब होता है स्त्रियों की शक करने की प्रवृत्ति पर। ताज्जुब होता है उनकी खोद-खोद कर पूछ-ताछ करने की आदत पर। पहले के जमाने में तो ऐसा नहीं होता था। रहीम को याद है कि पहले तो साहब ही मेम साहब के बारे में पूछ-ताछ किया करते थे। इसके लिए साहब लोग रहीम को बख्शीस भी दिया करते थे।

साहब कहते—"मेम सा'ब कहां-कहां जाता है, सब हमको बोलेगा।"

अचानक बनर्जी साहब की आवाज सुनकर रहीम की मानो नींद टूटी !

गाड़ी की पिछली सीट पर बैठते ही बनर्जी साहब ने कहा—"रहीम।"

रहीम ने कहा—"जी हुजूर।"

बनर्जी साहब ने कहा—"कल सुबह खूब जल्दी तुम मेरे घर पर चले आना।"

"जी हुजूर।"

"मैं भोर पांच बजे निकलूंगा, उसके पहले ही हाजिर रहना। समझे ?"

"जी हुजूर।"

तब तक गाड़ी राइटर्स बिल्डिंग के सामने पहुंच गई। गाड़ी रुकते ही ऑफिस

के चपरासी और एक पुलिस कांस्टेबल ने सामने आकर सलाम किया। चपरासी बनर्जी साहब की फाइलें लेकर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। रहीम ने रास्ते के उस पार के गैरेज में गाड़ी खड़ी कर दी।

रहीम के गाड़ी से उतरते ही चीफ सेक्रेटरी साहब का ड्राइवर रामप्रसाद सामने आया और बोला—"सलाम वालेकुम रहीम साहब।"

रहीम ने कहा—"सलाम, सलाम रामप्रसाद भैया।"

रामप्रसाद ने पूछा—"क्यों रहीम साहब, बनर्जी साहब का मिजाज आज कैसा है?"

रहीम ने जवाब दिया, "साहब लोगों का मिजाज क्या कभी ठीक भी रहता है? साहब लोगों का मिजाज ठीक रह ही नहीं सकता।"

"क्यों भैया? ऐसा क्यों?"

रहीम ने कहा—"अगर साहब लोगों का मिजाज ठीक रहा तो फिर उन्हें पूछेगा ही कौन रामप्रसाद भैया?"

"यह दुनिया भी बड़ी अजीब है रहीम साहब।"

उसके बाद बगल की एक पान की दुकान में जाकर रहीम खड़ा हो गया। दुकान कहना ठीक नहीं होगा। दो लाठियों के ऊपर चटाई की छावनी कर कुछ महीनों से यह दुकान खोली गई है। गैर-कानूनी दुकान···। गैर कानूनी दुकान होने के कारण ही दुकानदार को खास-खास आदमियों की विशेष खातिर करनी पड़ती। पुलिस कांस्टेबल या राइटर्स बिल्डिंग के दरबान और चपरासियों को वह मुफ्त में पान-बीड़ी दिया करता।

रहीम वहीं जाकर बैठ गया। उसके बाद उसने कहा—"भैया एक जर्दावाला पान तो देना ·।"

लेकिन बहुत दिनों पहले जब कि रहीम को नयी-नयी नौकरी मिली थी, उस समय ऐसा नहीं था। वह जमाना था विलायती साहबों का जमाना। विलायती साहबों के जमाने में इस तरह यहां पान खाना या बीड़ी पीना मना था। ड्राइवरों को हर समय गाड़ी की स्टियरिंग पर बैठा रहना पड़ता।

एक बार किसी साहब ने अपने ड्राइवर को बुलवाया। ड्राइवर उस समय गाड़ी छोड़कर कहीं चला गया था। चपरासी ने आकर ड्राइवर को खोजा, परन्तु उसे ड्राइवर मिला नहीं। साथ ही साथ उस ड्राइवर की नौकरी चली गई। साथ ही साथ उनके नाम नोटिस जारी कर दी गई। वह बेचारा मुफ्त ही में नौकरी से हाथ धो बैठा।

ये सारी घटनाएं रहीम को अच्छी तरह याद है। सिर्फ रहीम को ही क्यों, सबों को याद हैं। उस जमाने में ये सारे किस्से राइटर्स बिल्डिंग के सभी बेयरों और चपरासियों के बीच फैल गये थे। सभी इस घटना की चर्चा करते। सभी इसके

वारे में तर्क-वितर्क करते···।

कौन साहव वढ़िया हैं और कौन साहव खराव, यह वात चपरासियों और ड्राइवरों के वीच भी फैल जाती।

उसके वाद उस बार यह कैसी घटना घट गई थी? वही खून-खरावा, मर्डर। राइटर्स विल्डिग के भीतर घुसकर टेररिस्टों ने लोमैन साहव को मौत के घाट उतार दिया था। वेचारे साहव के मुंह से खून की धारा वह निकली थी।

रहीम उस समय छोटा ही था।

चारों ओर पुलिस की सीटियां वज उठीं। ऑफिस के सामने भाग-दौड़ शुरू हो गई···।

गोलियां चलने की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। उस समय रहीम अपने अव्वा के साथ आफिस में नौकरी पाने की कोशिश कर रहा था। लेकिन नौकरी मिल ही नहीं रही थी।

रहीम के अव्वा कहते—"अरे रहीम, तुझे नौकरी जरूर मिलेगी।"

शुरू में रहीम को चपरासी की नौकरी दिलाने की कोशिश की थी रहीम के अव्वा ने। वाप चपरासी था तो, वेटा भी चपरासी क्यों न वने!

लेकिन तमाम कोशिशों के वावजूद भी जव रहीम को नौकरी नहीं मिली, तव रहीम के अव्वा वड़े दुखी हुए थे।

आखिरकार और कोई उपाय न देख रहीम के अव्वा ने उसे मोटर-ड्राइवरी सीखने के लिए भेज दिया। उन दिनों ड्राइविंग सिखाने के इतने स्कूल-कालिज नहीं थे। इसे-उसे पकड़ कर स्टियरिंग पर वैठ कर हाथ साधना पड़ता था।

उसके वाद एक साहव आए। उनका नाम था वॉमफिल्ड साहव, छोटे लाट साहव के मिलिटरी सेक्रेटरी। उन्हीं की मेम साहव ने अचानक रहीम को पसन्द कर लिया।

एक दिन रहीम के अव्वा छोटे लाट साहव की कोठी में गये थे। रहीम भी उनके साथ था। रहीम को वाहर के हॉल में छोड़कर उसके अव्वा भीतर कोठी में चले गये।

वहीं छोटे लाट साहव के सेक्रेटरी वॉमफिल्ड साहव की मेम सा'व ने रही को देखा।

मेम सा'व ने पूछा—"यह कौन है?"

पास के एक वेयरे ने कहा—"इसका वाप लोमैन साहब का खास चपरासं है।"

मेम साहव ने पूछा—"यह करता क्या है?"

वेयरे ने कहा—"हुजूर, इसने मोटर-ड्राइविंग सीखी है। लेकिन वेचारे कं नौकरीं नहीं मिल पा रही है।"

तब तक रहीम के अब्बा भी वहां आ गये।

मेम साहब को देखते ही रहीम के अब्बा ने सिर झुका कर सलाम ठोक दिया।

"क्या तुम्हारा लड़का नौकरी करेगा?"

रहीम के अब्बा ने कहा—"नौकरी मिले तो जान बचे मेम सा'ब। नौकरी मिलने पर मेरी भी गुजर-बसर हो सकेगी।"

सो कहा जा सकता है कि उसी दिन रहीम की नौकरी पक्की हो गई। मेम साहब ने लाइसेंस भी नहीं देखा। यह भी नहीं पूछा कि लाइसेंस पुराना है या नया।

उसके बाद जब बॉमफिल्ड साहब अपने घर पर आये, तब पोर्टिको के पास ही रहीम खड़ा था।

साहब को देखते ही रहीम समझ गया कि इनका नाम ही है बॉमफिल्ड साहब।

न बात न चीत, बस सीधा सलाम ठोक दिया रहीम ने।

साहब ने पूछा—"तुम कौन हो?"

रहीम ने पास आकर कहा—"हुजूर, आपका नौकर।"

शुरू-शुरू में तो रहीम का जवाब सुनकर बॉमफिल्ड साहब हैरान रह गये। पहले तो इस लड़के को उन्होंने कभी नहीं देखा।

लेकिन मेमसाहब ने वहीं आकर सारी बात साफ-साफ बता दी। उसने कहा—"मैंने इसे आज से ड्राइवर की नौकरी दी है।"

"ड्राइवर! क्यों, वह पहले वाला ड्राइवर कहां गया?"

मेम साहब ने कहा—"मैंने उसे डिस्चार्ज कर दिया है।"

"ह्वाई? क्यों?"

मेम साहब ने कहा—"वह बड़ा बदतमीज था और गैरहाजिर भी खूब होता था। दैट मोस्ट डिसओबेडिएण्ट फेलो, मोस्ट अन पक्चुअल···। मैंने उसे नौकरी से निकाल दिया है।"

साहब ने फिर और कुछ भी नहीं कहा। वे दोनों बातें करते-करते भीतर चले गये। साहब के दिल-दिमाग में भारी उथल-पुथल मची हुई थी। बंगाल में बहुत ही गोलमाल चल रहा था। टेररिस्ट लोग अंग्रेज साहबों को देखते ही उनके ऊपर पिस्तौल चला देते थे। कितने ही साहबों को उनकी गोलियों का शिकार होना पड़ा था।

उस समय देश की हालत भी बहुत खराब थी। साहब लोग देशी आदमियों पर विश्वास नहीं करते थे। नौकरी देते वक्त पूरी छान-बीन करते थे। बंगाली बाबुओं के पीछे पुलिस के आदमी लग जाते थे। कांग्रेस के नौजवान 'वन्दे मातरम्' के नारे

। करते थे ।

लेकिन वॉमफिल्ड साहव की मेम साहव देखने में वहुत ही खूवसूरत थी । रहीम गाड़ी चलाता और मेम साहव वैठी रहती पिछली सीट पर। उस ने में कलकत्ते की सड़कों पर इतनी गाड़ियां नहीं होतीं । रास्ते के राहगीर गाड़ी कर सरक कर किनारे आ जाते । उस समय साहव और मेमों की वड़ी खातिर ते थे वंगाली लोग । खातिर भी करते थे और उनसे डरते भी थे । मेम साहव टल में जाती । होटल में जाकर वह क्या करती थी, रहीम यह देख नहीं पाता । सके वाद जव मेम साहव लौटती, उस समय काफी रात हो जाती । शायद होटल के भीतर मेम साहव नाचती थी, डिनर लेती थी । उसके वाद जव वह गाड़ी में आकर वैठती तो उसके मुंह से शराव की तीखी वू आती । फिर भी शराव के नशे में मेम साहव कोई घटिया हरकत नहीं कर वैठती । उस नशे की खुमारी में भी मेम साहव गाड़ी से उतरते वक्त रहीम को वखशीस देना कभी नहीं भूलती ।

मेम साहव कहती—"रहीम, देखो साहव से कुछ न वताना ।"

किन्तु दिनों-दिन मेम साहव का वेहिसावीपन वढ़ने लगा । सचमुच वेहिसावी-पन के सिवाय इसे और क्या कहा जाये ? दफ्तर के काम-काज में साहव उन दिनों खूव ही व्यस्त रहते । दफ्तर में काम भी वहुत था । पूरे कलकत्ते में उस समय पकड़ा-धकड़ी चल रही थी । पुलिस-कमिश्नर साहव का खून करने के लिए आतंकवादी नौजवान जी-जान से मौका ढूंढ रहे थे ।

वात-वात में साहव को कलकत्ते से वाहर जाना पड़ता । आज ढाका, कल मैमनसिंह और परसों वारिसाल । वारिसाल उस समय सवसे ज्यादा सुलग रहा था । साहव की कमर में हमेशा रिवाल्वर टंगा रहता । उसे लेकर ही साहव पूरे प्रदेश में घूमते-फिरते ।

लेकिन वाहर से काफी दिनों के वाद लौटने पर वे हठात् देखते कि मेम साहव नदारद !

साहव सवों से पूछते—"मेम साहव कहां है ?"

कोई भी वता नहीं पाता कि मेम साहव कहां है । और फिर जाते हुए भी कहने का उपाय न था । मेम साहव ने सवों का मुंह वखशीस से वन्द कर दिया था ।

और उधर शायद रहीम मेम साहव को डायमण्ड हार्वर ले गया होता । मेम साहव वहां के रेस्ट-हाउस में रुकती । और फिर मेम साहव अकेली नहीं होती, साथ में होता एक नौजवान साहव भी ।

आजकल वनर्जी साहव को जिस तरह रहीम ले जाया करता है, विल्कुल उसी तरह ही । वनर्जी साहव के साथ कौन होता है, किसके साथ वनर्जी साहव डाक-वंगले में रात विताते हैं, यह वात वनर्जी साहव की मेम सा'व को वताने का नियम

नही है।

और फिर यही बनर्जी साहब उस समय सेक्रेटेरिएट मे मामूली से ओहदे पर थे। वॉमफिल्ड साहब के चेम्बर मे घुसने की भी बनर्जी साहब की हिम्मत नही पडती। उन दिनो सेक्रेटेरिएट पुलिस के पहरेदारो से भरा रहता। बाहर के किसी भी आदमी को भीतर आने के लिए परमिट लेना पड़ता था। जब लोमॅन साहब का खून हुआ, तब ही से यह नियम लागू किया गया था।

रहीम को भी एक आइडेंटिटी कार्ड दिया गया।

वॉमफिल्ड साहब के चेम्बर मे जाकर एक दिन रहीम ने देखा कि वॉमफिल्ड साहब बनर्जी साहब को कसकर डांट पिला रहे थे।

किसी बेकार आदमी के नाम शायद बनर्जी साहब ने आइडेंटिटी कार्ड जारी कर दिया था।

"तुमने कल बिना पूरी जांच-पड़ताल किये आइडेंटिटी कार्ड क्यों दे दिया ? ह्वाई ?"

"सर, मुझसे गलती हो गई ···।"

"नो—नो—नो···।"

हठात् वॉमफिल्ड साहब गुस्से के मारे जोर-जोरसे सिर हिलाने लगे—"नो—नो—नो···।"

वॉमफिल्ड साहब चीख पड़े—"गलती हो गयी कह देने से ही तुम्हारे सात खून माफ नही हो जायेंगे। ब्रिटिश गवर्नमेंट क्या झूठ-मूठ ही सात समन्दर और तेरह नदियां पार कर इण्डिया मे आई है ? हम किसी पर भी यकीन नही करते। हम अंग्रेज हैं। हमने अपनी बुद्धि और ताकत के बल पर एशिया मे अपना एम्पायर खड़ा किया है। हम किसी पर भी यकीन नही करते। हमने कभी यकीन किया भी नही और करेंगे भी नही।"

बनर्जी साहब ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा—"सो मैं जानता हू, सर···।"

"देन ह्वाई ? तुमने उस आदमी को आइडेंटिटी कार्ड क्यो दिया ? ह्वाई···? क्या तुम उसे जानते हो ? डु यू नो हिम ?"

बनर्जी साहब चुपचाप खड़े रहे।

"क्या तुम्हें मालूम है कि पुलिस कमिश्नर की रिपोर्ट मे उस आदमी को कांग्रेस का स्पाई बताया गया है ?"

"नही सर, मुझे मालूम नही था मैं माफी चाहता हूं।"

वॉमफिल्ड साहब गरज उठे—"इण्डिया मे तो बहुत-सी जातियां हैं। क्या तुम्हें मालूम है कि हम सबसे ज्यादा किनसे डरते हैं। बंगालियो से ही। तुम भी जरूर बंगाली बनर्जी हो, लेकिन एडमिनिस्ट्रेशन चलाने के लिए सबो को तो छोड़ा

नहीं जा सकता। सभी बंगालियों को छोड़ देने पर हम काम कैसे चलायेंगे? इसी-लिए तुम्हारे-जैसे दो-चार बंगालियों को भी हमने नौकरी दी है। तुम लोगों को रुपये देकर हम अपना काम निकाल लेते हैं। तुम लोगों में से किसी-किसी को रायसाहब या रायबहादुर बना दिया है हमने। किसी-किसी को लार्ड भी। जैसे लार्ड सिन्हा। लेकिन हम तुम बंगालियों पर यकीन नहीं करते। वी डोण्ट बिलीव यू पिपुल···।"

वनर्जी साहब ने कहा—"लेकिन सर, खुद मैंने ही दस टेररिस्टों को पकड़वा दिया था। उन्हें फांसी भी हो गई है।"

"सो सिर्फ दस टेररिस्ट क्यों? हम लोगों ने सुना है कि दैट सुभाष चन्द्र बोस भी एक खतरनाक टेररिस्ट है।"

वनर्जी साहब ने कहा—"हां सर, मैंने भी ऐसा ही सुना है।"

"तो क्या तुम उसे पकड़वा नहीं सकते?"

वनर्जी साहब ने कहा—"जरूर पकड़वा सकूंगा सर···। थोड़ी कोशिश करने पर ही वह पकड़ में आ जायेगा। मेरा तो ख्याल यह है कि सर, सभी बंगाली आतंकवादी हैं। ऑल बेंगालिज आर टेररिस्ट···।"

"हाउ डू यू नो दैट? तुम यह कैसे जानते हो?"

वनर्जी साहब ने कहा—"सर, मैं सब कुछ जानता हूं। मुझे उम्मीद है कि मैं एक दिन सबों को पकड़वा दूंगा। कांग्रेस के जितने भी लीडर हैं, सबों को···।"

"जाओ, जल्दी करो। डू दैट ऐज क्विकली ऐज पॉसिबल। जितनी जल्दी हो सके, सबों को पकड़वा दो। मैं और ज्यादा समय तक यह टेंशन बर्दाश्त नहीं कर सकता। देखो वनर्जी, मैंने नयी-नयी शादी की है और इधर होम सेक्रेटरी का काम कर रहा हूं। मेरी होम-लाइफ चौपट हो गई है। मैं होम-लाइफ एन्ज्वाय नहीं कर पाता। इस कांग्रेस को बढ़िया-सा सबक सिखा कर मैं शान्ति से घर में रहना चाहता हूं। मिसेज बॉमफिल्ड इज टायर्ड ऑफ दिस सर्विस···। मिसेज बॉमफिल्ड इस नौकरी से अजीज आ चुकी है।"

उसके बाद अचानक रहीम को देखकर बॉमफिल्ड साहब ने पूछा—"ह्वाट रहीम? क्या चाहते हो?"

रहीम ने कहा—"हुजूर, मेम साहब ने यह चिट्ठी दी है।"

रहीम को पता था कि मेम साहब ने चिट्ठी में क्या लिखा है! मेम साहब ने लिखा था कि वह रहीम को लेकर घूमने जा रही है। दूर, बहुत दूर···। डायमण्ड हार्बर, फलता, रांची या फिर हजारीबाग। या फिर और कहीं···। मेम साहब ने यह भी लिखा था कि उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। वह कब लौटेगी, यह भी ठीक नहीं। कुछ फिकर मत करना डियर···। आइ एम फीलिंग वेरी लोनली···।

चिट्ठी पढ़कर अनजाने ही बॉमफिल्ड साहब ने एक गहरी सांस छोड़ी। और

किसी ने इस पर गौर किया हो या नहीं, रहीम ने जरूर गौर किया था।

किन्तु बेचारा रहीम करता भी क्या ?

बॉमफिल्ड साहब की बीवी को तो रहीम बहुत दिनों से देखता आ रहा था। कहीं से किसी नौजवान साहब को लेकर मेम साहब गाड़ी में बैठाती और रहीम की गाड़ी हवा से बातें करने लगती।

ये दोनों कहां जायेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं था।

मेम साहब कहतीं—"जिधर तुम्हारी मर्जी हो, उधर ही ले चलो रहीम। जहां भी तुम चाहो···।"

रहीम कभी ग्रैण्ड ट्रंक रोड पकड़कर सीधा पश्चिम की तरफ बढ़ जाता, कभी कलकत्ते के उत्तर की तरफ या फिर कभी कलकत्ते के दक्षिण की ओर।

उधर बॉमफिल्ड साहब का मिजाज धीरे-धीरे बिगड़ता जा रहा था। देश की हालत ज्यों-ज्यों खराब होती जा रही थी, त्यों-त्यों साहब भी खूंख्वार होते जा रहे थे। उसी हालत में एक दिन बॉमफिल्ड साहब घर पर आ पहुंचे।

उन्होंने आते ही नौकरों से पूछा—"ह्वेयर इज मिसेज ? मेम साहब कहां है ?"

कई दिनों से साहब के मन में शक हो रहा था। साहब समझ रहे थे कि उनकी आंखों में धूल झोंक कर जिस तरह बंगाली टेररिस्ट ब्रिटिश एम्पायर के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहे थे, उसी तरह उनकी फैमिली लाइफ में भी कोई छिपे तौर पर जहर घोल रहा था।

उस रात मिस्टर बॉमफिल्ड ने बेहद अकेलापन महसूस किया बेहद सूनापन··· । उन्हें ऐसा लगा मानो बंगाली टेररिस्ट उनकी रात की नींद, दिन का चैन और घर की स्त्री—सभी कुछ चुराकर भाग गये हैं।

"रहीम कहां है ?"

"रहीम मेम साहब को गाड़ी में लेकर गया है हुजूर।"

"ठीक है !"

बॉमफिल्ड साहब ने और कुछ भी नहीं कहा। बंगाल गवर्नर के होम सेक्रेटरी मिस्टर बॉमफिल्ड ने किसी को कोई हुक्म भी नहीं दिया।

उसके बाद हठात् उन्होंने एक काण्ड कर डाला। उन्होंने फौरन गवर्नर को टेलीफोन किया। उस समय बंगाल के गवर्नर थे सर जान एण्डर्सन।

"यस मिस्टर बॉमफिल्ड, क्या बात है ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"योर एक्सलेंसी अभी-अभी एक सीरियस खबर मिली है।"

"क्या ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा— खबर मिली है कि आज

जोरदार हंगामा होगा।"

"हंगामा ? कलकत्ते में ? आज ही क्या कह रहे हो ? ह्वाट डू यू टॉक ?"

"यस, योर एक्सलेंसी। मुझे एक कान्फिडेंशियल सोर्स से खबर मिली है कि कलकत्ते के कांग्रेसी आज ही एक हंगामा करेंगे। उन्होंने तय किया है कि वे आज रात में गवर्नर्स हाउस में बम फेंकेंगे।"

"यह क्या कह रहे हो ? आर यू श्योर ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने यह भी कहा—"पूरे कलकत्ते के कांग्रेसी इसकी तैयारी कर रहे हैं।"

सर जॉन एण्डर्सन ताज्जुब में पड़ गये।

उन्होंने कहा—'लेकिन गांधी ने तो मेरे साथ मुलाकात की थी और कहा था कि वे लोग आखिरी दम तक नन-वायलेंट रहेंगे।"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"मिस्टर गांधी इज ए लायर। मिस्टर गांधी एक नम्बर के झूठे हैं।"

"यह कैसे हो सकता है ? लार्ड आर्विन ने तो ऐसा नहीं कहा। लार्ड आर्विन ने कहा है कि गांधी इज ए गुड मैन···। गांधी भले आदमी हैं।"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"लेकिन मुझे कुछ और ही खबर मिली है। आइ सस्पेक्ट एन अपराइजिंग···। मुझे एक हंगामे का अंदेशा है···।"

"तो फिर क्या करोगे ? क्या करना चाहते हो ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"मैं कर्फ्यू डिक्लेयर करना चाहता हूं।"

"कर्फ्यू ?"

"यस योर एक्सलेंसी।"

"लेकिन कब से कब तक ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"कर्फ्यू अभी ही लगाना चाहता हूं, इसी वक्त। उसके बाद जैसी सिचुएशन होगी, उसके मुताबिक कर्फ्यू उठा लूंगा।"

"ऑल राइट।"

सर जॉन एण्डरसन अपने होम सेक्रेटरी की बात से इन्कार नहीं कर सकते थे। उसी समय पुलिस-कमिश्नर के पास फोन गया। उसी समय राइटर में खबर गई, ए० पी० आई० में खबर गई। खबर गई ऑल इण्डिया रेडियो में। खबर गई पृथ्वी के तमाम शहरों में, गांवों में और जनपदों में। खबर भेजी गई कि जर्मनी के साथ चल रही लड़ाई का फायदा उठाकर कलकत्ते की कांग्रेस पार्टी गवर्नर्स हाउस पर हमला करना चाहती है। इसके लिए हर जगह कर्फ्यू जारी किया गया है।

उस समय कलकत्ता महानगर में यूं भी पूरे दम से ब्लैक आउट चल रहा था। बंगाल में अकाल भी छाया हुआ था। गांव से झुण्ड के झुण्ड लोग कलकत्ते

के लंगरखानों की तरफ भागे आ रहे थे। भात की बात तो दूर, लोग चुल्लू-भर माड के लिए तरस रहे थे। सभी चिल्ला रहे थे—"थोड़ा-सा माड़ दो मां···।"

यह कहानी उसी जमाने की है। रहीम उस समय ब्रॉमफिल्ड साहब की मेम साहब को रांची के एक होटल में ले गया था। मिसेज ब्रॉमफिल्ड ने वहां अपने साथी नौजवान साहब के साथ शराब पी, डांस किया और गाना भी गाया।

रांची के होटल में दिन कभी रात में बदल जाता और कभी रात हो जाती दिन। दिन और रात सभी बराबर···;

मेम साहब को उस समय इतना नशा हो आता कि बातें उसकी जुबान में ही अटक कर रह जातीं।

उसके बाद जब एक दिन मिसेज ब्रॉमफिल्ड का नशा टूटा, तब उन्हें ख्याल आया कि इस दुनिया में कलकत्ता नाम का एक शहर है और मिस्टर ब्रॉमफिल्ड नाम के एक शौहर भी हैं उसके।

और यूं भी हरेक नशों का कभी-न-कभी तो शेष होता है। सो फिर मेम सा'ब का नशा टूटा और रहीम की बुलाहट हुई।

मेम सा'ब ने कहा—"रहीम।"

रहीम हाजिर था।

उसने कहा—"जी हुजूर।"

मेम साहब ने कहा—"चलो, लौट चलो···।"

रामप्रसाद कहता—"दुनिया कितनी बदल गयी है भैया!"

ड्राइवरों के बीच रहीम एक समझदार और अनुभवी बुजुर्ग के रूप में परिचित था।

रहीम कहता—"दुनियादारी तुमने भला क्या देखी है रामप्रसाद भैया? मैंने बहुत कुछ देखा है और बहुत कुछ समझा भी।"

इसीलिए एक अरसे में दुनिया देखने के बाद ही रहीम आजकल और भी चुपचाप रहने लगा है। इसीलिए जब बनर्जी साहब की मेम साहब रहीम से खोद-खोद कर साहब के बारे में पूछा करती तब बहुधा रहीम चुप रहता। बहुत बख्शीश मिलने पर भी वह कुछ नहीं बताता। सिर्फ कहता—"मेम सा'ब, मुझे कुछ पता नहीं।"

अचानक डलहौजी स्क्वायर में चारों तरफ बड़ा शोर-गुल होने लगा।

रामप्रसाद भैया ने पूछा—"क्या हुआ है भैया?"

रहीम जर्दा वाला पान खाते-खाते सब कुछ देख रहा था।

उसने कहा—"गोली चली होगी शायद···।"

"गोली ? कहां ?"

डलहौजी स्क्वायर इलाके के लिए इस तरह की घटनाएं नयी नहीं थीं। इसको लेकर कोई सरदर्द मोल नहीं लेता। गोली भी चलती है और काम भी चलता रहता है। कलकत्ता शहर की तरह ही डलहौजी स्क्वायर का जीवन भी अनिश्चित रहता था।

काम करते-करते हठात् लोग सुनते कि श्याम बाजार में गोली चली है। या फिर धर्मतल्ला में···। लोगों के मरने की खबर भी मिलती और घायलों को अस्पताल भेजे जाने की भी। किन्तु इसके लिए कोई माथापच्ची नहीं करता। उसके बाद दूसरे दिन फिर जीवन पहले की भांति ही चलने लगता।

हठात् बनर्जी साहब का चपरासी दौड़ते-दौड़ते आ धमका। उसने कहा—"साहब ने तुम्हें दफ्तर में बुलाया है।"

"साहब ने बुलाया है ! साहब कहीं जायेंगे क्या ?"

"सो मैं नहीं जानता। साहब ने तुम्हें अभी तुरन्त बुलाया है।"

आखिर हुआ क्या ? बनर्जी साहब तो रहीम को इस तरह कभी भी नहीं बुलाया करते थे। कहीं उन्हें जाना होता था तो साहब खुद नीचे चले आते थे।

"गोली चली है क्या भैया ?"

"यह भी मालूम नहीं।"

"तो फिर इस इलाके में इतना गोलमाल क्यों हो रहा है ?"

"क्या जाने।"

रहीम ने मुंह का पान थूक दिया और वह दौड़ा-दौड़ा राइटर्स बिल्डिंग के भीतर चला गया।

इधर ऑफिस में हठात् फिर मिस्टर बॉमफिल्ड के साथ मुलाकात हो जायेगी, यह बनर्जी साहब ने सपने में भी नहीं सोचा था।

फोन की घंटी बजते ही बनर्जी साहब ने रिसीवर उठाया। उन्होंने पूछा—"कौन ?"

ऑपरेटर ने बताया—"सर, होटल से मिस्टर बॉमफिल्ड आपसे बातचीत करना चाहते हैं।"

"कौन बॉमफिल्ड ?"

"सर वे बहुत दिनों के बाद इण्डिया आये हैं। एक समय वे बंगाल गवर्नमेंट के होम सेक्रेटरी थे।"

"ओ, मिस्टर बॉमफिल्ड ? तो फिर ऐसा करो। उन्हें तुरत लाइन दो। इसी वक्त···।"

उसके बाद ही उन्हें मिस्टर बॉमफिल्ड की भारी आवाज सुनाई पड़ी। वही जानी-पहचानी आवाज। एक जमाने में उसी आवाज पर कलकत्ता शहर चौंक उठता था।

"आर यू बनर्जी ?"

"यस, गुड मार्निंग मिस्टर बॉमफिल्ड ! कब आये आप ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"मैं तुम्हारे साथ एक बार भेंट करना चाहता हूं, मिस्टर बनर्जी।"

मिस्टर बनर्जी ने कहा—"क्या सर, मैं आपसे भेंट करने होटल में चला आऊं ?"

मिस्टर बॉमफिल्ड ने कहा—"नहीं, मैं ही आ रहा हू। वट ह्वाट इज दिस ? शहर में इतना गोलमाल किस बात का है ?"

मिस्टर बनर्जी ने कहा—"सर, आप तो सभी कुछ जानते हैं। कलकत्ते का तो हमेशा से यही हाल रहा है।"

"अच्छा, मैं आ रहा हू।"

यह कहकर मिस्टर बॉमफिल्ड ने टेलीफोन का रिसीवर रख दिया।

और फिर थोड़ी देर के बाद ही वे राइटर्स बिल्डिंग में चले आये। आते ही उन्होंने कहा—"हैलो, हैलो, हैलो'''।"

मिस्टर बनर्जी खड़े हो गये। उन्होंने कहा—"आप आये, यह मेरी खुश-किस्मती है। कहिए, आप कैसे हैं ?"

बॉमफिल्ड साहब ने कहा—"कलकत्ते में उसी तरह गोलमाल चल रहा है। मिस्टर बनर्जी ! दि सेम ओल्ड ट्रबल ! हम लोगों के समय में जैसा गोलमाल था, वैसा ही अब भी है। थोड़ा-सा भी सुधार नहीं हुआ। लेकिन अब तो इण्डिया आजाद हो गया है।"

"इण्डिया आजाद हो गया है तो क्या हुआ सर ! सुधार कुछ भी नहीं हुआ है, नथिंग'''। बल्कि गोलमाल और भी बढ़ गया है। इस समय, यहां प्रेसीडेन्ट रूल चल रहा है।"

"वट ह्वाई ? लेकिन क्यों ?"

मिस्टर बनर्जी ने कहा—"मेरे बजाय आप ही खुद इसके बारे में बेहतर समझ सकते हैं।"

"लेकिन मैं तो एक अरसे से आउट-ऑफ-टच हू। क्या हुआ है आखिर ? ह्वाट इज दि ट्रबल ? तुम मुझे बताओ न !"

मिस्टर बनर्जी ने कहा—"इसके पीछे एक लम्बा इतिहास है सर। वह सब इसी वक्त कह पाना मुमकिन नहीं। जानते है सर, मैं भी यही सोचा करता हू दिन-रात। ह्वाट इज दिस'''? आखिर देश के आजाद होने के बाद भी ऐसा क्यों

हुआ ? सोचते-सोचते दिन से रात हो जाती है और हो जाता है रात से दिन। मैं तो कोई भी सॉल्युसन ढूंढ नहीं पाता हूं।"

"हाउ इज योर मिसेज ? तुम्हारी बीवी कैसी है ?"

बनर्जी साहब ने कहा—"आज सात दिन हो गये, अपनी बीवी से मेरी मुलाकात ही नहीं हुई।"

"मुलाकात ही नहीं हुई ? इसका मतलब ?"

बनर्जी साहब ने कहा—"मुलाकात करने का समय ही नहीं मिला। फाइलों का ढेर लेकर घर जाता हूं। रात में भी काम करता हूं।"

"यह क्या कह रहे हो ? तुम्हारी बीवी तो तुम्हारे साथ एक ही मकान में रहती है न !"

"यस, फिर भी मुलाकात नहीं हुई।"

मिस्टर बॉमफिल्ड आश्चर्य चकित रह गये।

उन्होंने कहा—"डू यू नो बनर्जी, आई कमिटेड दि सेम मिस्टेक। मैंने भी ठीक यही गलती की थी।"

मिस्टर बनर्जी ने कहा—"लेकिन मैं क्या करूं ? बहुत काम है यह देखिए न ! आज ही शायद कर्फ्यू डिक्लेयर करना पड़ेगा।"

"कर्फ्यू ? फिर कर्फ्यू ? लेकिन क्यों ?"

हठात् ड्राइवर रहीम भीतर चला आया। बॉमफिल्ड साहब को देखते ही चकित रह गया।

"तुम रहीम हो न ?"

रहीम ने बहुत दिनों के बाद अपने पुराने साहब को देखकर उन्हें पहले की तरह सलाम किया।

उसके बाद उसने पूछा—"आप अच्छे तो हैं हूजूर ?"

मेम साहब कैसी हैं, यह बात भी पूछने जा रहा था रहीम। लेकिन अचानक उसने अपने-आप को रोक लिया।

वहां खड़े-खड़े ही रहीम ने मानो पल भर में सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर डाली। ये वही बॉमफिल्ड साहब हैं उसके पुराने साहब···।

रहीम को अच्छी तरह याद है कि उस समय गाड़ी लेकर वह रांची से वापस लौट रहा था। पीछे बैठी थी शराब के नशे में चूर मेम साहब और साथ ही था वह नौजवान साहब।

जब गाड़ी हावड़ा-ब्रिज के करीब पहुंची, तब तक रात हो चुकी थी। चारों तरफ अंधेरा था। रास्ते की सारी बत्तियां बुझा दी गयी थीं।

रहीम को कुछ डर-सा लगने लगा। यह क्या हुआ ? ऐसा क्यों हुआ ?

एक जगह पुलिस ने गाड़ी रुकवा दी।

"हू इज देअर ? गाड़ी में कौन है ?"

रहीम ने जवाब दिया—"बॉमफिल्ड साहब की मेम साहब ! बॉमफिल्ड साहब जो कि बंगाल गवर्नमेंट के होम सेक्रेटरी हैं।"

"उधर नहीं जा सकते। उधर कर्फ्यू लगा हुआ है।"

लेकिन बॉमफिल्ड साहब का नाम सुनकर और मेम साहब का चेहरा देखकर आखिरकार पुलिस ने गाड़ी को छोड़ दिया।

कलकत्ते के रास्ते में घोर अंधकार छाया हुआ था। रहीम बड़ा बाजार की तरफ गाड़ी बढ़ाता जा रहा था। रहीम को न जाने क्यों बेहद डर लगने लगा था।

अचानक एक जगह किसी ने चिल्लाकर कहा—"हू इज देअर ? कौन है ? गाड़ी फौरन रोक दो।"

रहीम कुछ जवाब देता, उसके पहले ही सामने की गाड़ी से एक पुलिस सार्जेंट उतर कर सामने आया। उसके बाद उसने गाड़ी की पिछली सीट की तरफ उचक कर देखा और कमर से पिस्तौल निकालकर उसने मेम साहब की तरफ ··।

लेकिन खैर जो बात कोई जानता नहीं, किसी के लिए भी उसे न जानना ही बेहतर है।

रहीम भी उस समय मानो पागल-सा हो गया।

सामने की तरफ उसने देखा। सार्जेण्ट और कोई नहीं था। खुद बॉमफिल्ड साहब ही थे। कर्फ्यू के बीच अपनी बीवी को ढूंढने निकले थे वे।

हठात् बनर्जी साहब उठ खड़े हुए। रहीम का भी सपना मानो टूट गया।

बनर्जी साहब ने कहा—"रहीम, गाड़ी तैयार करो। बाहर निकलूंगा।"

रहीम नीचे उतर गया।

उसके बाद मिस्टर बॉमफिल्ड की तरफ देखते हुए मिस्टर बनर्जी ने कहा—"चलिए सर···। आपको आपका वही पुराना कलकत्ता दिखाऊं। दैट योर ओल्ड कैलकटा···।"

मिस्टर बॉमफिल्ड भी उठ खड़े हुए।

उन्होंने कहा—"किन्तु बनर्जी, आइ टेल यू, मैंने जो गलती की है, वही गलती तुम मत दुहराओ। मेरी तरह तुम भी फैमिली को नेगलेक्ट मत करो। आखिरकार बूढ़े होने पर जो हालत मेरी हुई है, वही हालत तुम्हारी भी होगी। मुल्क तो हमेशा के लिए रहेगा। मुल्क की दिक्कतें भी रहेंगी। इतिहास में कभी ऐसा जमाना नहीं आया, जब शासकों और शासितों के बीच शान्ति रही हो। लेकिन तुम्हारे मन की शान्ति अगर नष्ट हो गई तो फिर वह कभी भी लौट कर आने की नहीं। मेरी तरह फिर तुम्हें भी दर-दर भटकना पड़ेगा।"

वॉमफिल्ड साहव की वातें सुनकर वनर्जी साहव मानो आकाश से नीचे गिरे।

उन्होंने पूछा—"आप क्या कह रहे हैं सर ? मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूं।"

वॉमफिल्ड साहव ने कहा—"तो फिर सुनो। यह रहस्य कोई भी नहीं जानता। लाट साहव सर जॉन एण्डर्सन भी इसके वारे में नहीं जानते थे। मैंने अपनी वीवी का खून करने के लिए ही कर्फ्यू डिक्लेयर किया था। उसके वाद सार्जेण्ट की पोशाक पहनकर मैं रास्ते में खड़ा हो गया। उस दिन मैंने खुद अपने ही हाथों अपनी वीवी को अपनी पिस्तौल की गोली का शिकार वनाया था।"

वॉमफिल्ड साहव की वातें सुनकर मिस्टर वनर्जी हैरान रह गये। उन्होंने कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं सर ?"

मिस्टर वॉमफिल्ड ने कहा—"हां, लोग समझते हैं कि मेरी वीवी की मौत फ्लू की वजह से हुई थी। किन्तु वह सच नहीं है। मेरी नौकरी ने ही मेरी वीवी का खून किया था'''। खुद मैंने ही उसका खून किया था। यह रहीम गवाह है उस घटना का। रहीम के सिवाय और कोई भी इस घटना के वारे में नहीं जानता। इसीलिए इण्डिया से जाते वक्त मैंने रहीम को पांच हजार रुपयों की वख्शीस दी थी। उसका मुंह वन्द करने के लिए'''। आज ही के दिन मैंने अपनी वीवी जूली का खून किया था। आज ही के दिन मेरी वाइफ की डेथ—ऐनिवर्सरी है'''।"

मर्जी खुदा की

अपने लेखक-जीवन में खुद लेखक ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन होता है।

इसका कारण यह कि एक लेखक के जीवन की सबसे बड़ी ट्रैजेडी यह है कि उसे जीवन-भर लिखना पड़ता है। जिन्दगी भर उसे बढ़िया चीज लिखने की विवशता होती है। कोई एक अच्छी किताब लिखकर रुक जाने से काम नहीं चलता। यदि अच्छी किताब वह लिख चुका है, तो दूसरी किताब अच्छी न होने पर कोई उसे माफ नहीं करेगा। सिर्फ अच्छा लिखना होगा, यही नहीं। और अच्छा। और, और भी अच्छा। हमेशा अच्छा···।

तो लीजिए, पेश है मेरे अपने दोस्त शरदिन्दु की कहानी। शरदिन्दु की अजीबो-गरीब शादी की कहानी!

उपयुक्त उम्र हो जाने पर सबों की ही शादी होती है। वैसे मनुष्य के जीवन में शादी होना अनिवार्य हो, ऐसी कोई बात नहीं। हम लोगों के सभी दोस्तों की शादी कुछेक साल आगे-पीछे हो चुकी थी। उन सबों की शादी में हम लोग दल बनाकर बराती बन कर गए थे। दल बनाकर किसी विवाहोत्सव में शामिल होने का मजा कुछ और ही है। इसका अनुभव पाठकों में से अधिकांश को जरूर होगा।

लेकिन सिर्फ शरदिन्दु की शादी को लेकर जो मुसीबत आ खड़ी हुई थी, वैसी मुसीबत शायद मानव-इतिहास में कभी भी नहीं आई होगी। शरदिन्दु की शादी ही एक इतिहास सृष्टि करने वाली नजीर बनकर रह गई है। हम लोगों का शरदिन्दु भी एक दिन रिश्वत के एक षड्यन्त्र का शिकार हो गया था।

किस्सा शुरू से ही बयान करना बेहतर होगा। शरदिन्दु हमारे दल में होते हुए भी हमारे दल से अलग था। हम लोगों की तरह उसके पास पैतृक सम्पत्ति या जमीन-जायदाद कुछ भी नहीं थी। न ही उसके साथ कुल-गौरव की कोई कहानी जुड़ी हुई थी। दुनिया में उसका अगर कोई था तो थी सिर्फ एक बूढ़ी विधवा मां।

हम लोगों में से सभी किसी-न-किसी सिफारिश की बदौलत कोई-न-कोई नौकरी हासिल कर चुके थे।

लेकिन शरदिन्दु को नौकरी कौन देता ?

शरदिन्दु को अगर कोई भरोसा था तो सिर्फ कुछेक ट्यूशनों का। दिन-रात घोर परिश्रम करके वह जो कुछ थोड़े से रुपये कमा पाता, उन्हीं से दोनों प्राणियों की गुजर-बसर होती थी।

शरदिन्दु की विधवा मां हम लोगों को देखते ही कह उठती—"बेटे, क्या तुम लोग शरदिंदु के लिए भी एक नौकरी नहीं ढूंढ सकते ?"

मानो हम लोगों के लिए नौकरी ढूंढ पाना चुटकियों का खेल था।

"या फिर नौकरी नहीं मिलती तो उसकी शादी ही करा दो। बहुधा ऐसा भी होता है कि किसी-किसी की किस्मत शादी के बाद पलट जाती है। शादी भी तो नहीं होती शरदिन्दु की···।"

लेकिन शरदिन्दु-जैसे बेकार लड़के के साथ अपनी लड़की का व्याह भला करता भी कौन ?

शरदिन्दु की मां कहती—"लेकिन दुनिया में बिना मां-बाप की ऐसी लड़कियां भी तो हैं, जिनकी शादी में दान-दहेज देने को कुछ भी नहीं होता। देने को अगर कुछ होता है तो सिर्फ कन्या-कलश···। मैं भला और कितने दिनों तक जिन्दा रहूंगी ? मेरी भी तो काफी उम्र हो चली है। आखिरकार क्या बहू का मुंह देखे बिना ही मर जाऊंगी ?"

शरदिन्दु की मां की पीड़ा हम लोग समझते थे। लेकिन शरदिन्दु को इस बात की रत्ती-भर भी परवाह नहीं थी। वह हमेशा हंसते-हंसते सारे दुःखों का बोझ अपने कंधे पर उठाये घूमा करता। राज-दरबार हो या श्मशान—हर जगह वह प्रसन्न रहता। न तो उसे किसी से कोई नाराजगी और न ही किसी से जलन। यानी जिसे कहते हैं—सदाशिव।

और ताज्जुब की बात यह कि ऐसे ही सदाशिव की जिन्दगी में ऐसी भारी मुसीबत पड़ने को थी।

यह मुसीबत आई थी शादी के दिन ही। ठीक विवाह के मण्डप में।

हां, आखिरकार शरदिन्दु की शादी तय हो गई थी। लड़की के मां-बाप मर चुके थे, लड़की अपने चाचा-चाची के लिए भार-स्वरूप थी। उसे पार करने के लिए चाचा-चाची जी-जान से जुटे हुए थे। अनेक वर्षों से भार बनी हुई लड़की को वे जिस किसी भी लड़के के हाथ सौंप कर पिण्ड छुड़ाना चाहते थे। इसका कारण यह था कि लड़की की उम्र दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी और वह आखिरकार अपने चाचा-चाची के गले का कांटा बन चुकी थी।

ठीक उसी समय शरदिन्दु-जैसे बेरोजगार लड़के की भनक मिली। और फिर कोई बातचीत नहीं—वर-पक्ष और कन्या-पक्ष दोनों ही राजी हो गये। पंचांग देखकर शादी की लग्न, दिन और तारीख तय किये गये। नजदीकी रिश्तेदारों तक

शादी के निमन्त्रण-पत्र भी पहुंच गये।

उसके बाद यथासमय शरदिन्दु दूल्हे के वेश में लड़की वालों के घर पर पहुंचा। उत्सव करीब-करीब समाप्ति पर था। स्वागत-सत्कार और खिलाने-पिलाने की व्यवस्था में कोई त्रुटि नही थी। नाई, पुरोहित और आमंत्रित अतिथि —सभी हाजिर थे। शरदिन्दु को एक पीढ़े के ऊपर खड़ा रहना पड़ा और उसके बाद कन्या को एक-दूसरे पीढ़े पर बिठाकर दूल्हे के चारों तरफ सात बार परिक्रमा कराई गई और उसके बाद ही शुभदृष्टि की रस्म पूरी हुई।

और बस इसके बाद ही सम्प्रदान होने वाला था।

बीच में खड़े पुरोहित जी सम्प्रदान का मंत्र पढ़ने ही जा रहे थे कि इसी समय एक अप्रत्याशित बाधा आ पड़ी···।

चारों तरफ शोर-गुल मचने लगा।

क्या हुआ? क्या बात है? इतना गोलमाल क्यों हो रहा है?

बरातियों ने देखा कि अचानक शादी-घर के सामने एक बड़ी इम्पोर्टेड गाड़ी आकर खड़ी हुई। उस गाड़ी से उतर कर एक सम्भ्रान्त वृद्ध महिला चली आई। उस महिला ने सफेद रंग की कीमती साड़ी और रेशमी समीज पहन रखी थी।

गाड़ी से उतर कर ही उन्होंने जिसे अपने सामने पाया, उसी से पूछा—"क्या यही यतीन्द्रकुमार सरकार का मकान है? क्या इसी मकान का पता है, 3/1 दर्जीपाड़ा लेन?"

उस आदमी ने कहा —"हां।"

"उनकी भतीजी देवयानी क्या यहीं रहती है?"

उस आदमी ने कहा—"हां।"

उस महिला ने फिर सवाल किया —"यतीन बाबू कहां हैं? क्या आप उन्हें एक बार बुला देंगे?"

उस आदमी ने कहा—"वे तो इस समय बेहद व्यस्त हैं।"

"व्यस्त हैं? किस काम में व्यस्त हैं?"

"शादी में वे सम्प्रदान की तैयारी कर रहे हैं।"

"सम्प्रदान? कैसा सम्प्रदान? किसकी शादी हो रही है?"

"उनकी भतीजी देवयानी की।"

"देवयानी की?"

"जी हां, आज देवयानी की शादी है। क्या देख नहीं रहे हैं—कितने लोग यहां इकट्ठे हुए हैं। दूल्हा भी आ गया है। बस अब सम्प्रदान होने ही वाला है।"

उस महिला ने कहा—"नहीं, यह शादी नहीं होगी। मैं यह शादी होने नहीं

दूंगी। किसी भी कीमत पर नहीं…।"

यह कहकर उन्होंने पुकारा—"कालिदास, अरे ओ कालिदास…।"

कालिदास नाम के आदमी के आते ही उस महिला ने कहा—"घटक और पुरोहित जी को तुरन्त बुलाओ।"

पुरोहित के आते ही उन्होंने पूछा—"पंडित जी, आज शादी का लग्न कब तक है?"

"मां जी, शाम छह बजे से रात ग्यारह बजे तक।"

उस महिला ने कहा—"ठीक है।"

उसके बाद बाहर खड़ी एक जीप की तरफ इशारा करते हुए उस महिला ने कहा—"कालिदास, पुलिस वालों से कहो कि वे मुन्ने बाबू को यहां ले आयें।"

बस कहने भर की जो कुछ देर थी। साथ ही साथ सात-आठ रायफलधारी पुलिस कांस्टेबल एक नौजवान को घेर कर घर के भीतर ले आये। जो लोग बराती बन कर शादी में आये थे, वे रायफलधारी कांस्टेबलों को देखकर बड़ी चिन्ता में पड़ गये। आखिर मामला क्या है? यह महिला आखिर है कौन? और फिर इस नौजवान को भला पुलिस के पहरे में क्यों लाया गया है?

उसके बाद क्षण भर में ही जो घटना घटी, वह दुनिया के इतिहास में किसी की भी शादी के वक्त नहीं घटी होगी। हमारे दोस्त शरदिन्दु को पीढ़े से उठा कर उसकी जगह उस नौजवान को बिठा दिया गया और देवयानी अपने पीढ़े पर ही रही। लड़की के चाचा ने उस नौजवान के हाथों में ही अपनी भतीजी देवयानी का सम्प्रदान कर दिया। और शरदिन्दु बुद्धू की भांति टुकुर-टुकुर उस तरफ ताकता रहा।

कहानी की शुरुआत में ही जो भी क्लाइमेक्स हो, कोई बात नहीं। लेकिन जिन्दगी की शुरुआत में ही यदि ऐसे क्लाइमेक्स की सृष्टि हो तो उसकी शेष परिणति का ग्राफ कहां, किस ऊंचाई तक, किस बिन्दु पर जा पहुंचेगा!

फिर भी गनीमत की बात यही है कि मैं इस दुर्घटना के वक्त कलकत्ता में मौजूद नहीं था। अगर मैं मौजूद होता तो गुस्से के मारे क्या कर गुजरता, पता नहीं। और फिर उस समय तक मेरा लेखक-जीवन आरम्भ भी नहीं हुआ था। हां, लेखक बनने की इच्छा जरूर थी। नौकरी के सिलसिले में मैं उस समय कलकत्ता से करीब पांच सौ मील दूर था। और वह नौकरी भी ऐसी थी कि जब चाहें छुट्टी मिल नहीं सकती। वह नौकरी थी चोरों और भ्रष्टाचारियों को पकड़ने की नौकरी। यानी मैं भ्रष्टाचार-निवारक अफसर के पद पर था। रिश्वत की लेन-देन का जो कारोबार इन दिनों भारत में फल-फूल रहा है, उसकी उन दिनों

उन दिनों हमलोगों की ऑफिस के सर्वोच्च अधिकारी थे दिल्ली के इन्सपेक्टर जेनरल ऑफ पुलिस, सी० बी० आई०, मिस्टर कुलदीप अरोड़ा । वे पहले हमलोगों की नेपियर टाउन वाली ऑफिस के डेपुटी-इन्सपेक्टर जेनरल थे ।

और मैं ?

मैं उस समय था महज एक मामूली सेक्शन ऑफिसर । मेरी आंख खराब हो जाने के कारण मैं डेप्युटेशन पर रेलवे से उस दफ्तर में चला गया था । और मेरा हेड क्वार्टर था बिलासपुर में । यानी जबलपुर से अढ़ाई सौ मील दूर बिलासपुर में मेरा हेड क्वार्टर था ।

इसीलिए जब मैं अपने काम के सिलसिले में जबलपुर के रेस्ट-हाउस में ठहरा हुआ था, उसी समय अपने दोस्त नरेश की चिट्ठी पाकर पहले-पहल इस घटना के बारे में जान सका था । चिट्ठी पढ़कर मैं हैरान रह गया । किसी विवाहोत्सव में असल दूल्हे को उठा कर रायफलधारी पुलिस कान्स्टेबलों की सहायता से किसी दूसरे दूल्हे के साथ किसी लड़की की शादी करवा देने की यह घटना जैसी विचित्र थी, वैसी ही थी नई भी ।

मैंने सोचा—"हाय रे बेचारा शरदिन्दु !"

और शरदिन्दु से ज्यादा उसकी विधवा मां के बारे में सोचकर मैं चिन्तित हो उठा । बेचारी ने अपनी जिन्दगी में कभी भी अपने पति से किसी तरह का भी सुख नहीं पाया और आखिरकार लड़के की तरफ से भी उसे घोर अशान्ति ही मिली । मैं शरदिन्दु के बजाय उसकी मां के बारे में ही सोच कर ज्यादा विचलित हुआ ।

मैं शरदिन्दु की शादी में शामिल नहीं हो सका था, क्योंकि उस समय मैं अपनी नौकरी के सिलसिले में कलकत्ते से काफी दूर था । नौकरी जरूर करता था, लेकिन भीतर-ही-भीतर लेखक बनने की इच्छा अंकुरित हो रही थी । शरदिन्दु की शादी को लेकर जो विचित्र कांड घटित हुआ, वह मेरे लिए अत्यन्त विस्मयकारी था । मैंने सोचा कि इसे लेकर क्यों न एक कहानी लिखी जाये··· ।

जबलपुर से अपने हेड क्वार्टर बिलासपुर में आकर जब मैंने यही घटना अपनी पत्नी को सुनाई, तो वह भी हैरान रह गई । कुछ देर तक उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला । उसके बाद उसने सिर्फ यही कहा—*"यह क्या हुआ ?"*

सचमुच यह घटना हैरान कर डालने वाली थी ही ।

उसके बाद कई साल बीतने पर जब मैं कलकत्ता लौटा, तब दोस्तों के साथ भेंट-मुलाकात हुई । उनके मुंह से जो कुछ सुना, उसे सुनकर मैं और भी ताज्जुब में पड़ गया । यहां भी रिश्वत ! विवाहोत्सव में भी आखिर रिश्वतखोरी आ पहुंची !!

पूरी कहानी सुनाने के लिए शुरू से ही किस्सा बयान करना होगा। सो वही करता हूं।

कलकत्ता के श्यामबाजार अंचल में जो लोग रहते हैं, उन्होंने सेण्ट्रल एवेन्यू और विडन स्ट्रीट की क्रासिंग के नजदीक एक गली के किनारे एक पुरानी डिजाइन का तिमंजिला मकान जरूर देखा होगा। वह मकान सिंह खानदान वालों का मकान है। अत्यन्त रईस खानदान के रूप में सिंह खानदान चिह्नित है। किसी जमाने में कृष्णनगर के महाराजा के दीवान थे गंगागोविन्द सिंह। वे बहुत ही मशहूर रईस थे। उन्हीं दीवान गंगागोविन्द सिंह के वंश की किसी शाखा से ही इस वंश की उत्पत्ति हुई थी। एक जमाने में उनका खासा दबदबा था और थी शान-शौकत। उस समय भी कलकत्ता के साथ-साथ लन्दन में भी इस खानदान की जूट के कारोबार में मोनोपॉली थी।

पूरे घर में जितने कमरे थे, उनकी तुलना में घर में रहने वाले लोगों की संख्या कम थी। लेकिन नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते और दूर के रिश्तेदारों की संख्या कुल मिलाकर काफी थी। पूरे घर की जिम्मेवारी थी इसी वृद्धा मां जी के ऊपर। मां जी यानी इस घर के स्वर्गवासी गृहस्वामी की विधवा पत्नी। उनका लड़का स्वर्गवासी हो चुका था और लड़के की बहू भी। खानदान का चिराग अगर कोई बचा था तो उस वृद्धा का एक पोता ही। वही पोता अब सयाना हो चुका था। वही था वंश का एकमात्र कुल-दीपक। भविष्य में इस पोते की एक दिन शादी होगी और शादी के बाद ही घर का कोना-कोना बच्चों की किलकारियों से मुखरित हो उठेगा। इसी उम्मीद में वृद्धा मां जी अभी तक जिन्दा थी।

वृद्धा मां जी का वही पोता विश्वपति सिंह एक दिन अपने कारोबार के सिलसिले में लन्दन गया था। इधर वृद्धा दादी अपने पोते के लौटने की घड़ियां गिन रही थी। आखिर एक दिन पोता लन्दन से लौटा जरूर, लेकिन साथ में अपनी मेम साहब बहू को लेकर।

बहू के आने के कुछ महीनों के भीतर ही उसी सिंह हवेली के सामने एक दिन एक भयावह दुर्घटना घट गई।

ऐसी दुर्घटना, जिसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। संभवतः उस समय तक भली भांति पौ भी नहीं फटी थी। सारे इलाके में अंधेरे का साम्राज्य छाया हुआ था। पहले-पहल किसने उसे देखा था, पुलिस इसका भी पता नहीं लगा पाई थी।

सिंह हवेली के ठीक सामने ही एक बहू की लाश पड़ी हुई थी। कब वह लाश रास्ते पर फेंकी गई किसने लाश फेंकी, इसके बारे में किसी को भी कुछ पता न था। लेकिन एक बात के बारे में सभी सहमत थे कि वह लाश और किसी की नहीं, सिंह-परिवार की बहू की ही थी। सिंह-परिवार की बहू, यानी विश्वपति

सिंह की विलाती पत्नी ।

पुलिस ने आकर पूछा—"इस महिला का नाम क्या है ?"

कोई भी नाम बता नहीं पाया। सभी उसे सिंह-परिवार की बहू के रूप में जानते थे। बहुतेरे लोगों ने सिंह-परिवार के बेटे और बहू को कार में बैठ कर जाते देखा था। और फिर उनकी शादी कलकत्ता में तो हुई नहीं थी।

पुलिस ने पूछा—"कहां हुई थी शादी ?"

"विलायत में। सिंह-परिवार का लड़का कारोबार के सिलसिले में विलायत गया था और लौटने वक्त उस लड़की को ब्याह लाया था। सुना है कि बहू दोगली है···।"

"बहू दोगली है···।" इसका मतलब ?

"मतलब यही कि बहू के पिता बंगाली हैं और मां मेम साहब···।"

पुलिस ने सिर्फ मुहल्ले के लोगों की ही बात नहीं सुनी, बल्कि घर के नौकर-चाकर, रसोइए, मैनेजर और अन्यान्य रिश्तेदारों के बयान भी दर्ज कर लिये। आसानी से कोई भी मुंह खोलना नहीं चाहता था। कुछ भी कहने में सभी लोग डर रहे थे। हो सकता है कि मुंह से कोई ऐसी-वैसी बात निकल जाये। ऐसा होने से एक तरफ पुलिस से सजा मिलने का डर था तो दूसरी तरफ नौकरी से हाथ धो बैठने की आशंका भी थी। मां जी ही घर की मालकिन थीं। ऐसा कुछ भी कहना ठीक नहीं, जिससे मां जी का कोप-भाजन बनना पड़े।

आखिरकार मां जी और विश्वपति को गिरफ्तार करके पुलिस थाने में ले गई। उसके बाद जब यह खबर अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर सुर्खियों के साथ छापी गई, तो फिर देखने-ही-देखने हर जगह लोग इसी हत्या-काण्ड की चर्चा करने लगे। सबों की जुबान पर इसी हत्या-काण्ड की बात थी। और फिर उस जमाने में आज की तरह सारे देश में बहुओं की हत्या करने की सरगर्मी नहीं थी। इसीलिए यह समाचार लोगों के लिए और भी ज्यादा दिलचस्प था। और फिर बड़े लोगों के घर का कच्चा चिट्ठा गरीब लोगों के किस्सों की तुलना में अधिक रोचक होता है। इसीलिए जिनके पास समय ज्यादा था और काम की व्यस्तता कम थी, उनके मनोविनोद के लिए एक मजेदार मसाला जुट गया।

निचली अदालत में लगातार मुकदमे की सुनवाई चलने लगी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मजा और भी बढ़ता गया। बेकार के स्त्री-पुरुषों का जमघट कोर्ट में लगने लगा। कुछ दिनों के बाद ही मां जी को रिहाई मिल गई। उनके विरुद्ध कोई ऐसा ठोस सबूत नहीं पाया गया। लेकिन विश्वपति सिंह को नहीं छोड़ा गया। उसे जमानत तक नहीं मिली। उसी के विरुद्ध गंभीरतम अभियोग थे। गवाहों की जिरह के समय यह बात साफ हो गई कि विश्वपति और बहू रानी के बीच प्रायः रोज ही झगड़ा हुआ करता था।

सरकारी पक्ष के स्टैंण्डिग काउन्सल मिस्टर ए. के. वासु ने जब जिरह शुरू की तब सभी गवाहों ने विश्वपति के विरुद्ध ही अपने विचार व्यक्त किये।

मिस्टर ए. के. वासु ने घर के रसोइए से पूछा—"क्या तुमने कभी भी मुजरिम को नशे की हालत में देखा है ?"

रसोइए ने जवाब दिया—"हां हुजूर, कभी-कभी उन्हें नशे की हालत में देखा है।"

"कभी-कभी या हर रोज ? ठीक-ठीक सोच कर बताओ।"

"हां, हर रोज देखा है।"

"मेरी तरफ क्या देख रहे हो ? हुजूर की तरफ देखते हुए बोलो।"

रसोइया, नौकर-चाकर और मैनेजर—सभी स्टैंण्डिग काउन्सल की जिरह से घबरा गये। घबरा कर वे सच्ची बातें उगल गये। फैक्टरी से विश्वपति सिंह नशे में धुत होकर घर लौटते थे। और फिर काफी रात बीतने तक मियां-बीवी में झगड़ा हुआ करता था। उसके बाद बहू रानी अपनी गाड़ी लेकर घर से बाहर निकल जाया करती थी। लगभग सभी गवाहों ने ऐसा ही कहा।

मिस्टर ए. के. वासु ने उस ड्राइवर से भी जिरह की, जो बहूरानी को लेकर बाहर जाया करता था।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"महेश।"

"तुम सिंह-हवेली में कब से काम कर रहे हो ?"

"आठ महीनों से। उसी दिन से, जिस दिन साहब विलायत से शादी करके लौटे थे।"

"क्या तुम्हें याद है कि बहू रानी को लेकर तुम कहां-कहां जाया करते थे ?"

"जी हां···। कभी होटल में तो कभी-कभी न्यू मार्केट में।"

"होटल में जाकर बहू रानी क्या करती थी ?"

"हुजूर, यह मैं कैसे बता सकता हूं ? मैं तो गाड़ी में बैठा रहता था।"

"लौटते वक्त क्या बहू रानी के मुंह से किसी तरह की बू निकलती थी ?"

"नहीं हुजूर।"

"बू नहीं निकलती थी ? क्या तुम ठीक कह रहे हो ? जो कुछ कहोगे, ठीक सोच-समझ कर कहोगे। झूठ बोलने पर तुम्हें कड़ी सजा भी मिल सकती है। ठीक-ठीक बताओ, बहू रानी के मुंह से बू निकलती थी या नहीं ?"

"हां हुजूर, निकलती थी।"

"किस चीज की बू ? शराब की ?"

"यह मैं नहीं जानता हुजूर।"

मिस्टर ए. के. वासु ने फिर धमकी देते हुए कहा—"मेरी तरफ क्या देख रहे

हो ? मैं कौन होता हू ? हुजूर की तरफ देखते हुए जवाब दो । क्या तुम शराब की बू नही पहचानते ? क्या तुमने कभी शराब नही पी ?"

महेश ने घबरा कर जवाब दिया—"हां हुजूर, पी है।"

"तो फिर ? इतनी देर तक मसखरी कर रहे थे क्या ? ठीक-ठीक बताओ, बहू रानी के मुह मे शराब की बू निकलती थी या नही ?"

"हां हुजूर, निकलती थी।"

"और तुम्हारे साहब ?"

महेश ने चुप्पी साध ली। उसके मुह से कोई भी जवाब नही निकला।

"क्या तुम्हारे साहब भी शराब पीते थे ? ठीक से मुजरिम की तरफ देखो। अपने साहब को ठीक-ठीक पहचान तो पा रहे हो ?"

"हां, वे भी पीते थे !"

"क्या साहब और बहू रानी के बीच झगड़ा होता था ? तुम जब दोनों को कार मे बिठाकर कार चलाते थे, तब क्या दोनो में झगड़ा होता था ?"

महेश ने कहा—"हा, होता था।"

मिस्टर ए. के. बासु ने कहा—"योर ऑनर, मैं महेश से और जिरह करना नही चाहता। अब मैं बहू रानी की खास नौकरानी मालती को बुलाता हू। साक्षी मालती बाला दासी···।"

मालती ने सफेद रंग की साड़ी पहन रखी थी। माथे का घूघट ठीक कर वह कांपती-कांपती कठघरे मे आ खड़ी हुई। 'सच कहूंगी, सच के सिवाय कुछ भी नही कहूंगी' आदि शब्द उसने तोते की तरह दुहरा दिये। उसके बाद जिरह शुरू हुई। जिरह के दौरान वह घबरा-सी गई।

"साहब जब बहू रानी का गला दबा रहे थे, उस समय तुम क्या कर रही थी ?"

मालती चुप रह गई। वह क्या जवाब दे, यह उसकी समझ मे ही नही आया। अपनी जिन्दगी में उसने कभी भी अदालत का मुह नही देखा था।

"बोलो, बोलो। बात को दबा देने की कोशिश मत करो। झूठ बोलने पर हुजूर तुम्हें कड़ी सजा देंगे। तुमने जो कुछ भी देखा है, उसे बेहिचक कह डालो। तुमने तो सब कुछ अपनी आखो से देखा था।"

"हा, हुजूर।"

"तुम तो बहू रानी की खास नौकरानी थी। क्यों ठीक है न ? साहब के साथ जब बहू रानी का झगड़ा हो रहा था, तब तुमने उन्हे रोका क्यों नही ? क्या तुम्हे डर लग रहा था ?"

"हां, हुजूर।"

"गला दबाते वक्त बहूरानी चिल्लायी थी तो ?"

"हां, हुजूर।"

"उसके बाद जब बहू रानी ने हिलना-डुलना भी बन्द कर दिया तो साहब ने उसे दोनों हाथों से उठाकर बाहर रास्ते पर फेंक दिया, क्यों यही न ?"

"हां, हुजूर…।"

"योर ऑनर…।"

मिस्टर ए. के. बासु ने मालती बाला दासी को और कुछ भी कह सकने का मौका तक नहीं दिया।

ये सब बातें थीं लोअर कोर्ट की। लोअर कोर्ट के जज साहब ने गवाहों के बयानों और प्राप्त सबूतों के आधार पर मुजरिम विश्वपति सिंह को जान-बूझकर और ठंडे दिमाग से अपनी स्त्री की हत्या कर उसकी लाश को रास्ते में फेंक देने के अभियोग में भारतीय दण्ड-विधान की धारा 302 के अनुसार फांसी की सजा सुना दी।

नियम के मुताबिक लोअर कोर्ट के फांसी के हुक्म की पुष्टि हाई कोर्ट द्वारा करानी पड़ती है। अंग्रेजों के समय से ही यह नियम अभी तक चला आ रहा है।

उसी सिलसिले में मामला हाई कोर्ट में आया। जज साहब हाजिर थे। अदालत पहले की तरह ही खचाखच भरी हुई थी। घर की बहू का गला घोंट कर उसे सड़क पर फेंक दिया गया था। लोगों के लिए भला इससे ज्यादा मजेदार खबर और क्या हो सकती थी ? और फिर कोर्ट में उस हत्यारे पति का चेहरा भी देखा जा सकता था। साथ ही इस मजेदार तमाशे को देखने के लिए कोई टिकट लेने की भी जरूरत नहीं थी। लोगों को इसका आकर्षण भला कम क्यों होता ?

यहां भी एक पक्ष के स्टैंण्डिंग काउन्सल थे मिस्टर ए. के. बासु और मुजरिम की तरफ थे मशहूर बैरिस्टर मिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त। हाई कोर्ट के स्वनाम-धन्य बैरिस्टर…।

दोनों पक्ष के बैरिस्टरों की बहस के बाद सबों ने यही समझा कि मुजरिम की फांसी की सजा कायम रहेगी। दूसरे दिन जज साहब अपना फैसला सुनाने वाले थे। कोर्ट बन्द होने वाली था। अचानक बैरिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त ने जज साहब के पास एक अर्जी पेश की।

"मी लार्ड, मुजरिम की तरफ से मुझे हुजूर की सेवा में एक अर्जी पेश करनी है।"

"अर्जी ? कैसी अर्जी ?"

"मुजरिम को छह घंटों के लिए पुलिस के पहरे में पैरोल पर छुट्टी देनी होगी।"

सिर्फ कोर्ट के श्रोता-गण और साधारण दर्शक-वृन्द ही नहीं: बेंच क्लर्क, अर्दली, चपरासी और स्वयं जज साहब भी बैरिस्टर साहब की बात सुनकर हैरान रह गये।

जज साहब ने कहा—"क्या है अर्जी ?"

"हुजूर, हमारा मुवक्किल शादी करने के लिए जायेगा।"

"शादी ?"

साथ ही साथ शादी करने के लिए छह घंटों की छुट्टी मंजूर हो गई। आठ रायफल-धारी पुलिस कान्स्टेबल पहरा देते हुए मुजरिम को कन्या के घर तक ले जायेंगे। उसके बाद शादी हो जाने पर मुजरिम को फिर जेल में बन्द कर दिया जायेगा। 'बिन बादल बरसात' वाली कहावत आप सबों ने जरूर सुनी होगी। यहां यह कहावत सौ फीसदी चरितार्थ हो रही थी। सभी घटना-क्रम की इस आकस्मिकता को देखकर पल-दो पल के लिए मानो गूंगे हो गये।

जज साहब हुक्म सुनाकर अपने चेम्बर में चले गये। स्टैण्डिंग काउन्सल ए. के. बासु ने नीरदरंजन दासगुप्त को कॉरिडोर में आ पकड़ा। उन्होंने पूछा—"यह कैसी दिल्लगी की है आपने मिस्टर दासगुप्त ?"

मिस्टर दासगुप्त बार-एसोसियेशन की लाइब्रेरी की तरफ जाते-जाते बोले—"मिस्टर बासु, हैमलेट ने होरेशियो से जो कुछ कहा था, वह आपको याद नहीं है क्या ?

There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in philosophy

[सुनो होरेशियो, इस पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिसकी दर्शन-शास्त्र ने स्वप्न में भी कल्पना तक नहीं की होगी।]"

"लेकिन ठीक-ठीक बताइए, माजरा है क्या ? फांसी की सजा पाये हुए मुजरिम से भला कौन लड़की शादी करने के लिए तैयार होगी ?"

बैरिस्टर दासगुप्त ने कहा—"जरूर तैयार होगी, मिस्टर बासु, जरूर···। इस पृथ्वी पर सभी कुछ संभव है मिस्टर बासु! जिस समय लोअर कोर्ट में यह मुकदमा चल रहा था, पूरे कलकत्ते में इस मामले की धूम मची हुई थी, उस समय मेरे मुवक्किल की दादी मिसेज सिंह पूरे हिन्दुस्तान में घूम रही थीं—एक अच्छे ऐस्ट्रोलॉजर की तलाश में···।"

मिस्टर बासु हैरान रह गये।

"ऐस्ट्रोलॉजर ! यानी ज्योतिषी ? व्हाट डू यू मीन ? आप कहना क्या चाहते हैं ?"

"हां मिस्टर बासु, हां। ज्योतिषी, जिसे आप लोग धोखेबाज और लफ्फाज़-मास्टर कहते हैं। वही···। इतने दिनों में मिसेज सिंह ज्योतिषियों के [illegible]

लाख रुपये खर्च कर चुकी हैं। और भी कितने रुपये खर्च हो जायेंगे, इसका कोई हिसाब नहीं। जितने भी रुपये खर्च हों, होने दीजिए। एक ऐसा ज्योतिषी चाहिए जो किसी एक ऐसी लड़की की कुण्डली बता सके, जिसकी किस्मत में वैधव्य का दुःख नहीं लिखा हुआ है।"

मिस्टर बासु बैरिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त की दूरदर्शिता देखकर हैरान रह गये।

हां, बात सही ही थी। विश्वपति सिंह सिंह-वंश के एकमात्र उत्तराधिकारी और एकमात्र कुल-दीपक थे। एक समय के कृष्णनगर के महाराजा के दीवान गंगागोविन्द सिंह की एक शाखा के वंशधर इसी सेण्ट्रल एवेन्यू और विडसे स्ट्रीट के मोड़ की गली के भीतर वाले मकान के एकमात्र मालिक थे। उसे ही फांसी हो गई, तो फिर बचेगा क्या? उसकी जिन्दगी बड़ी है या रुपये? यह सलाह दी थी हाई कोर्ट के मशहूर बैरिस्टर, क्रिमिनल लॉ के विशेषज्ञ, मिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त ने। जब उन्होंने देखा कि मृत्यु-दण्ड किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता तब उन्होंने एक दिन मिसेज सिंह को एक परामर्श दिया—

उन्होंने पूछा—"मां जी, क्या आप ज्योतिष-शास्त्र में विश्वास करती हैं?"

मां जी ने कहा—"क्यों? आप ऐसी बात क्यों पूछ रहे हैं?"

"आपके एकमात्र वंशधर को अब दुनिया की कोई भी ताकत बचा नहीं सकती। विश्वपति को फांसी होकर रहेगी।"

"सो अगर उसे फांसी होकर ही रहेगी तो भला मैंने आपको यह ब्रीफ दिया क्यों है? मैंने सुना है कि आप क्रिमिनल लॉ के कलकत्ता हाई कोर्ट के सबसे बढ़िया बैरिस्टर हैं।"

"सबसे बढ़िया बैरिस्टर हूं कि नहीं, इस बात को छोड़ दीजिए। मैं भगवान तो नहीं हूं। और जिस तरह के सबूत और साक्ष्य हैं, उससे तो यह प्रमाणित हो चुका है कि आपके पोते ने अपने हाथों से अपनी पत्नी को उसका गला घोंट कर मार डाला था और उसकी लाश सड़क पर फेंक दी थी।"

मां जी ने कहा—"सो हमारी बहू जैसी थी, उसकी गर्दन मेरे पोते ने छुरी से रेत-रेत कर काट नहीं डाली, वही काफी है। मुन्ना दूध पिला-पिलाकर घर में एक नागिन को पाल रहा था।"

"ये सब बातें आपने मुझसे कह दीं सो कह दीं, लेकिन और किसी के सामने ये बातें भूल कर भी मत कहिएगा। वैसा करना हमारे ही हित के खिलाफ होगा। अब मैं जो कुछ कहता हूं, वह कर सकें तो कीजिए।"

सो उसके बाद ही मां जी का भारत-भ्रमण शुरू हो गया। आज पंजाब के जालन्धर में हैं तो कल गुजरांवाला में। उसके बाद वहां से सीधे बनारस। और फिर नवद्वीप तो कलकत्ते के नजदीक ही है। उससे भी ज्यादा नजदीक है यहां का

भाटपाड़ा। आखिर ज्योतिषी कहां नहीं हैं ? किसी ज्योतिषी की दक्षिणा पांच सौ रुपये है तो किसी ज्योतिषी की दक्षिणा है हरेक सवाल के पीछे हजार रुपये। गरज का मोल होता है। इसीलिए पहले ही कह चुका हूं कि पोते की जिन्दगी बड़ी है या रुपये ? रुपये जहन्नुम में जायें, फैक्टरी के कर्मचारी भूखे मरें तो मरें। सबसे ज्यादा जरूरी है पोते की जिन्दगी। और फिर क्या ज्योतिषी भी एक है ? हजारों-हजारों, लाखों-लाखों ज्योतिषी सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं। और फिर उत्तर भारत के ज्योतिषियों का मत कुछ होता है तो दक्षिण भारत के ज्योतिषियों का मत कुछ और ! किसी एक ज्योतिषी के साथ दूसरे का मत नहीं मिलता। एक तरफ थी वराह मिहिर की 'बृहत् संहिता' और था 'बृहत् जातक' तथा वराह मिहिर के लड़के पृथुयश का ग्रंथ 'होरासार' और दूसरी तरफ था गुणाकर द्वारा लिखित 'होरा-मकरंद'। आखिर किस पर विश्वास किया जाये ? महादेव द्वारा लिखित 'जातक-तत्व' और वैद्यनाथ रचित 'जातक पारिजात' एक तरफ थे तो दूसरी तरफ थे उससे विपरीत विचार वाले ग्रंथ भी।

सिर्फ रुपये खर्च होना ही बड़ी बात नहीं। वक्त भी साथ-साथ बर्बाद हो रहा था। उधर कलकत्ते के कोर्ट में मुकदमा चल रहा था और इधर ज्योतिषियों के द्वारा मा जी हजार-हजार अविवाहिता कन्याओं की जन्मकुंडलियों की जांच करवा रही थीं। किस लड़की की किस्मत में वैधव्य का योग नहीं, इस पर विचार करने में बड़े-बड़े ज्योतिषियों का दिमाग भी चकरा जा रहा था। और फिर सिर्फ एक ज्योतिषी की राय मिल जाने पर ही काम नहीं चलेगा। एक ज्योतिषी जो कुछ कहता था, दूसरा ज्योतिषी कहता था उसका उल्टा ही। इसलिए यह जरूरी था कि उनके बीच समन्वय भी हो।

एक-एक बार ज्योतिषियों की खोज में मा जी कलकत्ते से बाहर चली जातीं और फिर कुछ दिनों के लिए कलकत्ता लौट आतीं। बैरिस्टर दासगुप्त पूछते—"क्या हुआ मा जी ? क्या कोई ज्योतिषी मिला ?"

मा जी उस समय बेहद थकी-हारी होतीं। कहतीं—"नहीं, अभी भी कोई ठीक-ठीक कुछ कह नहीं पा रहा है, कुण्डली मिल रही है, लेकिन लड़की नहीं मिल रही। देखा जाये, क्या होता है ! अभी भी मैंने कोशिश छोड़ी नहीं है।"

"नहीं, कोशिश छोड़िएगा भी नहीं। लेकिन हाथ में अब ज्यादा वक्त नहीं है। और कुछ दिनों के बीच ही में यह केस हाई कोर्ट में चला जायेगा। इसी बीच आपको जो कुछ भी हो, करना ही होगा। नहीं तो फिर सर्वनाश ही हो जायेगा।"

सो आखिरकार एक लड़की की जन्मकुंडली मिली। लड़की की कुंडली में सप्तम-पति खूब ही अच्छी तरह तुंगी था और चन्द्रमा भी सप्तम-पति की तरफ दृष्टिपात कर रहा था।

भाटपाड़ा के ही एक ज्योतिषी ने कहा था—"इस कन्या के मा-बा

जिन्दा नहीं हैं। लड़की अपने चाचा-चाची के लिए पहाड़-सा बोझ बनी हुई है। एक साल पहले इस लड़की के चाचाजी ही मेरे पास यह जन्मकुंडली लेकर आये थे। लड़की की शादी हो चुकी है या वह अब तक अविवाहित है, यह मैं नहीं जानता। फिर भी उनका पता-ठिकाना मेरे पास लिखा हुआ है। आप पता लिख लीजिए। लड़की का नाम है देवयानी सरकार और उसके चाचाजी का नाम है यतीन्द्रनाथ सरकार। पता है—3/1 दर्जीपाड़ा लेन।"

और अब एक मिनट का भी वक्त बर्बाद नहीं करना है। दूसरे दिन ही मामला हाई कोर्ट में चला जायेगा। मां जी ने कालिदास को 3/1 दर्जीपाड़ा लेन के पते पर झट-पट दौड़ाया। कालिदास ने वहां से लौट कर खबर दी—"मां जी, कल ही उस लड़की की शादी होने वाली है। सब-कुछ ठीक हो गया है। निमन्त्रण-पत्र भी छपवा कर भेजे जा चुके हैं।"

मां जी ने कहा—"जरा पुरोहित जी को बुलाओ तो।"

पुरोहित जी के आते ही मां जी ने पूछा—"पंडित जी, पंचांग देखकर ज़रा बताइए तो कि कल शादी की लग्न कितने से कितने बजे तक है?"

पंचांग देखकर पुरोहित जी ने कहा—"संध्या साढ़े छह बजे से रात के ग्यारह बजे यक लग्न है। क्यों, क्या बात है मां जी? किसकी शादी है?"

पुरोहित जी की बात का जवाब दिये बगैर ही मां जी तुरन्त गाड़ी में बैठकर घर से बाहर चली गयीं।

बैरिस्टर दासगुप्त के घर में जाकर उन्होंने मिस्टर दासगुप्त से एकांत में कहा—"लड़की मिल गयी है। उस लड़की के भाग्य में वैधव्य-योग नहीं है। भाटपाड़ा के एक ज्योतिषी से हो खबर मिली है। लड़की वाले दर्जीपाड़ा लेन में रहते हैं। सारी खोज-खबर ले चुकी हूं। लेकिन उस लड़की की शादी कल ही गोधूलि लग्न में होने वाली है। निमन्त्रण-पत्र भी भेजे जा चुके हैं।"

मिस्टर दासगुप्त ने कहा—"उस शादी को किसी भी तरह हो, रुकवाइए। कल दोपहर में हाई कोर्ट में हम लोगों के केस की सुनवाई होगी। मैं जज साहब से दरख्वास्त करूंगा कि मेरे मुवक्किल को छह घंटों के लिए पैरोल पर छोड़ दिया जाये।"

मां जी ने पूछा—"क्या जज साहब पैरोल पर छुट्टी देंगे?"

बैरिस्टर दासगुप्त ने कहा—"छुट्टी क्यों नहीं देंगे? इसकी प्रिसिडेंट है, नजीर है। आठ पुलिस कांस्टेबल रायफल लेकर मुजरिम को घेर कर रखेंगे। इसमें भला जज साहब को क्या आपत्ति हो सकती है? बस एक ही बात है। सुहाग रात भी नहीं होगी और आपको किसी तरह का भोज-वोज भी देने का मौका नहीं मिलेगा।"

मां जी ने कहा—"सो न हो तो न सही। किसी तरह शादी हो, तो जान

बचे।" मैं तो पहले ही कह चुका हू कि लेखक का जीवन बडी मुसीबत का जीवन होता है। यह भी कह चुका हू कि जिसके जीवन का ग्राफ शुरू मे ही इतनी ऊंचाई तक पहुंच गया, उसकी शेष परिणति क्या होगी···! इसके बाद क्या हुआ, यह जानने के लिए बेहद उतावला हो उठा।

इसीलिए मैंने नरेश से पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

कितने ही सालो के बाद मैं कलकत्ता आया था। उन दिनो मैं एक ऐसी नौकरी कर रहा था, जिसकी वजह से मुझे कलकत्ता आने का मौका कम मिला करता था। कलकत्ते के बारे मे मुझे जो भी खबरें मिलती, वे अपने मित्रों के मार्फत ही मिलती। लेकिन मेरे मन मे सबसे ज्यादा कौतूहल शरदिन्दु की शादी के बारे मे ही था। शरदिन्दु के विवाह से सबधित दुर्घटना के बारे मे मुझे नरेश के मुंह से ही सारा विवरण विस्तार-पूर्वक सुनने को मिला।

जिस दिन हाई कोर्ट खुला, उस दिन पहले की तरह ही एक तरफ स्टैंडिंग काउन्सल मिस्टर ए. के. बासु और दूसरी तरफ बैरिस्टर नीरदरजन दासगुप्त डटे हुए थे। और कठघरे मे खडा था कठपुतली की तरह मुजरिम विश्वपति सिंह।

और अगली कतार मे दर्शकों की सीट पर बैठी वह कौन थी ? बदन पर नयी बनारसी साडी थी। गले मे, हाथ मे और कान मे जडाऊ गहने थे। माग मे गहरा लाल सिन्दूर भरा हुआ था। क्या वही फासी की सजा पाये हुए मुजरिम की नई-नवेली दुलहन थी, जिसके साथ ब्याह रचाने के लिए जज साहब ने अभियुक्त को छह घंटो के लिए पैरोल पर छुट्टी दी थी।

सिर्फ जज साहब ही नही, कोर्ट मे मौजूद सारे आदमी कभी मुजरिम की तरफ देख रहे थे तो कभी बनारसी साडी मे लिपटी नई-नवेली दुलहन की तरफ। वही दुलहन, जिसकी शादी शरदिन्दु के साथ होते-होते विश्वपति सिंह के साथ हो गयी थी···।

सबों के मन मे एक ही सवाल था। क्या जज साहब इतने निष्ठुर हो जायेंगे कि मुजरिम को फासी की सजा देकर नई-नवेली दुलहन को विधवा बना देंगे ? क्या स्वय जज साहब एक पति नही हैं ? क्या जज साहब के बीवी-बच्चे और दामाद नही है ? क्या जज होने के कारण उनका हृदय पत्थर का हो गया है ?

नही, सचमुच जज साहब का भी दिल जरूर था। उस दिन उन्होने इसी बात का सबूत दिया। फासी के मुजरिम को ऐसी मामूली सजा की नजीर हाई कोर्ट के लम्बे इतिहास मे और कोई नही थी।···फांसी के बदले आजीवन कारावास की सजा दी गयी।

जज साहब फैसला सुनाने के बाद ही अपने चेम्बर मे चले गये। स्टैंडिंग काउन्सल और बैरिस्टर नीरदरजन दासगुप्त भी बार-लाइब्रेरी मे चले गये। और मा जी अपनी नव-विवाहिता पोते की बहू के साथ अपनी गाड़ी मे जा बैठें

जिन्दा नहीं हैं। लड़की अपने चाचा-चाची के लिए पहाड़-सा वोझ बनी हुई है। एक साल पहले इस लड़की के चाचाजी ही मेरे पास यह जन्मकुंडली लेकर आये थे। लड़की की शादी हो चुकी है या वह अब तक अविवाहित है, यह मैं नहीं जानता। फिर भी उनका पता-ठिकाना मेरे पास लिखा हुआ है। आप पता लिख लीजिए। लड़की का नाम है देवयानी सरकार और उसके चाचाजी का नाम है यतीन्द्रनाथ सरकार। पता है—3/1 दर्जीपाड़ा लेन।"

और अब एक मिनट का भी वक्त वर्बाद नहीं करना है। दूसरे दिन ही मामला हाई कोर्ट में चला जायेगा। मां जी ने कालिदास को 3/1 दर्जीपाड़ा लेन के पते पर झट-पट दौड़ाया। कालिदास ने वहां से लौट कर खबर दी—"मां जी, कल ही उस लड़की की शादी होने वाली है। सब-कुछ ठीक हो गया है। निमन्त्रण-पत्र भी छपवा कर भेजे जा चुके हैं।"

मां जी ने कहा—"जरा पुरोहित जी को बुलाओ तो।"

पुरोहित जी के आते ही मां जी ने पूछा—"पंडित जी, पंचांग देखकर जरा बताइए तो कि कल शादी की लग्न कितने से कितने बजे तक है?"

पंचांग देखकर पुरोहित जी ने कहा—"संध्या साढ़े छह बजे से रात के ग्यारह बजे यक लग्न है। क्यों, क्या बात है मां जी? किसकी शादी है?"

पुरोहित जी की बात का जवाब दिये बगैर ही मां जी तुरन्त गाड़ी में बैठकर घर से बाहर चली गयीं।

बैरिस्टर दासगुप्त के घर में जाकर उन्होंने मिस्टर दासगुप्त से एकांत में कहा—"लड़की मिल गयी है। उस लड़की के भाग्य में वैधव्य-योग नहीं है। भाट-पाड़ा के एक ज्योतिषी से ही खबर मिली है। लड़की वाले दर्जीपाड़ा लेन में रहते हैं। सारी खोज-खबर ले चुकी हूं। लेकिन उस लड़की की शादी कल ही गोधूलि लग्न में होने वाली है। निमन्त्रण-पत्र भी भेजे जा चुके हैं।"

मिस्टर दासगुप्त ने कहा—"उस शादी को किसी भी तरह हो, रुकवाइए। कल दोपहर में हाई कोर्ट में हम लोगों के केस की सुनवाई होगी। मैं जज साहब से दरख्वास्त करूंगा कि मेरे मुवक्किल को छह घंटों के लिए पैरोल पर छोड़ दिया जाये।"

मां जी ने पूछा—"क्या जज साहब पैरोल पर छुट्टी देंगे?"

बैरिस्टर दासगुप्त ने कहा—"छुट्टी क्यों नहीं देंगे? इसकी प्रिसिडेंट है, नजीर है। आठ पुलिस कांस्टेबल रायफल लेकर मुजरिम को घेर कर रखेंगे। इसमें भला जज साहब को क्या आपत्ति हो सकती है? बस एक ही बात है। सुहाग रात भी नहीं होगी और आपको किसी तरह का भोज-वोज भी देने का मौका नहीं मिलेगा।"

मां जी ने कहा—"सो न हो तो न सही। किसी तरह शादी हो, तो जान

बचे।" मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि लेखक का जीवन बड़ी मुसीबत का जीवन होता है। यह भी कह चुका हू कि जिसके जीवन का ग्राफ शुरू में ही इतनी ऊंचाई तक पहुंच गया, उसकी शेष परिणति क्या होगी···! इसके बाद क्या हुआ, यह जानने के लिए बेहद उतावला हो उठा।

इसीलिए मैंने नरेश से पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

कितने ही सालों के बाद मैं कलकत्ता आया था। उन दिनों मैं एक ऐसी नौकरी कर रहा था, जिसकी वजह से मुझे कलकत्ता आने का मौका कम मिला करता था। कलकत्ते के बारे में मुझे जो भी खबरें मिलती, वे अपने मित्रों के मार्फत ही मिलती। लेकिन मेरे मन में सबसे ज्यादा कौतूहल शरदिन्दु की शादी के बारे में ही था। शरदिन्दु के विवाह से संबंधित दुर्घटना के बारे में मुझे नरेश के मुह से ही सारा विवरण विस्तार-पूर्वक सुनने को मिला।

जिस दिन हाई कोर्ट खुला, उस दिन पहले की तरह ही एक तरफ स्टैंडिंग काउन्सल मिस्टर ए. के. बासु और दूसरी तरफ बैरिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त डटे हुए थे। और कठघरे में खड़ा था कठपुतली की तरह मुजरिम विश्वपति सिंह।

और अगली कतार में दर्शकों की सीट पर बैठी वह कौन थी ? बदन पर नयी बनारसी साड़ी थी। गले में, हाथ में और कान में जड़ाऊ गहने थे। मांग में गहरा लाल सिन्दूर भरा हुआ था। क्या वही फांसी की सजा पाये हुए मुजरिम की नई-नवेली दुलहन थी, जिसके साथ ब्याह रचाने के लिए जज साहब ने अभियुक्त को छह घंटों के लिए पैरोल पर छुट्टी दी थी।

सिर्फ जज साहब ही नहीं, कोर्ट में मौजूद सारे आदमी कभी मुजरिम की तरफ देख रहे थे तो कभी बनारसी साड़ी में लिपटी नई-नवेली दुलहन की तरफ। वही दुलहन, जिसकी शादी शरदिन्दु के साथ होते-होते विश्वपति सिंह के साथ हो गयी थी···।

सबों के मन में एक ही सवाल था। क्या जज साहब इतने निष्ठुर हो जायेंगे कि मुजरिम को फांसी की सजा देकर नई-नवेली दुलहन को विधवा बना देंगे ? क्या स्वयं जज साहब एक पति नहीं हैं ? क्या जज साहब के बीवी-बच्चे और दामाद नहीं हैं ? क्या जज होने के कारण उनका हृदय पत्थर का हो गया है ?

नहीं, सचमुच जज साहब का भी दिल जरूर था। उस दिन उन्होंने इसी बात का सबूत दिया। फांसी के मुजरिम को ऐसी मामूली सजा की नजीर हाई कोर्ट के लम्बे इतिहास में और कोई नहीं थी।···फांसी के बदले आजीवन कारावास की सजा दी गयी।

जज साहब फैसला सुनाने के बाद ही अपने चेम्बर में चले गये। स्टैंडिंग काउन्सल और बैरिस्टर नीरदरंजन दासगुप्त भी बार-लाइब्रेरी में चले गये। और मां जी अपनी नव-विवाहिता पोते की बहू के साथ अपनी गाड़ी में जा बैठी।

आजीवन कारावास, यानी चौदह साल का कारा-दण्ड। तब तक नववधू को सुहाग-संध्या के लिए इन्तजार की घड़ियां गिननी होंगी। इस अवधि के बाद ही वह अपने पति से मिल सकेगी। लेकिन विधाता के मन में क्या था, इसका पता न मां जी को था, न विश्वपति सिंह को था और न ही था शरदिन्दु को। संभवतः किसी के लिए यह जान पाना मुमकिन था भी नहीं। क्योंकि इस घटना के कुछेक महीनों के बाद ही अचानक मां जी चल बसीं। साथ ही दीवान गंगा गोविन्द सिंह के सुप्रसिद्ध वंश का एक वंशधर विश्वपति सिंह जेल में अपनी सजा काटने लगा।

और उसकी नई-नवेली दुल्हन ?

एक लेखक के रूप में यह जानने के लिए मैं लालायित हो उठा कि इसके बाद क्या होगा ! ऐसा खानदान, इतने रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद, फैक्टरी, कारोबार और सुन्दरी पत्नी···! इसकी क्या परिणति होगी ? वह कहावत है न, मर्जी खुदा की और खेल नसीब का। लेकिन कैसी खुदा की मर्जी और कैसा नसीब···!

नरेश पूरी घटना विस्तार-पूर्वक सुना रहा था और मैं तन्मय होकर सुन रहा था।

नरेश एक दिन अपनी ऑफिस से घर लौटा ही था कि हठात् दरवाजे पर दस्तक हुई।

नरेश ने दरवाजा खोला। सामने शरदिन्दु को देखते ही वह अवाक् रह गया।

नरेश ने कहा—"शरदिन्दु, तू ?"

शरदिन्दु को देख कर नरेश हैरत में पड़ गया। उसे सहसा विश्वास ही नहीं हुआ कि वह उसका पहले वाला दोस्त शरदिन्दु ही है। शरदिन्दु का रंग पहले की तुलना में काफी साफ हो गया। कहां वह बदसूरत और बदरंग शरदिन्दु और कहां आज का यह सुन्दर, सजीला और सलीकेदार शरदिन्दु ! यह कैसा जादू हो गया था ?

नरेश ने देखा कि घर के सामने रास्ते के किनारे एक नयी गाड़ी खड़ी थी।

नरेश ने पूछा—"तू उसी गाड़ी में आया है ?"

शरदिन्दु ने कहा—'हां।"

"किसकी गाड़ी है यह ?"

शरदिन्दु ने जवाब दिया—"मेरी ही है। मैंने ही यह गाड़ी खरीदी है।"

नरेश की मानो बोलती ही बन्द हो गई। कुछ क्षणों तक उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला।

शरदिन्दु ने कहा—"परसों मेरी शादी है। जरूर आना भाई।"

यह कहने के साथ ही साथ शरदिन्दु ने नरेश के हाथों में विवाह का निमंत्रण-पत्र थमा दिया।

शरदिन्दु ने जाते-जाते फिर कहा—"देखो भाई, शादी में आना जरूर। इस समय चलता हूं, जरा हड़बड़ी में हूं·····।"

विवाह का निमंत्रण हाथ हाथ में लिये-लिये ही नरेश ने देखा कि शरदिन्दु झटपट गाड़ी में जा बैठा और ड्राइवर ने तुरत गाड़ी स्टार्ट कर दी।

पृथ्वी पर इतनी तरह की आश्चर्यजनक घटनाएं घटती हैं, जिनका हिसाब रखना किसी के लिए भी मुमकिन नहीं। जो शरदिन्दु एक दिन एक मामूली-सी नौकरी भी नहीं पा सका था, उसी शरदिन्दु ने आज गाड़ी खरीदी है!

यह आखिर मुमकिन कैसे हुआ?

दूसरे दिन नरेश ने अपने ऑफिस से अपने दोस्तों को फोन किया। उन लोगों ने भी बताया कि शरदिन्दु ने उन्हें शादी में आने के लिए निमंत्रित किया था।

नरेश ने पूछा—"यह कैसे संभव हुआ अमल?"

अमल ने कहा—"मैं भी तो यही सोच रहा हूं। एक दिन जिसकी शादी में ऐसा गोलमाल हुआ था, उसी का अब विवाह हो रहा है! यह कैसे संभव हुआ, समझ में नहीं आता।"

नरेश ने पूछा—"क्या शरदिन्दु के साथ तुम्हारी कुछ बात चीत नहीं हुई?"

अमल ने कहा—"बातचीत भला होती भी कैसे? वह तो तूफान की तरह आया और शादी का कार्ड देकर चला गया। शरदिन्दु से मैं सिर्फ यही पूछ पाया था कि यह गाड़ी किसकी है! उसने जवाब दिया—यह गाड़ी मैंने ही खरीदी है।"

सिर्फ अमल ही नहीं, हमारी मित्र-मंडली के दिलीप, सदीप, मानस, कुणाल और शिबू—सभी इस बात पर हैरान थे।

विवाह-स्थल का पता जानने के लिए जब नरेश ने शादी का कार्ड पढ़ना शुरू किया, तो वह हैरत में पड़ गया। कन्या का नाम देवयानी था। देवयानी·····! यह कौन-सी देवयानी थी? जिस देवयानी की शरदिन्दु के साथ शादी होने को थी, उसकी शादी तो शरदिन्दु के बजाय विश्वपति के साथ हो चुकी थी। विश्वपति सिंह को उम्र कैद की सजा मिलने के बावजूद देवयानी उसकी पत्नी तो थी ही।

खैर, शादी के दिन सभी दोस्त शरदिन्दु के घर पर जा पहुंचे। शरदिन्दु ने नया मकान बनवाया था। सुन्दर-सा मकान! उस मकान को देखकर सभी चकित रह गये। शरदिन्दु मकान कैसे बनवा पाया है? वह गाड़ी कैसे खरीद पाया है? जिसके पास कुछ भी नहीं था, जो कुछेक ट्यूशनों के बल-बूते पर पेट भर पाता था, उसके पास आखिर इतने रुपये आये कहां से? नरेश, अमल, दिलीप, सदीप, मानस, कुणाल और शिबू, सभी के सामने यही समस्या थी कि आखिर यह सब संभव कैसे हुआ? और यह सवाल भी सबों को परेशान कर रहा था कि यह देवयानी कौन है, जिसके साथ शरदिन्दु की शादी होने जा रही थी!

शरदिन्दु के घर में न जाने कहां से बहुत से रिश्तेदार भी [illegible]।

शरदिन्दु बेहद व्यस्त था। उस व्यस्तता के बीच शरदिन्दु के साथ कुछ भी बातचीत नहीं हो सकी।

शरदिन्दु वर का वेश धारण कर कन्या के घर की तरफ रवाना हुआ। शरदिन्दु के दोस्त भी बराती बन कर उसकी गाड़ी के पीछे-पीछे दूसरी कार में चल पड़े।

लड़की वालों के घर में भी भारी धूम-धाम थी। पूरा घर रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगा रहा था। बरातियों का दिल खोलकर स्वागत किया गया। शहनाई का सुर सुनकर सभी अभिभूत हो रहे थे।

दूल्हे शरदिन्दु को एक कमरे में बैठाया गया। उसे घेर कर लड़कियां खड़ी थीं। वहां भी शरदिन्दु के साथ उसके दोस्तों की कोई बातचीत नहीं हो पाई।

उसके बाद कन्यापक्ष के लोग शरदिन्दु को विवाह-मण्डप में ले गये। शरदिन्दु को एक पीढ़े के ऊपर खड़ा रहना पड़ा और एक दूसरे पीढ़े पर दुल्हन को बिठा कर चार आदमियों ने उसे दूल्हे शरदिन्दु के चारों ओर सात बार घुमाया।

सात बार परिक्रमा पूरी होने के बाद ही शुभ दृष्टि का आयोजन हुआ।

पुरोहित जी ने कहा –"अब शुभदृष्टि···। बेटी देखो, वर की तरफ देखो···।"

उसके बाद ?

मैं नरेश के मुंह से सारा किस्सा सुन रहा था। मेरा कौतूहल उत्तरोत्तर और भी बढ़ता जा रहा था।

मैंने नरेश से पूछा—"क्यों भाई, लड़की कैसी थी ?"

नरेश ने कहा—"अरे भाई, वही देवयानी···। वहीं देवयानी सरकार, जिसके साथ एक दिन शरदिन्दु की शादी होते-होते रुक गयी थी। वही देवयानी सरकार, जिसकी शादी शरदिन्दु के बजाय विश्वपति सिंह के साथ हो गई थी।"

मैंने पूछा—"यह कैसे हो सकता है ? एक ही लड़की की शादी दो व्यक्तियों के साथ कैसे हो सकती है ?"

नरेश ने कहा—"हम लोग भी तो इसी बात पर हैरान थे। जिस लड़की की किस्मत में ज्योतिषियों के अनुसार वैधव्य योग नहीं था, उस लड़की की शादी फिर शरदिन्दु के साथ कैसे हुई ? वह भला विधवा ही कैसे हुई और शरदिन्दु के साथ उसकी शादी ही भला क्योंकर हुई ?"

कुछ देर रुककर नरेश ने फिर कहना शुरू किया—"उसके बाद बहुतों से पूछ-ताछ करने पर पता चला कि उसकी किस्मत में वैधव्य योग नहीं था, यह ठीक है। लेकिन विवाह-विच्छेद ? तलाक ? विवाह-विच्छेद का योग उसकी किस्मत में था

या नहीं, इस बात पर ज्योतिषियों ने विचार नहीं किया था। इसका प्रतिफल फिर क्या होता है? जिस जमाने में ज्योतिष-शास्त्र की रचना हुई थी, उस समय तो संभवतः विवाह-विच्छेद का चलन था ही नहीं। उस समय विवाह विच्छेद का कोई कानून भी नहीं बना था। तो भला ज्योतिषी इसके बारे में क्या भविष्यवाणी करते!"

मैं विस्मित होकर नरेश के मुंह से यह हैरतअंगेज किस्सा सुन रहा था।

शुभदृष्टि के बाद ही सम्प्रदान-पर्व प्रारंभ हो गया। उस हालत में नरेश से बातचीत कर पाना बिलकुल नामुमकिन था।

फिर भी नरेश ने अपने पास खड़े एक आदमी से पूछा—"अच्छा साहब, एक बात बताइये तो। यह तो वही लड़की है, जिसके साथ शरदिन्दु की शादी होते-होते रुक गई थी और जिसके साथ शरदिन्दु के बजाय [illegible] हो गई थी। अब फिर इसकी शादी शरदिन्दु के साथ कैसे हो रही है?"

उस आदमी ने कहा—"इसके पहले पति [illegible] साथ पहले ही तलाक हो चुका है।"

नरेश ने पूछा—"और इसका पहला पति [illegible] क्या अब भी [illegible] जेल में है?"

उस आदमी ने कहा—"हां, उस को [illegible] मिली है।"

"किस [illegible] हुआ है?"

उस आदमी ने कहा [illegible]

[illegible]

उसके बाद [illegible]

से अपमानित होकर खाली हाथ लौटना पड़ा है ? और क्या कोई लड़का भला इस तरह पहले वाली लड़की के साथ ही फिर विवाह-बंधन में बंधता है ? सचमुच ही शेक्सपीयर ने झूठ नहीं कहा है कि

'There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy.'

(सुनो होरेशियो, इस पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिसकी तुम्हारे दर्शन-शास्त्र ने स्वप्न में भी कल्पना तक नहीं की होगी।'

यह कहानी मैं कैसे लिखूं ? इस कहानी पर कौन विश्वास करेगा ? क्या इतिहास में कभी किसी ने ऐसी घटना देखी है ?

नरेश मुझे अपने साथ लेकर शरदिन्दु के नये मकान की तरफ बढ़ने लगा।

नरेश ने हठात् दूर के एक मकान की तरफ इशारा करते हुए कहा—"वह देखो, वही तो है शरदिन्दु का नया मकान।"

मैंने उस मकान की तरफ कुछ क्षणों तक एकटक देखा। सचमुच देखने लायक ही मकान था। सचमुच शरदिन्दु ने हम सबों को पराजित कर दिया था।

फिर भी मैंने पूछा—"एक बात समझ में नहीं आ रही है। लड़की के चाचा ने फांसी की सजा पाये हुए अभियुक्त के साथ भला अपनी भतीजी की शादी क्यों की ?"

नरेश ने कहा —"अरे यह तो बिल्कुल सीधी-सी बात है। यह भी तुम समझ नहीं सके ? लड़की के चाचा जी को विश्वपति सिंह की दादी ने उस रोज चार लाख रुपयों की रिश्वत दी थी।"

ताज्जुब की बात है। यहां भी रिश्वत ! मैं तो पहले ही बता चुका हूं कि दूसरे महायुद्ध के बाद मैंने कुछेक वर्षों के लिए घूसखोरों को पकड़ने की नौकरी की थी। बहुत-से घूसखोरों को मैंने पकड़ा भी था। इसके लिए एक बार प्रेसिडेण्ट ऑफ इण्डिया से मैंने पुरस्कार भी पाया था। लेकिन फिर भी इस तरह रिश्वत की लेन-देन की मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। और भला कोई भी इस तरह की रिश्वतखोरी की कल्पना कर सकता है क्या ? और दुनिया में इतने लोगों के होते हुए यह घटना घटी शरदिन्दु के जीवन में ! सच है; मर्जी खुदा की और खेल नसीब का !!

नरेश ने शरदिन्दु के घर के सदर दरवाजे के पास जाकर कॉलिंग-बेल बजाई। कॉलिंग-बेल की आवाज पूरे घर के भीतर गूंज उठी। मुझे ऐसा लगा मानो वह कॉलिंग-बेल की आवाज नहीं थी। वह थी विश्वपति सिंह की आवाज। या फिर वह थी विश्वपति सिंह की चौदहवीं पीढ़ी के प्रसिद्ध पुरुष दीवान गंगागोविन्द सिंह की जेलखाने के भीतर से की गई विकट आर्त्त-ध्वनि ?

इतिहास के पन्ने से

क्या इसे कहानी कहा जा सकता है?

किन्तु मुझे तो कहानी लिखने का ही निर्देश मिला है। फिर भी मैंने जिनके मुंह से यह कहानी सुनी है, वे इसे कहानी मानने को तैयार नहीं। उन्होंने कहा था—यह कहानी नहीं, बल्कि एक सच्ची घटना है। सो सच्ची घटना भी तो कहानी हो सकती है! सारी कहानियां झूठी ही होती हैं, कोई भी कहानीकार कसम खाकर ऐसा नहीं कह सकता। सभी कहानियों में सत्य का अंश होता ही है। चाहे वह सत्य बिन्दु-भर ही क्यों न हो! उसी बिन्दु-भर सत्य को सबों के मन के अनुरूप रूप देकर प्रस्तुत करने का नाम ही तो कहानी है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कह गये हैं—

"कवि, तुम्हारी मनोभूमि राम की जन्मभूमि अयोध्या से भी अधिक सत्य है।"

सो आज से लगभग चार साल पहले एक सरकारी सेमिनार में भाग लेने के लिए मैं दक्षिण भारत के बंगलोर शहर में गया था। सेमिनार तो [illegible] था देश-भ्रमण ही।

उसी देश-भ्रमण के दौरान मेरी मुलाकात एक गाइड से हुई थी। [illegible] पेशेवर गाइड नहीं कह सकते। दरअसल वे थे एक साहित्य-प्रेमी [illegible]। [illegible] साथ परिचय होने पर उन्होंने बताया था—मेरा नाम [illegible] है। [illegible] स्वामी की उम्र कम थी, अभिज्ञता अधिक। अभिज्ञता से ही [illegible] है। उसी प्रज्ञा को पाने के लिए मैं अभिज्ञता-सम्पन्न व्यक्तियों से [illegible] मेलजोल रखा करता हूं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समकालीन [illegible] उन्हें 'बूढ़ा' कहकर उनकी हंसी उड़ाया करते थे और [illegible] कोशिशें किया करते थे। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर को कहना पड़ा—

"जिस देश में लोग कम उम्र ही में मृत्यु को प्राप्त करते हैं, वह देश [illegible] की अभिज्ञता की सम्पद् से वंचित रह जाता है। [illegible] है उसका सारथी। सारथीहीन घोड़ा यदि राष्ट्र के रथ को [illegible] अकल्पनीय विघ्न सामने आ सकते हैं। बीच-बीच में [illegible]

भी मिला है।"

हमारे गाइड गुंडप्पा स्वामी कम उम्र के होने के बावजूद अभिज्ञता के दृष्टि-कोण से प्रवीण थे। उनकी मातृभाषा थी कन्नड और मेरी बंगला। इसलिए जो भी बातचीत हुई थी, अंग्रेजी के माध्यम से ही हुई थी। उन्होंने मुझे बहुत से दर्शनीय स्थान दिखाए और उनका इतिहास भी सुनाया। उनके साथ मैं मैसूर भी गया था। उन्होंने मुझे 'ललिता पैलेस' और 'वृन्दावन गार्डेन्स' आदि सभी दर्शनीय स्थान दिखाये, कुछ भी बाकी नहीं रखा।

मैसूर के सभी दर्शनीय स्थानों को देखकर बंगलोर लौटने के बाद मैंने कहा—"यहां की कुछ चीजें खरीद कर ले जाना चाहता हूं। बताइये तो, क्या खरीदा जाये ? और किस दुकान से ?"

गुंडप्पा स्वामी ने मुझसे कहा—"चलिए, आपको यहां की श्रीधरन की दुकान में ले चलता हूं।"

"श्रीधरन की दुकान ? उनकी किस चीज की दुकान है ?"

गुंडप्पा स्वामी ने कहा—"यहां बंगलोर में जो भी पर्यटक आते हैं, वे श्रीधरन की दुकान से कुछ-न-कुछ खरीद कर जरूर ले जाते हैं। श्रीधरन की दुकान की चीजें सस्ती भी हैं और देखने में खूबसूरत भी। श्रीधरन की दुकान से आपको बहुत-सी आकर्षक चीजें मिलेंगी।"

उसके बाद कुछ रुककर गुंडप्पा स्वामी ने फिर कहा—"एक ताज्जुब की बात सुनेंगे क्या ?"

तब तक गाड़ी स्टार्ट हो चुकी थी।

मैंने कहा—"क्या ?"

गुंडप्पा स्वामी ने कहा—"ताज्जुब की बात यह कि एक दिन यही श्रीधरन रास्ते में भीख मांगता फिरता था। उसके दिन ऐसे भी बीते हैं कि उसे चौबीस घंटों में खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिला; सिर्फ पानी पी-पीकर उसे अपना दिन बिताना पड़ा। और आज कुछेक सालों के भीतर ही वह एकबारगी लखपती बन गया है।"

"ऐसा कैसे संभव हुआ ?"

गुंडप्पा स्वामी ने कहा—"यह एक लम्बी कहानी है। उन दिनों इसी बंगलोर शहर में एक सज्जन रहते थे। शायद आपने उनका नाम सुना होगा, उनका नाम था—वी० पी० मेनन।"

"कौन से वी० पी० मेनन ? क्या वही, जो सरदार वल्लभ भाई पटेल के सेक्रेटरी थे।"

"हां।"

मैंने कहा—"यह क्या ? उनका नाम नहीं सुनूंगा भला ? उनका नाम तो

भारतवर्ष में सभी जानते हैं।"

गुडप्पा स्वामी ने कहा—"हां, वही वी० पी० मेनन अवकाश-प्राप्ति के बाद इसी बंगलोर शहर में रहा करते थे। एक वक्त ऐसा भी था, जबकि उन्हें बेहद तकलीफें उठानी पड़ी थी। खूब ही गरीब आदमी के बेटे थे वे। तेरह वर्ष की उम्र तक उन्होंने स्कूली शिक्षा पायी। लेकिन उसके बाद पैसों की कमी के कारण उनकी पढ़ाई छूट गयी। अपनी जिन्दगी में कितनी ही बार उन्हें भूखे ही सो जाना पड़ा था, इसका कोई हिसाब नहीं।"

मैंने मिस्टर वी० पी० मेनन का नाम ही सुना था, लेकिन उनके जीवन के सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता था। गुडप्पा स्वामी गाड़ी में बैठे-बैठे वही किस्सा सुनाने लगे। बचपन से ही मुझे दूसरी किताबों के साथ-साथ इतिहास और जीवनी पढ़ने का नशा-सा है। ऐसा कोई भी विश्वविख्यात साहित्यिक और कवि नहीं, जिसकी जीवनी मैंने नहीं पढ़ी हो।

किन्तु राजनीतिज्ञों की जीवनी?

मुझे याद है कि मैंने गांव के अप्रसिद्ध और उपेक्षित लोगों की आत्मजीवनी की किताबें भी कॉलिज स्ट्रीट की पुरानी किताबों की दुकानों से खरीद कर पढ़ी हैं और अपार खुशी हासिल की है। प्रसिद्ध लोगों की जीवनी की किताब ही बढ़िया किताब होगी, ऐसी कोई बात नहीं। ऐसे-ऐसे अनजाने आदमियों की जीवनी भी मैंने पढ़ी है, जो प्रसिद्ध लोगों की जीवनी से ज्यादा रुचिकर और शिक्षाप्रद लगी है। मैंने अपने निजी पुस्तकालय में उन किताबों को हिफाजत से रख छोड़ा है।

सो वी० पी० मेनन तो बचपन से ही प्रसिद्ध नहीं थे। वे आगे चलकर प्रसिद्ध हुए हैं। लेकिन बचपन के उस वी० पी० मेनन को भला कितने लोग जानते हैं।

हो, उसकी कभी जिन्दगी में तरक्की भी होगी—इस बात पर भला कौन यकीन करेगा ?'

उस समय उनके परिवार की हालत ऐसी थी कि रुपया कमाये बिना और कोई चारा नहीं था। रुपया बिना परिवार के सभी सदस्यों को भूखों मरना पड़ता।

ऐसे वक्त में उन्हें एक मौका मिला। एक मकान बनाने के लिए इंजीनियर साहब को कुछ मजूरों की जरूरत थी। जी हां, मजूर। मजूर कहने पर जो बोध होता है, बिलकुल वही। दैनिक मजदूरी पर काम करने वाला मजूर। एक दिन भी गैरहाजिर होने पर मजदूरी बन्द।

सो वही सही। रुपये नहीं होने पर जो भी काम सामने मिलता हो, उसे ही करना होगा। भिखारी के लिए पसन्दगी या नापसन्दगी का सवाल ही क्या ? लेकिन कुछ दिनों तक मजूर का काम करने के बाद वह काम भी छिन गया। अब कौन-सा उपाय किया जाये ?

उसके बाद किशोर वी० पी० मेनन को एक कोयले की खदान में काम मिला। लेकिन ज्यादा दिनों तक वह काम भी नहीं रहा। उसके बाद काम मिला एक कारखाने में। बेहद तकलीफदेह काम था। लेकिन मेनन साहब उसमें भी खुश थे। जिस किसी भी तरह हो, चार पैसे कमाने ही होंगे। लेकिन जिससे उसकी किस्मत ही रूठ गयी हो, उसका काम ज्यादा दिनों तक कैसे टिक पाता ? इस तरह वह काम भी छूट गया।

उसके बाद और एक काम मिला। साउथ इण्डियन रेलवे में इंजन के खलासी का…। दौड़ते हुए इंजन के ब्वॉयलर में कोयला झोंकने का काम। ऐसा लगता था मानो भगवान अच्छी तरह से ठोक-बजाकर उनकी परीक्षा ले रहे थे।

उसके बाद और एक काम मिला। शेयर बाजार में रूई की खरीद-बिक्री की दलाली का काम…। असल बात थी पैसे कमाने की। उन दिनों पैसा कमाने के लिए मेनन साहब किसी भी काम को करने के लिए राजी थे।

इसके बाद सिर्फ एक ही चीज बाकी रही। स्कूल-मास्टरी…। जो खुद अधिक दिनों तक स्कूली शिक्षा नहीं पा सका, उसे ही आखिरकार एक स्कूल-मास्टर की नौकरी मिली। उन्हीं दिनों वे खाली समय में टाइप-मशीन पर अपना हाथ आजमाने लगे। शुरू में वे एक हाथ से टाइप करते थे, पर शीघ्र ही वे दोनों हाथों से टाइप करने में निपुण हो गये। उसके बाद ही वे नौकरी के लिए दरख्वास्त भेजने लगे। हर जगह से यही जवाब मिलता—नौकरी के लिए जगह खाली नहीं है।

उद्योगी पुरुष कभी भी हार मानते नहीं। इसीलिए एक दिन वी० पी० मेनन साहब को दिल्ली के सचिवालय में जूनियर क्लर्क की एक नौकरी मिल गयी। बस उसी दिन से उनके भाग्य का सितारा चमक उठा।

मैंने पूछा—"कैसे ?"

गुंडप्पा स्वामी ने कहा—"साहब, यह एक बड़ा ही हैरतअंगेज किस्सा है। आप सहसा इस पर विश्वास भी नहीं करेंगे। कहने को तो हिन्दुस्तान में कितने ही आई० सी० एम० अफसर और कितने ही योग्य और सुशिक्षित अधिकारी थे। लेकिन उनके बजाय मेनन साहब के हाथों ही हमारा देश आजाद हुआ।"

मैंने पूछा—"इसका मतलब ?"

गुडप्पा स्वामी मेनन साहब का किस्सा सुना रहे थे और गाड़ी पूरी रफ्तार से आगे बढ़ी जा रही थी। हम लोगों का उद्देश्य था श्रीधरन की दुकान में जाना। लेकिन यह बात गौण हो चली। मुख्य बात हो गयी वी० पी० मेनन की अमीरी-गरीब कहानी।

गुडप्पा स्वामी ने कहा—"हम लोगों के देश में भी बड़े-बड़े साहबों की कोई कमी नहीं थी। लेकिन जब लार्ड माउन्ट बेटन साहब हिन्दुस्तान के वायसराय होकर आये, उस समय इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री थे क्लिमेंट एटली। उन्होंने बहुत से लोगों के होते हुए भी सिर्फ लार्ड माउन्ट बेटन को चुनकर हिन्दुस्तान में भेजा। उद्देश्य यही था कि जब हिन्दुस्तान को और गुलाम बनाकर रखा नहीं जा सकता, तब एक ऐसे वाइसराय को हिन्दुस्तान भेजा जाना चाहिए जो हिन्दुस्तान को सिर्फ आजादी ही नहीं दे, बल्कि ऐसी व्यवस्था भी करे कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन को सदा-सर्वदा के लिए अपना दोस्त मानता रहे। लार्ड माउन्ट बेटन के सिवाय भला यह रोग किसके बस का था? भला और दूसरे किस व्यक्ति के द्वारा यह कार्य संभव हो सकता था।

ऐट्ली भी वाकिफ थे। सो यह कठिन काम किसके द्वारा कराया जाये ? बहुत सोच-विचार के बाद सबों की जुबान पर एक ही नाम आया। लुइ माउण्ट बेटन का···। जिस आदमी ने जर्मनी और बर्मा की लड़ाई में इतनी होशियारी दिखायी थी, सिर्फ उसी आदमी के द्वारा यह काम मुमकिन था।

उधर जब माउण्ट बेटन लन्दन से उड़कर हिन्दुस्तान में आये तब उन्होंने यह सपने में भी नहीं सोचा था कि यह खल्वाट बूढ़ा इतनी आसानी से काबू में आ जायेगा।

यहां आकर उन्होंने देखा कि कांग्रेस के जितने बड़े-बड़े नेता थे, सबों की नजर उसी बूढ़े की तरफ थी। नेहरू, पटेल—सबों की। उस समय वह खल्वाट बूढ़ा अक्सर सायंकाल की प्रार्थना-सभा में कहा करता था—अगर समूचे देश में आग लग जाये, सारे आदमी जलकर खाक हो जायें, तब भी वे पाकिस्तान बनाने के लिए एक इंच जमीन भी नहीं देंगे, चाहे इसका जो भी नतीजा क्यों न हो···!

लेकिन इधर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया कि कांग्रेस देश के विभाजन के लिए राजी है।

खल्वाट बूढ़ा लेकिन उस समय बेहद विचलित हो उठा। सुबह टहलते-टहलते उसने अपने एक मित्र से कहा—"मैं देख रहा हूं कि सभी मेरी मूर्ति के गले में फूलों की माला पहनाने के लिए उतावले हैं, पर मेरा उपदेश कोई भी सुनना नहीं चाहता। वे मुझे महात्मा कहते हैं। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि वे मुझे एक झाड़ूदार से भी गया-गुज़रा समझते हैं।"

एक तरफ सरदार वल्लभ भाई पटेल देश-विभाजन के लिए सहमत हो गये थे और दूसरी तरफ नेहरू भी समझते थे कि देश-विभाजन के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। एक ओर नेहरू जी के मन में गांधी जी के प्रति अपार श्रद्धा थी, तो दूसरी ओर लार्ड माउण्ट बेटन की मित्रता उन्हें खींच रही थी। गांधी जी नेहरू के दिल को प्रभावित करते थे, तो माउण्ट बेटन नेहरू के दिमाग को करते थे।

एक दिन माउण्ट बेटन साहब को जब यह खबर मिली कि शाम को प्रार्थना-सभा में गांधी जी कांग्रेस के नेताओं के साथ सम्पर्क तोड़ने की घोषणा करने वाले हैं, तो उन्होंने झट-पट गांधी जी को अपने पास बुलवाया। गांधी जी वहां पहुंचे। गांधी जी के चेहरे पर परेशानी की स्पष्ट छाप थी। जिस देश की उन्होंने आजीवन सेवा की और जिसकी आजादी की लड़ाई के लिए उन्होंने सर्वस्व होम कर दिया, वही देश उनकी आंखों के सामने ही दो खंडों में बंटने जा रहा था। कुटिल-कूटनीतिज्ञ लार्ड माउण्ट बेटन ने गांधी जी से कहा था—"देश के सारे अखबार देश-विभाजन की योजना को 'माउण्ट बेटन प्लान' बता रहे हैं। लेकिन दरअसल यह तो

'महात्मा गांधी प्लान' है। सभी राज्यों की विधान-सभाएं अगर अखंडित हिंदुस्तान चाहेंगी तो फिर वही होगा। और यदि वे देश-विभाजन चाहें तो फिर आपको आखिर क्या आपत्ति है? नेहरू और पटेल को भी तो जनता ने चुना है। जब उन्हें देश-विभाजन पर कोई एतराज नहीं, तब फिर आप ही भला एतराज क्यों करेंगे? आप तो कांग्रेस के चवन्निया मेम्बर भी नहीं हैं।"

गांधी जी चुपचाप वापस प्रार्थना-सभा में लौट आये।

एक दिन उनकी नींद नियत समय से आधा घंटे पहले ही टूट गई। पास ही सोई हुई थी मनु गांधी। वे भी जाग उठीं। उन्होंने सुना कि गांधी जी अपने आप से बड़बड़ाते हुए कह रहे थे—आज मैं बिलकुल अकेला हो गया हूँ। सबों ने मेरा साथ छोड़ दिया। पटेल और नेहरू—दोनों ही समझते हैं कि देश को दो हिस्सों में बाँट देने से शान्ति स्थापित हो जायेगी। ताज्जुब की बात है ''।

इधर लुई माउण्ट बेटन बड़े ही चाघ आदमी थे। वे दिल्ली के सिंहासन पर बैठे-बैठे सारी खबरें पा रहे थे। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि उस खरवाट बूढ़े को उन्हीं के दल के लोगों ने त्याग दिया है। वे मन-ही-मन हँस पड़े। स्वार्थ-सिद्धि की एक रहस्यमयी हँसी'''। उसी दिन से वे अपने काम में जुट गये। उन्होंने मन-ही-मन तय कर लिया कि ऐसा सुनहरा मौका वे हाथ से निकलने नहीं देंगे।

कई दिनों से वे अपने सचिवालय से एक काबिल आदमी की खोज में लगे हुए थे। वह आदमी ऐसा होना चाहिए जो सिर्फ विश्वस्त और दक्ष ही नहीं हो, अपितु वह अक्लान्त, परिश्रमी और राजनीति में पैठ रखने वाला भी हो। वैसा आदमी आखिर मिले कैसे? उनके दफ्तर में सेक्रेटरियों की कमी नहीं थी। बहुत-से अंग्रेज और हिन्दुस्तानी आई० सी० एस० अफसर उनके दफ्तर में थे। लेकिन उनमें से कोई भी उन्हें पसन्द नहीं आया। उन्होंने उनमें से किसी को भी अपने काम के लायक नहीं समझा। बहुत सोच-विचार कर उन्होंने एक ऐसे आदमी को ढूंढ निकाला, जो मैट्रिक पास भी नहीं था। जो एक टाइपिस्ट की हैसियत से उस दफ्तर में आया था।

और ताज्जुब की बात यह कि वह आदमी और कोई नहीं था, था बंगलोर का वही वी० पी० मेनन।

लुई माउण्ट बेटन उस वक्त शिमला में गये हुए थे। दिल्ली का मौसम बड़ा गर्म था। सिर्फ मौसम ही नहीं, राजनीतिक स्थिति भी बेहद गर्म थी। माउंट बेटन साहब ने वी० पी० मेनन को दिल्ली से शिमला आने का निर्देश दिया। जिन राजनीतिक जटिलताओं के जाल में वे फंस चुके थे, उनसे रिहाई पाने के लिए उन्हें

वी० पी० मेनन सरीखे एक सेक्रेटरी की खासी जरूरत थी।

वड़े लाट का बुलावा मिलते ही मेनन साहब चट-पट दिल्ली से शिमला जाने के लिए तैयार हो गये। हाथ में ज्यादा समय नहीं था। चाहे जिस तरह भी हो, उन्हें शिमला जाकर वड़े लाट के दरवार में हाजिरी देनी ही होगी।

लेकिन स्टेशन पहुंचते ही वे हैरान रह गये। उनकी जेब से उनका मनीबैग गायब था। कहां गया वह मनीबैग ?

शायद वह कहीं गुम हो गया ! या फिर वे घर से ही मनीबैग लाना भूल गये थे !!

लेकिन अव शिमला जाने का रेल-भाड़ा वे कैसे चुकायेंगे ? हठात् उनकी नजर एक सिख सज्जन पर पड़ी।

मेनन साहब उनके पास जाकर वोले—"सरदार जी, क्या आप मेरे ऊपर थोड़ी सी मेहरवानी करेंगे ?"

सरदार जी ने चौंकते हुए पूछा—"कहिए, क्या वात है ?"

"सरदार जी, क्या आप मुझे पन्द्रह रुपये उधार दे सकेंगे ?"

सरदार जी, और भी हैरान रह गये। जान न पहचान और जनाव मांग वैठे हैं पन्द्रह रुपये।

फिर भी उन्होंने पूछा—"आपने एक रुपया नहीं मांगा, दो रुपये नहीं मांगे। आप तो हठात् पन्द्रह रुपये उधार मांग वैठे। आखिर माजरा क्या है ?"

वी० पी० मेनन ने कहा—"दिल्ली से शिमला जाने के लिए रेल का किराया है पन्द्रह रुपये ! मेरा मनीवैग खो गया है। इसीलिए···।"

सरदार जी वड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने साथ ही साथ मेनन साहव के हाथ में पन्द्रह रुपये दे दिये।

वी० पी० मेनन साहव ने रुपये जेव में रख लिये। उसके बाद नोटबुक और कलम निकालकर उन्होंने कहा—"आप अगर मेहरवानी करके अपना ठिकाना वता दें तो वहुत अच्छा होगा। मैं आपके पते पर रुपये मनिआर्डर द्वारा भेज दूंगा।"

सरदार जी ने जवाव दिया—"इसकी कोई जरूरत नहीं। इसके वजाय आप एक काम कीजिए।"

"क्या काम, वताइए ?"

सरदार जी ने कहा—"जितने दिनों तक आप जिन्दा रहें, तव तक जो कोई भी सचमुच का जरूरतमन्द आदमी आपके सामने हाथ फैलाये, तो आप उसे पन्द्रह रुपये दे देंगे। वस, अगर आप ऐसा करते रहेंगे, तो इसी से यह कर्ज चुक जायेगा।"

उस समय और ज्यादा वातें करने का वक्त नहीं रह गया था। ट्रेन छूटने ही वाली थी। टिकट भी खरीदनी थी। और फिर उधर शिमला में वड़े लाट

साहब बेसब्री से उनका इन्तजार कर रहे थे। साथ ही जवाहरलाल नेहरू भी उस समय माउण्ट बेटन के मेहमान बन कर शिमला में ही मौजूद थे। नेहरू जी के साथ वी० के० कृष्ण मेनन भी थे। बहुत जरूरी काम था। अब और एक मिनट की भी देर होने से सर्वनाश हो जायेगा। हिन्दुस्तान की आजादी भविष्य में कौन-सा रूप लेगी, यह वी० पी० मेनन द्वारा लिखे गये मसविदे के ऊपर ही निर्भर था।

गाड़ी बंगलोर के लाल बाग के इलाके से होकर गुजर रही थी।

गुंडप्पा स्वामी फिर कहने लगे—"उसके बाद की घटना तो आप सभी जानते हैं। वी० पी० मेनन साहब के अपने हाथों से तैयार किये गये मसविदे के आधार पर ही हिन्दुस्तान आजाद हो गया। लेकिन उसके बाद की घटनाएं लोग-बाग विशेष नहीं जानते। मेनन साहब उसके बाद जितने दिनों तक नौकरी करते रहे, तब तक वे अपने दरवाजे पर आये हर जरूरतमन्द आदमी को पन्द्रह रुपये के हिसाब से देते गये। उसके बाद रिटायर्ड होकर जब वे बंगलोर आ गये, उस समय भी वे जितने दिनों तक जिन्दा रहे, जरूरतमन्द लोगों को पन्द्रह रुपये देते गये। उन्होंने सरदार जी की इच्छा का मरते दम तक अक्षरश: पालन किया। क्या ऐसी अद्भुत सत्यनिष्ठा और कहीं किसी ने देखी है?

"श्रीधरन की ही बात लीजिए। बचपन में ही उसके मां-बाप उसे रास्ते का भिखारी बनाकर परलोक सिधार गये। उसकी ऐसी हालत हो गई कि उसे खाने को एक दाना भी नहीं मिलता था। कोई और उपाय न पाकर श्रीधरन दरवाजे-दरवाजे पर जाकर भीख मांग कर पेट भरने लगा। कभी कोई कुछ भी नहीं देता या फिर कभी-कभी कोई दया दिखाकर उसके हाथों में दो-चार पैसे थमा देता। उसके बाद एक दिन उसने मेनन साहब के घर पर जाकर उनसे अपनी दुरवस्था की कहानी सुनाई। श्रीधरन की बातें सुनकर मेनन साहब ने अपने नियम के मुताबिक उसे एक साथ पन्द्रह रुपये दे डाले।

"सच पूछिए तो श्रीधरन ने अपनी जिन्दगी में एक साथ इतने रुपये कभी देखे भी नहीं थे। रुपये लेकर श्रीधरन सोचने लगा कि इतने रुपयों का क्या किया जाये? क्या सारे रुपये खा-पीकर ही खत्म कर देना अच्छा होगा?

"काफी सोच-विचार करने के बाद आखिरकार वह एक नतीजे पर पहुंचा। दो रुपयों की मूंगफली खरीदकर वह फेरी करते हुए उन्हें बेचने लगा। इसमें अपना खाने का खर्च बाद कर उसे आठ आने का मुनाफा हुआ। उसके बाद फिर वही। दिन-ब-दिन और माह-दर-माह आठ आने प्रतिदिन के हिसाब से जमा होने लगे।

"श्रीधरन को तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा। रोज आठ आने की दर से जमा होने पर महीने में कितने रुपये इकट्ठे होंगे? और साल में? और फिर पांच साल में भला वे रुपये कितने हो जायेंगे? और सारा हिसाब करने पर श्रीधरन का माथा चकरा गया। उन जमा रुपयों का अब क्या किया जाये?

"बहुत सोच-विचार करने के बाद श्रीधरन ने एक दुकान किराये पर ले ली। भाड़ा कम था और दुकान में जगह भी कम थी। लेकिन ताज्जुब की बात है कि धीरे-धीरे उसकी दुकान में बहुतेरे खरीददार जुटने लगे। चारों ओर उसकी दुकान का नाम फैल गया। उसके बाद तो इतने खरीददार आने लगे कि दुकान छोटी पड़ने लगी। उसने और एक बड़ी दुकान किराये पर ली। उसने तय किया कि वह उस दुकान का नाम रखेगा—'वी० पी० मेनन स्टोर्स'। और उसने यह भी तय किया कि उस दुकान का उद्घाटन वह श्री वी० पी० मेनन साहब के द्वारा ही करायेगा। वही वी० पी० मेनन साहब, जिन्होंने उसकी भूखमरी के दिनों में उसे पन्द्रह रुपयों की सहायता दी थी। उनके इस उपकार के लिए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित न करना कितना बड़ा पाप होगा।

"उसी दिन श्रीधरन वी० पी० मेनन साहब के घर पर जा पहुंचा। दरवाजा खटखटाने पर एक महिला ने दरवाजा खोला। उन्होंने श्रीधरन से पूछा—'आप क्या चाहते हैं?'

"श्रीधरन ने अपनी पूरी रामकहानी सुना डाली। उसने कहा कि एक दिन मेनन साहब ने उसे पन्द्रह रुपयों कि मदद दी थी और उसी मदद के बदौलत आज वह बेशुमार रुपये कमा चुका था। उसने यह भी कहा कि उसने एक नयी दुकान खोलने की तैयारी की है और उसका नामकरण किया गया है—'वी० पी० मेनन स्टोर्स'।

'उस महिला ने कहा—"लेकिन वे वी० पी० मेनन साहब तो अब नहीं रहे। लगभग एक महीने पहले उनकी मृत्यु हो गई है।'

"यह सुनते ही मानो श्रीधरन के सिर पर गाज ही गिर पड़ी। श्रीधरन ने और कुछ भी नहीं कहा। वह झट-पट अपने घर चला आया। और फिर वह एकबारगी फूट-फूट कर देर तक रोता रहा।"

उस दिन होटल में लौटने में कुछ देर हो गयी। मेरे लौटते ही गंगाशरण सिंह जी ने मुझसे कहा—"आप अब तक कहां थे जनाब? अशोक होटल में हम लोगों की चाय-पार्टी जो थी···! चाय-पार्टी में सभी मौजूद थे, अगर कोई गैरहाजिर था तो सिर्फ आप ही। आखिर बात क्या है?"

मैंने उन्हें समूचा किस्सा सुनाया और कहा—"मैं जहां गया था, वहीं से चाय

पीकर आया हूं। वी०पी० मेनन स्टोर्स वाले मुझे चाय पिलाये बिना माने ही नही।"

गंगाशरण सिह जी को सारा हिन्दुस्तान जानता है। हिन्दी के प्रचार मे उन्होंने अपना पूरा जीवन लगा रखा है। वे मेरे प्रति स्नेह भी खूब ही रखते हैं मेरी बातें सुनकर वे और भी हैरान होते हुए बोले—"वी० पी० मेनन स्टोर्स में आप आखिर क्या करने गये थे?"

मैंने कहा—"गुडप्पा स्वामी नामक एक साहित्य-प्रेमी सज्जन मुझे श्रीधरन की दुकान में ले गये थे। उनके मुह से ही मैंने श्रीधरन के विचित्र जीवन की कहानी सुनी थी। श्रीधरन की जिन्दगी बड़ी ही वैचित्र्यमय रही है।"

गंगाशरण सिंह जी ने कहा—"लेकिन गुंडप्पा स्वामी और श्रीधरन तो एक ही आदमी है। लगता है कि यह बात आपको मालूम नहीं।"

मैंने चौंकते हुए पूछा—"यह क्या?"

"हां, गुंडप्पा स्वामी का पूरा नाम है—श्रीधरन गुडप्पा स्वामी।"

इस बार सचमुच मेरे हैरान रह जाने की बारी थी। मैंने कहा—"लेकिन उन्होंने तो एक बार भी इस बात का जिक्र नही किया।"

गगाशरण जी ने कहा—"सो वे जिक्र करेंगे क्यो! सचमुच गुंडप्पा स्वामी एक बड़े ही विनयी नौजवान हैं। उस दिन अगर वी० पी० मेनन साहब ने गुडप्पा स्वामी जी को पन्द्रह रुपये नहीं दिये होते तो शायद गुडप्पा स्वामी को आत्महत्या कर लेनी पड़ती। देखिए, वी० पी० मेनन साहब तो जिन्दगी भर कितने ही लोगों को पन्द्रह रुपयों के हिसाब से सहायता दे गये हैं, लेकिन उन सहायता पाने वालों मे से भला कितने लोगो ने मेनन साहब को याद रखा है? केवल वह गुडप्पा स्वामी ही बस पन्द्रह रुपयों की सहायता के लिए इस प्रकार ऋण को शोध करता जा रहा है।"

मैंने कहा—"लेकिन गुडप्पा स्वामी ने तो मुझे इसका सकेत तक नहीं दिया।"

गंगाशरण सिंह जी ने कहा—"वे सकेत देते भी कैसे? आखिर उन्हें डर भी तो है कि कहीं आप उसके प्रसग को लेकर कोई कहानी न लिख डालें।"

मैंने कहा—"मैं जो एक लेखक हू, भला वे इस बात को जानेंगे ही कैसे?"

गंगाशरण जी ने कहा—"इतनी व्यस्तताओं के बीच भी वे रात मे जाग-जाग कर किताबें पढ़ते है। आपकी इतनी किताबें कन्नड भाषा मे अनूदित हुई हैं, तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि वे किताबें श्रीधरन ने पढी नही होंगी!"

हम लोग उसी दिन रात को गाडी से अपने दल-बल के साथ बगलोर छोड़ कर तमिलनाडु की तरफ प्रस्थान कर गये। नही तो शायद मैं दूसरे दिन ही वी० पी० मेनन स्टोर्स मे जाकर गुडप्पा स्वामी को प्रणाम कर आता। कारण यह कि इस जमाने में तो उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ होने का रिवाज उठ चुका है।

खून

यह कहानी कहां से शुरू करूं, यह समझ में नहीं आता।

कहानी पुलिस-स्टेशन से शुरू करूं, या शशिमुखी देवी के घर से, अथवा सीधे इन्द्रावती के जंगल से ! या फिर उस दिन के ब्योरे से, जिस दिन तारक लोकनाथ के दल में शामिल हुआ था !

लोकनाथ का दल कहना शायद ठीक नहीं होगा। इसकी वजह यह है कि दर-असल लोकनाथ का कोई दल था ही नहीं। खुद अकेला लोकनाथ ही एक नियमित दल की भांति था। वह खुद अपने-आपका लीडर था। तारक तो उसका दोस्त-भर था।

बड़े ही विचित्र तरीके से दोनों का परस्पर परिचय हुआ था।

लोकनाथ कहा करता—"जितने भी बड़े आदमी हैं, वे साले सभी पाजी हैं। उन सबों को अच्छा-सा सबक सिखाना होगा।"

तारक कहता—"किस तरह सबक सिखाओगे, बताओ तो ?"

तारक के लिए बढ़िया पकवान बनाकर उसे खिलाना चाहतीं। किन्तु वे पकवान खिलायें भी तो किसे? तारक दिन भर कहां गायब रहता, इसका पता ही नहीं चलता।

मां पूछतीं—"क्यों रे, तू दोपहर को घर पर क्यों नहीं आया?"

तारक कहता—"मां, वक्त ही नहीं मिला।"

"वक्त नहीं मिला, तो तू मुझसे कहकर भी तो आ सकता था।"

"कहने का वक्त मिलता, तब न!"

मां कहतीं—"इस तरह भूखे रहने से तो तेरी तबीयत खराब हो जायेगी। तू बीमार हो जायेगा। बीमार होने पर तेरी देख-भाल कौन करेगा, बता तो?"

जब तारक छोटा ही था, उसी समय उसके पिता जी गुजर गये थे। खैर, घर में रुपयों की कमी न थी। रुपये थे, इसीलिए शशिमुखी देवी को ज्यादा मुसीबतें नहीं झेलनी पड़ी। और फिर उनकी हवेली भी बहुत बड़ी थी। बड़े ही शौक से तारक के पिता शिवनाथ झा जी ने यह हवेली बनवाई थी। हवेली के चारों ओर बगीचा था। रामपुर शहर से करीब पचास मील दूर उनकी हवेली थी। बगीचे में सभी तरह के पेड़ थे। शिवनाथ झा जी की पैत्रिक जमींदारी थी। पैत्रिक सम्पत्ति बेच-बेचकर वे खाते रहे थे। कानून की परीक्षा पास करने के बावजूद उन्होंने ज्यादा दिनों तक प्रैक्टिस नहीं की। एक ही तो लड़का था। एक लड़के के लिए यह जायदाद काफी थी। उसके बाद वे उसे पढ़ा-लिखाकर योग्य बना देंगे। वह डॉक्टरी पढ़ेगा या फिर इंजीनियरिंग। जैसी उसकी मर्जी···।

शशिमुखी देवी पूछा करतीं—"बड़ा होकर मुन्ना क्या नौकरी करेगा?"

शिवनाथ झा कहते—"नौकरी क्यों करेगा? डॉक्टरी पास कर वह अपनी प्रैक्टिस जमायेगा या फिर इंजीनियरिंग पास कर वह अपना खुद का कारोबार करेगा। वह लोहे के कल-पुर्जे बनाएगा।"

शशिमुखी देवी अपने पति की बातें सुनकर बहुत खुश होतीं। एक ही तो लड़का था। यदि वह नौकरी करने के लिए परदेस चला गया तो बेचारी मां किसके सहारे जियेगी? किसके लिए गृहस्थी के झंझटों में फंसी रहेगी?

लड़के के घर पर आते ही शिवनाथ झा जी पूछते- "क्यों बेटे कैसी पढ़ाई चल रही है?"

तारक जवाब देता—"बढ़िया है।"

"अपनी क्लास में अव्वल तो आओगे?"

तारक सिर झुकाये कहता—"कोशिश तो कर रहा हूं।"

"हां, जरूर कोशिश करो! जी-जान लगाकर कोशिश करो। हम दोनों को बस तुम्हारी ही फिक्र है। तुम्हारे ऊपर ही हम दोनों की सारी आशाएं टिकी हैं।"

शिवनाथ झा जी का कहना बिलकुल सही था भी। इकलौता लड़का था···। वह जब तक स्कूल में रहता, तब तक उसके मां-बाप उसके लौटने की राह देखा करते। बगीचे में काम करने के लिए माली था। घर की झाड़-पोंछ और सफाई के लिए भी आदमी थे। सभी कामों के लिए अलग-अलग आदमी नियत थे। बैंक में बेशुमार रुपये जमा थे और उनसे काफी ब्याज आता था। किसी भी चीज के लिए चिन्ता-फिक्र करने की जरूरत ही नहीं थी। अगर उन्हें कोई फिक्र थी तो सिर्फ मुन्ने की। भगवन्, इसकी रक्षा करना ! भगवन्, इसे इतना योग्य बनाना कि यह अपने मां-बाप का मुंह रोशन कर सके ! इसके सिवाय तारक के मां-बाप की और कोई दूसरी साध भला होती भी क्या !

इसीलिए सोच रहा था कि तारक के साथ जब इतना इतिहास जुड़ा हुआ है, तो फिर कहानी कहां से शुरू करूं ! पुलिस-स्टेशन से, शशिमुखी देवी के घर से या फिर इन्द्रावती के जंगल से ?

यह बड़ा ही टेढ़ा सवाल है। क्योंकि इसी बीच अगर मैं सारी बातें सुनाने लगूं तो फिर यह एक छोटा-मोटा उपन्यास बन जायेगा।

और फिर इतनी जगह सम्पादक महोदय भी मुझे देंगे नहीं। इसलिए संक्षेप में ही किस्सा बयान करता हूं।

कहानी का अगला दृश्य···। परदा उठता है। यह क्या, झा जी की हवेली में और बगीचे में पहले वाली वह रौनक नजर नहीं आती। रौनक नजर न आने की वजह है झा जी की मृत्यु ! शशिमुखी देवी विधवा हो गयी हैं ! उनकी भी काफी उम्र हो चुकी है। सिर के बाल झड़ने लगे हैं। जो बाल बचे हैं, वे पक गये हैं। गालों में झुर्रियां उभर आई हैं। आंखों पर चश्मा लग गया है। देख-भाल के अभाव के कारण सारा बगीचा जंगल बन गया है।

उन्होंने अकेले ही घर का सदर दरवाजा बन्द किया और ताला लगा दिया। उसके बाद शाल से अच्छी तरह अपना बदन ढक कर वे बाहर निकलीं।

शाम हो गयी है। थोड़ी ही देर के बाद शाम का अंधेरा गहराने लगेगा। पुलिस-स्टेशन भी कोई नजदीक नहीं, कोस-भर दूर होगा ही।

शशिमुखी देवी का मुंह घूंघट से ढका हुआ है।

ऐसा जो होने वाला है, इसका उन्हें वर्षों पहले ही अन्दाज था। उनका अन्दाज सही साबित हुआ है। उन्होंने जैसी योजना तैयार की थी, ठीक उसी के मुताबिक काम हुआ है।

और फिर जिस दिन घर के मालिक शिवनाथ झा जी की आंखें मुंद गयी थीं, उस दिन आकुल-व्याकुल होकर शशिमुखी देवी चारों ओर न जाने क्या देख

रही थी।

शशिमुखी देवी ने सिर झुका कर पूछा था—"आप कुछ कहना चाहते हैं क्या ?"

शिवनाथ झा जी ने सिर हिलाया। अर्थात्—कुछ नहीं !

"आपको दवा दूं क्या ?"

"नहीं। दवा देने पर भी अब कोई फायदा नहीं होगा। मुझे तो तुम्हारी ही चिन्ता खाये जा रही है।"

उसके बाद कुछ रुक कर रुंधे गले से उन्होंने पूछा था—"क्या मुन्ना घर लौट आया ?"

शशिमुखी देवी इसका क्या जवाब देती ? उनकी समझ में कुछ भी न आया। लड़का रोज नियम से घर नहीं लौटता, यह कहने से गृहस्वामी के मन में तकलीफ ही होती।

शिवनाथ झा जी ने कहा—"तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो···!"

शशिमुखी देवी चुप ही रही।

फिर उन्होंने कहा—"आप चुप रहिए। डॉक्टर ने आपको बातचीत करने से मना किया है।"

शिवनाथ झा जी ने कहा—"मुन्ने की बात सोच-सोच कर मैं मरकर भी शांति नहीं पा सकूंगा। वह ऐसा कैसे बन गया ? वह क्यों हर रोज रात में घर नहीं लौटता ? तुम्हारे लाड-दुलार ने ही उसको बिगाड़ रखा है। पहले तो वह ऐसा नहीं था !"

शशिमुखी देवी ने कहा—"आप इतनी जोर से मत बोलिए। आप चुप रहिए न।"

शिवनाथ झा जी ने कहा—"मैं तो सदा-सर्वदा के लिए ही चुप्पी साधने वाला हूं। फिर भी मरने के पहले यह कहे जाता हूं कि तुम्हारा लड़का आदमी नहीं बन पाया है। वह जानवर बन गया है, जानवर···।"

"आप चुप भी होंगे तो !"

सो सचमुच ही शिवनाथ झा जी हमेशा-हमेशा के लिए चुप हो गये। शशिमुखी देवी को ऐसा लगा कि वे दहाड़ें मार कर रोने लगेंगी। परन्तु बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने-आपको संयत किया। उसके बाद घर के नौकरों को भेजकर पास-पड़ोस के लोगों को यह खबर दी गयी।

उसी रात को शिवनाथ झा जी का दाह-संस्कार कर दिया गया। उसके बाद यथारीति श्राद्ध भी किया गया।

श्राद्ध होने के कई दिन बाद तारक आया।

उस समय आधी रात थी।

भीतर से शशिमुखी देवी ने पूछा—"कौन है ?"

बाहर से तारक की आवाज सुनाई पड़ी—"मैं हूं, तारक।"

शशिमुखी देवी ने चुपचाप दरवाजा खोल दिया।

उन्होंने कहा—"इतने दिनों के बाद तुझे घर की याद आयी है ?"

तारक ने अपनी मां की बातों का कोई जवाब नहीं दिया। वह आहिस्ता-आहिस्ता अपने कमरे की तरफ जाने लगा।

मां ने पूछा—"हां रे, क्या इस तरह हमें भूल जाना चाहिए ?"

"किसने कहा कि मैं तुम लोगों को भूल गया हूं ?"

मां ने कहा—"तू अगर हमें भूल नहीं जाता तो क्या तेरे पिता इस तरह परलोक सिधारते ? जाते वक्त तू उनके सिरहाने पल भर के लिए भी खड़ा नहीं हुआ। तेरे पिता का क्या कसूर था कि शेष समय में उन्हें अपने बेटे के हाथों एक बूंद पानी तक नहीं मिला ? क्या यही है बेटे का धरम ?"

तारक ने कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा—"मां, मुझे कुछ भी पता नहीं था। पिताजी कब चल बसे ? क्या हुआ था उन्हें ?"

मां ने कहा—"अब यह सब पूछकर क्या होगा ?"

रास्ते पर चलते-चलते सारी पुरानी बातें शशिमुखी देवी को याद आ रही थीं। कितने साल पहले की बातें हैं ये ! थाने के दारोगाजी के पास जाकर सारी बातें फिर से कहनी पड़ेंगी। विस्तार के साथ···। बिलकुल शुरू से।

शशिमुखी देवी रास्ते के किनारे-किनारे चलने लगीं। कोस भर का रास्ता था। और फिर शाम होने लगी थी। अंधेरा घिर जाने पर इन्द्रावती के किनारे-किनारे चलने में उन्हें कितनी असुविधा होगी, यह सोच-सोचकर वे घबराने लगीं।

फिर तो शशिमुखी देवी ने तेजी के साथ कदम बढ़ाना शुरू किया।

किन्तु इस तरह उल्टे-पल्टे ढंग से ही भला मैं कहानी क्यों सुना रहा हूं ? बिलकुल आरंभ से भी तो घटना का बयान कर सकता हूं। परन्तु आरम्भ किसे कहा जाये, यही तो समझ में आ नहीं रहा। थाने में पहुंच कर शशिमुखी देवी ने जो बयान दिया, क्या उसे ही आरंभ मान लिया जा सकता है ?

लेकिन क्या बयान देंगी शशिमुखी देवी ?

हो सकता है कि दारोगाजी उनकी बातों पर यकीन ही नहीं करें। और यकीन करें भी तो कैसे ? शशिमुखी देवी भला क्या कभी ऐसा कर सकती हैं ? जब शिवनाथ झा जी जीवित थे, उसी समय से दारोगाजी इन्हें जानते हैं। ये सब कितनी पुरानी बातें हैं। उस समय घर में सुख-संपदा थी और बगीचे के पेड़ों की उचित देख-भाल होती थी। खुद शिवनाथ झा दिन भर बगीचे के पीछे लगे रहते थे। और

फिर हठात् एक दिन वे इस दुनिया से कूच भी कर गये।

किन्तु उनका लड़का कितना बिगड़ गया था। अपने बाप के जीते-जी ही वह बिगड़ चुका था। लेकिन उनकी मौत के बाद तो उसका आवारापन और भी बढ़ गया। वह कहां दिन-भर रहता, कहां अपने दिन बिताता और कहां रात; इसका कुछ भी पता ही नहीं चलता। कभी-कभी वह कई दिनों तक घर से गायब रहता। उसके बाद महीने-बीस दिन के बाद वह फिर आ धमकता।

एक दिन शशिमुखी देवी को अपने लडके की कमीज की जेब टटोलते-टटोलते न जाने क्या एक कडी-सी चीज मिली।

उसे बाहर निकालने पर उन्होंने देखा कि वह एक पिस्तौल थी।

पिस्तौल···! वे चौंक पडी।

तारक उस समय सो रहा था। उन्होंने उसे जगा कर पूछा—"क्यों रे, तेरी जेब मे यह क्या है। यह पिस्तौल कहां से आयी रे? इस पिस्तौल से तू क्या करेगा?"

तारक को गुस्सा आ गया। उसने झट-पट अपनी कमीज की जेब देखी। उसके बाद पिस्तौल को जेब मे रख कर उसने कमीज को आलमारी मे रख दिया और ताला लगा दिया।

उसके बाद उसने अपनी मा से कहा—"तुम इन सब चीजों मे हाथ क्यों देती हो? तुम मेरी कोई भी चीज छुओगी नही, समझी?"

घर से पुलिस-स्टेशन काफी दूर है। शशिमुखी देवी पैदल ही थाने की तरफ बढने लगी। उनकी आखों के सामने उनके जीवन की सारी घटनाए एक-एक कर परिक्रमा करने लगी।

हठात् उन्हें उस रात की याद आ गयी।

आधी रात के समय कोई तारक को पुकार रहा था—"तारक, ओ तारक···।"

मां का मन ठहरा। यह आवाज सुनकर उनकी नीद टूट गयी।

"कौन है?'

"मैं हूं, लोकनाथ।"

शशिमुखी देवी ने झट-पट अपने लडके के कमरे मे जाकर उसे जगा दिया।

"देखो तो, कोई तुझे पुकार रहा है।"

झट-पट बिछौने से उठकर तारक ने कहा—"लोकनाथ आया है। मैं जरा बाहर जा रहा हूं। मुझे लौटने मे देर होगी। मैं चलता हू।"

उसने कहा—"जरा रुको लोकनाथ, मैं अभी आया।"

यह कहकर कपड़े पहन कर तारक बाहर निकलने लगा।

मां ने पूछा—"कहां जा रहा है रे?"

तारक ने कहा—"जरा बाहर जा रहा हूं।"

"कब लौटेगा तू?"

"सो मैं कह नहीं सकता।"

यह कहकर तारक झट-पट घर से बाहर निकल गया।

उसके बाद कितने ही दिन और महीने गुजर गये। रोज ही उसकी मां उसकी बाट जोहती रहती।

गर्मी बीत गयी और वर्षा ऋतु आ गयी। फिर भी तारक लौटा नहीं। उसके बाद वर्षा भी बीत गयी, जाड़ा आ गया। तब एक दिन अचानक तारक घर पर आ पहुंचा।

"मां, मां, ओ मां···।"

मां झट-पट बिछौने से उठ खड़ी हुई। घर का सदर दरवाजा खोलते ही उन्होंने देखा कि सामने तारक खड़ा था।

मां ने पूछा—"क्या रे, कहां था तू इतने दिनों तक? कोई खबर तो देनी चाहिए थी। मैं तो तेरी फिक्र में घुली जा रही थी।"

लड़के के पास अपनी मां के सवाल का कोई जवाब न था। उसके हाथों में एक पैकेट था।

मां ने पूछा—"तेरे हाथ में यह क्या है? क्या है इस पैकेट में?"

"तुम्हें यह सब जानने की कोई जरूरत नहीं। तुम चुपचाप अपने कमरे में जाकर सो जाओ।"

यह कहकर तारक अपने कमरे में घुस गया। फिर उसने भीतर से दरवाजे की कुण्डी लगा दी।

मां के मन में उसी समय सन्देह हुआ था। लेकिन उन्होंने मुंह से कुछ न कहा। बिछौने पर लेटने पर भी उनकी आंखों में नींद नहीं थी।

उसके बाद सुबह हुई। तारक उस समय तक खर्राटे भर रहा था। उसके बाद जब काफी दिन चढ़ आया, तब तारक की नींद टूटी।

उसने कहा—"मां, भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

मां ने तारक को खाना लाकर दिया। लड़का अपनी मां की देख-भाल करे या नहीं, मां तो अपने लड़के की कभी भी अवहेलना नहीं कर सकती। कैसे गृहस्थी चलती है, कौन बाजार से सौदा लाता है, कहां से रुपये आते हैं; यह सब जानने की लड़के को दरकार नहीं थी। जब जिस चीज की इच्छा हुई, वह चीज हाथ में आनी चाहिए। बस···। शिवनाथ झा जी परलोक चले गये थे, परन्तु अपनी स्त्री और अपने पुत्र को बिलकुल अनाथ बनाकर नहीं। उनके रुपयों से ही गृहस्थी चल रही थी। किन्तु वे रुपये भी ऐसे कुछ ज्यादा रुपये नहीं थे। बैंक से मिलने वाले सूद के सिवाय शशिमुखी देवी की और कोई आमदनी नहीं थी। इसीलिए गृहस्थी चलाने के लिए शशिमुखी देवी को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता था।

एक ही तो लड़का था उनका···। लेकिन वह बड़ा नालायक निकला था। इसी

वजह से गृहस्वामी शिवनाथ झा जी निश्चिन्त होकर मर भी नहीं सके थे।

सो जो भी हो ! उस दिन आधी रात को घर आने के बाद से तारक कभी भी घर से बाहर निकला नहीं। वह दिन-रात अपने कमरे में ही घुसा रहता। वह दिन-भर क्या करता था, उसकी मां कुछ भी समझ नहीं पाती।

एक दिन मां ने पूछ ही लिया—"क्यों रे, दिन भर तू कमरे के भीतर क्या किया करता है ?"

तारक ने जवाब दिया—"कुछ भी नहीं।"

"सो तेरा दोस्त तो अब तुझे बुलाने के लिए कभी भी नहीं आता।"

"वह क्यों नहीं आता, इसके बारे में भला मैं क्या जानूं ?"

मां ने सोचा कि दोनों दोस्तों में शायद झगड़ा हो गया है। चलो, अच्छा ही हुआ। तो फिर अब शायद तारक का मन घर-गृहस्थी में लगे।

किन्तु नहीं'''। तारक घर का कोई भी काम नहीं करता। वह घर के बाहर कदम ही नहीं रखता। रातों-रात उसमें जमीन-आसमान का अन्तर आ गया था। वह कोई भी काम नहीं करता। सिर्फ सोना और खाता। भूख लगते ही वह अपनी मां के सामने चला आता।

किन्तु नहीं, इससे भी ज्यादा नाटकीय ढंग से कहानी शुरू करना बेहतर होगा। एकबारगी खून-खराबे से। खून-खराबा, मर्डर'''! मर्डर की घटनाओं में रोमांच होता है। सभी रोमांच पसंद करते हैं। अगर रोमांच से ही कहानी की शुरुआत की जाये तो जो पाठक कहानी पढ़ना प्रारंभ करेंगे, वे कहानी को पूरी पढ़े बिना छोड़ नहीं पायेंगे।

सोचता हूं कि यह कहानी खून की घटना से ही शुरू करूं।

एक दिन सुबह हठात् नींद टूटते ही शशिमुखी देवी हैरान रह गईं। सिर पर हाथ रख कर वे आर्तनाद करने लगीं।

वे साथ-ही-साथ डाक्टर के घर पर दौड़ी गईं। डाक्टर साहब आये। डाक्टर साहब ने जांच करने के बाद कहा—इसका तो खून हुआ है। किसी ने इसका मर्डर कर दिया है।

डाक्टर ने जाकर पुलिस को टेलीफोन कर दिया। खबर मिलते ही पुलिस दौड़ी आई। पुलिस ने तारक की लाश की जांच-पड़ताल की।

पुलिस इन्सपेक्टर ने शशिमुखी देवी से पूछा—"क्या आपको किसी पर शक है ?"

"जी हां, है।"

"कौन है वह ? उसका नाम क्या है ?"

"नाम तो मैं नहीं जानती। फिर भी उसका एक दोस्त था। वह बीच-बीच में आया करता था। लेकिन पिछले कुछेक महीनों से वह घर पर नहीं आया। मुन्ना अकेला घर पर पड़ा रहता था। वह किसी से भी मिलता-जुलता न था।"

"उसका पता आपको मालूम है क्या ?"

"जी नहीं।"

"आपके लड़के का और भी कोई दोस्त था, या सिर्फ वही एक ?"

"सिर्फ वही। तारक का उसके सिवाय और कोई भी दोस्त न था।"

पुलिस इन्सपेक्टर ने और भी बहुत-से सवाल किये। लेकिन वे किसी भी नतीजे तक पहुंच नहीं पाये। उसके बाद यथारीति श्मशान में तारक का दाह-संस्कार कर दिया गया।

उसके बाद कितने ही दिन बीत गये और कितने ही महीने। शशिमुखी देवी को न जाने क्या सन्देह हुआ। काफी दिनों पहले जिस दिन आधी रात को एक बड़े पैकेट के साथ तारक घर पर आया था, उस पैकेट में क्या है ? उसमें कौन-सी चीज रखी हुई है ?

उस दिन आलमारी खोलते ही शशिमुखी देवी ने देखा कि वह पैकेट ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। पैकेट खोलते ही शशिमुखी देवी हैरान रह गई। उन्होंने देखा कि उस पैकेट में ढेर सारे सोने के जेवर थे। उनकी कीमत लाखों रुपये होगी ! कम-से-कम बीस-पच्चीस लाख।

इतने जेवर ? लाखों रुपयों की यह सम्पत्ति तारक के हाथ कैसे लग गई ?

तो क्या तारक डकैती किया करता था ?

शशिमुखी देवी को याद आया कि आठ-नौ महीने पहले एक रईस आदमी के घर डकैती होने की खबर उन्होंने अखबार में पढ़ी थी। तो क्या तारक और उसका दोस्त ही वहां डकैती करने गये थे ?

"राम जाने !"

जेवर जिस तरह रखे हुए थे, शशिमुखी देवी ने उन्हें वैसे ही रख दिया। उसके बाद उन्होंने आलमारी में ताला लगा दिया।

लेकिन हठात् शशिमुखी देवी के दिमाग में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया। इस घटना के लिए कौन जिम्मेवार है ? खुद शशिमुखी या तारक का वह दोस्त ? उसे तो यह जरूर मालूम होगा कि तारक के पास ही सारे जेवर पड़े हुए हैं।

इसीलिए शशिमुखी देवी के दिमाग में एक विचार कौंध पड़ा।

एक दिन समाचार पत्रों में शशिमुखी देवी के नाम से एक विज्ञापन निकला। विज्ञापन का आशय यह था कि शशिमुखी देवी अपनी हवेली बेच देंगी।

विज्ञापन पढ़कर बहुत से लोग आये।

उन्होंने पूछा—"क्या आप अपनी हवेली बेच देना चाहती हैं?"

"हां, जब तारक इस दुनिया में रहा ही नहीं, तो इस हवेली को रखकर मैं क्या करूंगी? और कितने दिनों तक जिन्दा रहूंगी मैं? उसके पहले ही मैं इस हवेली को बेचकर वे रुपये बैंक में रख दूंगी और बैंक से जो सूद मिलेगा, उसी से अपना खर्च चलाऊंगी।"

सबों से शशिमुखी देवी यही बात कहतीं। लेकिन इतने रुपये देकर इस पुरानी हवेली को खरीदता कौन?

जो भी आता, वह वापस लौट जाता।

सभी आश्चर्य करते हुए कहते—"इस टूटी-फूटी हवेली की कीमत दो लाख रुपये?"

शशिमुखी दो लाख रुपयों से एक पैसा भी कम लेने के लिए तैयार न थीं। वे कहतीं—"कीमत यही रहेगी। इसमें कोई भी कमी नहीं की जा सकती।"

किन्तु नहीं, कुछ दिनों के बाद एक खरीददार आया। उम्र कोई ज्यादा न थी, तारक का हमउम्र था वह।

उसने पूछा—"हवेली की कीमत क्या है?"

शशिमुखी देवी ने कहा—"दो लाख रुपये।"

उसने कोई भी दर-मुलाई नहीं की। एक ही बार में वह राजी हो गया।

उसने कहा—"मैं तैयार हूं। मैं दो लाख रुपये ही दूंगा। लेकिन मैं एक बार हवेली को भीतर से देखूंगा।"

शशिमुखी देवी ने कहा—"सो देखो ना भाई। जितनी बार जी चाहे, देखो। तुम रुपये देकर चीज खरीदोगे, हजार बार ठोक-बजाकर देख लो।"

शशिमुखी देवी उसे सारे कमरे घूम-घूम कर दिखाने लगीं।

"यह देखो, यही है वह कमरा, जिसमें हमारा तारक रहता था।"

उस कमरे में तारक का बिछौना था, जहां वह सोया करता था। और वह स्टील की आलमारी भी वहां रखी थी, जिसके भीतर थे बीस-पच्चीस लाख रुपयों के जेवर। वह लड़का बार-बार उस आलमारी की तरफ तेज नजरों से देख रहा था।

उसने पूछा—"क्या यह सब चीजें आपके लड़के की हैं?"

शशिमुखी देवी ने कहा—"हां। लड़का मरते वक्त इन्हें जैसे छोड़ गया था, उसी तरह ये चीजें पड़ी हुई हैं।"

उस लड़के ने कहा—"ठीक है। मैं यह हवेली खरीद लूंगा। यह हवेली मुझे पसन्द है। मैं दो लाख रुपये ही दूंगा।"

उसके बाद कुछ रुककर उसने कहा—"परन्तु मेरी भी एक शर्त है मौसी

जी। इस हवेली के साथ सारा फर्नीचर भी मुझे देना होगा। यह आलमारी भी···। अच्छा मौसी जी, इस आलमारी में क्या है? क्या आपने कभी देखा भी है?"

"नहीं भैया, जब लड़का ही नहीं रहा तो फिर उसकी चीजें देखकर मैं क्या करती? ये चीजें उसके जिन्दा रहते समय जिस तरह रखी हुई थीं, उसी तरह पड़ी हैं। मैंने उसे कभी भी खोलकर देखा तक नहीं। इस आलमारी में उसके कपड़े-लत्ते ही हैं, और कुछ भी नहीं। खैर, जब तुम फर्नीचर मांग रहे हो तो मैं दे दूंगी। ये फर्नीचर रखकर भला मैं करूंगी भी क्या?"

उसके बाद कुछ रुककर शशिमुखी देवी ने कहा—"जो भी हो, तुम जरा बैठो भैया। तुम्हारे लिए एक प्याली कॉफी बनाकर लाती हूं। बस, दो मिनट में···।"

उसके बाद कुछ ही देर में कॉफी आ गई। वह लड़का कॉफी की चुस्कियां लेने लगा।

लेकिन ताज्जुब···! कॉफी की एक घूंट पीते ही वह बेहोश हो गया और फर्श पर गिरकर छटपटा कर शांत हो गया।

थाने के पुलिस इन्सपेक्टर ने पूछा—"उसके बाद?"

शशिमुखी देवी ने कहा—"उसके बाद और क्या होता। उसके बाद वह शैतान जहन्नुम में चला गया।"

थाने के पुलिस इन्सपेक्टर ने पूछा—"आखिर आपने उसका खून क्यों किया? आखिर ऐसी क्या वजह थी? और फिर कॉफी पीते ही वह मर कैसे गया?"

शशिमुखी ने कहा—"कॉफी में मैंने जहर मिला दिया था। मैंने इसी उद्देश्य के लिए जहर की एक शीशी घर पर जुटा रखी थी। मैं तो जानती ही थी कि बीस-पच्चीस लाख रुपयों के जेवरों का लोभ जरूर तारक के दोस्त को खींच लायेगा। अगर मैं अपनी हवेली के तीन लाख रुपये मांगती तो वह इसके लिए भी तैयार हो जाता। उन्हीं रुपयों के लोभ में ही तो उसने मेरे बेटे का खून किया था।"

उसके बाद कुछ रुककर शशिमुखी देवी ने पुलिस इन्सपेक्टर से कहा—"मैं पूरी घटना आपको बता चुकी हूं। सब कुछ सुनने के बाद अब आप अगर मुझे फांसी भी देना चाहें तो दीजिए। मुझे कोई भी आपत्ति नहीं है। मैं किसी भी सजा के लिए तैयार होकर आई हूं।"

पत्नीभक्षी राहु

इस बार जिसे लेकर कहानी लिख रहा हूं, वह किसी दिन कहानी का चरित्र बन जायेगा, यह मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। हां तो, इस कहानी के नायक का नाम है शशिनाथ।

शशिनाथ सही मायने में शशिनाथ था। यानी शिव ! जैसा चरित्र शिव का है, ठीक वैसा ही चरित्र है हमारे कथा-नायक शशिनाथ का। शिव की भांति चेहरा-मोहरा, वैसा ही व्यवहार और वैसी ही बातचीत।

शशिनाथ के चरित्र में कभी भी कोई किसी तरह का दोष ढूंढ नहीं पाया। शशिनाथ ने जिन्दगी में कभी झूठ नहीं कहा। शशिनाथ अपने माता-पिता की इकलौती औलाद था। पिता के पास बेशुमार धन था, गाड़ी थी और थे कोठी-बंगले। माता-पिता के गुजर जाने के बाद शशिनाथ ने अपनी पैत्रिक सम्पत्ति का कण-भर भी बर्बाद नहीं किया। शशिनाथ था बड़ा ही हिसाबी आदमी। वह चाय तक नहीं पीता, क्योंकि चाय पीने से लीवर खराब हो जाता है। इसीलिए वह अक्सर कहा करता—"चाय पीकर क्या होगा भैया ? चाय पीने से लीवर खराब हो जाने के सिवाय और होगा क्या ?"

शशिनाथ सिगरेट भी नहीं पीता था, क्योंकि सिगरेट पीने से फेफड़ों में कैंसर हो जाता है।

शशिनाथ कहता—"क्या तुमने देखा नहीं, सिगरेट के हरेक पैकेट के ऊपर यह चेतावनी साफ-साफ अक्षरों में छपी होती है कि 'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है'।"

मैं कहता—"लेकिन शिव जी तो भांग और गांजे के नशे में हरदम धुत रहते हैं।"

शशिनाथ कहता—"शिव जी की बात छोड़ दो भाई। वे तो ठहरे महादेव'''। लेकिन मैं एक साधारण आदमी ॥ । साधारण आदमी को यह सब शोभा नहीं देता।"

सिर्फ चाय और सिगरेट ही क्यों ? और भी बहुत से नशे हैं दुनिया में। शराब, अफीम, पान, सुपारी, जर्दा तथा और भी बहुत-सी चीजों के नाम गिनाये ज्

हूं। लेकिन शशिनाथ सारे नशों से परे था। यहां तक कि शशिनाथ को कभी भी किसी ने सिल्क का कुरता पहने हुए भी नहीं देखा।

मैं कहता—"भाई, तुम्हें देख कर यह अन्दाज ही नहीं लगता कि तुम इतने रुपये-पैसों के मालिक हो।"

शशिनाथ कहता—"तुमने भी ऐसी बात कह दी ? दूसरे लोग चाहे जो बोलें, लेकिन तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद न थी !"

शशिनाथ तड़के नींद टूटते ही घूमने के लिए मैदान में चला जाता। उसके बाद घर लौटकर वह दूध के साथ दो टोस्ट खाता। फिर दोपहर में थोड़ा-सा भात और सब्जी···। उसके बाद रात में नौ बजने के पहले ही वह दो रोटियां और थोड़ा-सा छेना खाता। सच पूछिए तो शशिनाथ बड़ा ही सात्विक आदमी था।

लेकिन एक मामले में यह शशिनाथ बड़ा बदकिस्मत था।

मैं पहले कुछ भी नहीं जानता था। एक दिन अचानक रास्ते में शशिनाथ के साथ मुलाकात हो गई।

मैंने देखा कि शशिनाथ का मुंह उतरा हुआ था।

मैंने पूछा—"क्या हुआ, तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

शशिनाथ शायद किसी जरूरी काम से कहीं जा रहा था। मुझे देखते ही वह रुक गया।

उसने कहा—"भाई, डाक्टर साहब के घर जा रहा हूं।"

मैंने पूछा—"क्यों ? घर में कोई बीमार है क्या ?"

शशिनाथ ने कहा—"हां, लड़का बहुत बीमार है। कई दिनों से वह तकलीफ पा रहा है। बुखार उतर ही नहीं रहा है।"

मैंने कहा—"काफी दिनों से तुम्हारे साथ भेंट ही नहीं हुई।"

शशिनाथ ने कहा—"भाई मेरे ऊपर से भयंकर तूफान उतर गया है। शायद तुम्हें कुछ पता नहीं। क्या तुम सुनोगे ?"

मैंने पूछा—"क्यों, क्या बात हुई ?"

शशिनाथ ने कहा—"मेरी पत्नी का देहान्त हो गया है।"

मैं तो शशिनाथ की बात सुनकर हैरान रह गया। मैंने पूछा—"तुम्हारी पत्नी का देहान्त हो गया ? कब ? कैसे ? क्या हुआ था उन्हें ?"

शशिनाथ ने कहा—"कुछ भी नहीं हुआ था भाई। मैं दिन में हमेशा की तरह अपने दफ्तर में चला गया था। दोपहर को घर से टेलीफोन मिला कि मेरी पत्नी की तबीयत बेहद खराब है, तुरत ही घर चला आऊं! टेलीफोन मिलते ही मैं भागा-भागा घर पर आया। मैंने देखा कि मेरी पत्नी बेहोश पड़ी थी। उसी क्षण सब मिल कर उसे अस्पताल ले गये। उस दिन उसे होश नहीं आया। फिर दूसरा दिन भी बेहोशी की हालत में ही बीता। तीसरे दिन बस खेल खत्म···।"

मैंने पूछा—"क्या हुआ था उन्हें? डाक्टरों ने क्या कहा?"

शशिनाथ ने जवाब दिया—"कहते और क्या? उन्होंने कहा कि मेरी पत्नी का हार्ट खराब था।"

मैंने कहा—"तब तो तुम भारी मुसीबत में हो!"

शशिनाथ ने कहा—"हां भाई, तुम ठीक ही कह रहे हो। अब यह नई मुसीबत पाई है लड़के की बीमारी के रूप में!"

मैंने पूछा—"लड़के की उम्र क्या है इस समय?"

शशिनाथ ने कहा—"यही, कोई दो साल···।"

मैंने शशिनाथ को और रोके रखना ठीक नहीं समझा। मैंने कहा—"तुम अब जाओ भाई, तुम्हें और रोकना ठीक नहीं।"

इसके बाद कितने ही महीने बीत गये। शशिनाथ के साथ मेरी कोई भेंट-मुलाकात नहीं हुई। मैं भी बीच-बीच में बाहर चला जाया करता। नौकरी के लिए मुझे भी कितनी ही बार कलकत्ते से बाहर रहना होता। शशिनाथ के बारे में सोच-सोच कर मुझे बहुत दु:ख होता था। शशिनाथ के माता-पिता शशिनाथ की शादी के बाद ही परलोक सिधार चुके थे। शशिनाथ बिल्कुल अकेला पड़ गया था। शशिनाथ था अपने पिता की एकमात्र सन्तान। इसके भाई-बहन कोई भी नहीं थे। पिता के कारोबार का सारा बोझ उसके माथे पर आ गया था। और फिर उसकी पत्नी भी एक छोटे लड़के को छोड़ कर चल बसी! वह कब अपने लड़के की देख-भाल करेगा और भला कैसे अपने कारोबार को सभालेगा?

बहुत दिनों के बाद जब फिर मुलाकात हुई, तब मैंने देखा कि शशिनाथ गाड़ी में बैठ कर अपने दफ्तर के लिए जा रहा था। उसके पास ही उसका लड़का बैठा हुआ था।

मुझे देखते ही उसने गाड़ी रुकवा दी।

मैंने पास जाकर देखा कि उसके चेहरे पर खुशी की छाप थी।

मैंने पूछा—"कहां जा रहे हो?"

शशिनाथ ने गाड़ी में बैठे-बैठे ही जवाब दिया—"मैं लड़के को स्कूल पहुंचा कर दफ्तर चला जाऊंगा।"

कुछ देर रुक कर उसने फिर कहा—"मैं तुम्हारे घर गया था, लेकिन तुम घर पर नहीं थे। एक बात जानते हो क्या, मैंने दूसरी शादी कर ली है।"

मैं और भी हैरत में पड़ गया। मैंने कहा—"अच्छा ही किया है। तुम्हारी गृहस्थी को संभालने वाला कोई होना ही चाहिए!"

शशिनाथ ने कहा—"हां भाई, तुम ठीक कह रहे हो। मैं तो दिन भर अपने दफ्तर में रहता हूं। फिर घर की देख-भाल भला कौन करे? सबों ने दूसरी शादी कर लेने की सलाह दी।"

इसके बाद दो-एक बातें कर वह चला गया।

शशिनाथ ने शादी कर ली और वह खुशी हुआ है, मेरे लिए यही बड़ी बात थी। दुनिया में आदमी और चाहता ही क्या है? शशिनाथ के पास रुपये थे, स्वास्थ्य था, सभी कुछ था। अगर कुछ नहीं था तो सिर्फ गृहस्थी का सुख नहीं था। उसकी गृहस्थी फिर संवर गई है, यह सुनकर मुझे बेहद खुशी हुई!

दिन बीतते गये। एक दिन किसी के मुंह से सुना कि शशिनाथ की दूसरी पत्नी भी गुजर गई। खबर मिलते ही मैं उसके घर पर गया। उसके लड़के के साथ भेंट हुई। लड़का तब तक काफी बड़ा हो चुका था।

मैंने पूछा—"तुम्हारे पिताजी कहां हैं?"

लड़के ने जवाब दिया—"पिताजी ऑफिस चले गये हैं।"

मैंने कहा—"तुम्हारी माता जी गुजर गई हैं, ऐसी खबर मिली थी।"

लड़के ने कहा—"हां, लगभग एक महीने पहले उनकी मौत हो गई।"

मैंने कहा—"मैं तो कलकत्ते में था नहीं। कलकत्ता आने पर मैंने यह खबर सुनी। क्या हुआ था तुम्हारी मां को?"

लड़के ने कहा—"चेचक! पिता जी को भी चेचक हो गया था। लेकिन उनकी हालत विशेष खराब नहीं हुई। इसलिए वे तो बच गये, पर मां चल बसी।"

मैंने देखा कि शशिनाथ का लड़का बड़ा ही शान्त और शिष्ट था। उसने अपनी मां की तरह सुंदर चेहरा-मोहरा पाया था।

मैंने उससे पूछा—"बेटे, तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़के ने जवाब दिया—"जयन्त।"

जाते-जाते मैंने कहा—"अपने पिताजी से कह देना कि मैं आया था।"

यह कहकर और अपना नाम बताकर मैं वहां से लौट आया।

इसके बाद मेरी बदली बम्बई में हो गई। वहीं क़रीब पन्द्रह साल बीत गये। नई जगह में अच्छी तरह स्थापित होने में कुछ समय ज़रूर लगा। उसके बाद तो आप कह सकते हैं कि मैं वहीं का आदमी बन गया। कलकत्ते की बात बिल्कुल भूल ही गया। जब मैं फिर कलकत्ते लौटा, तब मैंने देखा कि कलकत्ता कितना बदल चुका था। कलकत्ते के रास्तों पर लोगों की भीड़ और भी बढ़ गई थी। कलकत्ता शहर और भी ज्यादा गन्दा हो गया था। कुल मिलाकर यह समझिए कि पहले वाले कलकत्ते की तुलना में इस शहर में ज़मीन-आसमान का फ़र्क आ गया था।

कलकत्ते में स्थिर होने में कुछ दिन और लगे।

उसी समय एक दिन मैं डलहौजी स्क्वायर में बस के इन्तज़ार में खड़ा था। अचानक मेरे पास आकर एक गाड़ी रुकी। मैंने आश्चर्य से देखा कि गाड़ी में

शशिनाथ बैठा हुआ था।

शशिनाथ ने मुझसे कहा—"आओ, आओ, गाड़ी में बैठ जाओ। घर जाओगे तो ?"

मैंने कहा—"हां।"

"तो फिर चले आओ। मैं भी उधर ही जा रहा हूं।"

गाड़ी में बैठते ही गाड़ी फिर चल पड़ी।

कुछ देर के बाद शशिनाथ ने पूछा—"तुम तो बम्बई में थे न ? कलकत्ते कब आये ?"

मैंने कहा—"करीब छह महीने हो गये।"

शशिनाथ ने शिकायत भरे स्वर में कहा—"कलकत्ता आये तुम्हें छह महीने हो गये और तुमने मुझे ख़बर तक नहीं दी ?"

मैंने कहा—"घर और दफ्तर की उलझनों को सुलझाने में ही इतने दिन बीत गये। और किसी तरफ ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं मिली। बोलो, तुम कैसे हो ?"

शशिनाथ ने कहा—"चलो, किसी रेस्तरां में चलते हैं। तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं। वहीं बातें करेंगे।"

धर्मतल्ला के मोड़ के पास एक जगह शशिनाथ ने गाड़ी रुकवाई। हम लोग गाड़ी से उतरकर एक रेस्तरां में घुस गये। शशिनाथ मुझे रेस्तरां के एक एकान्त केबिन में ले गया। उसने बेटर को बुलाकर दो प्याली कॉफी का आर्डर दिया।

मैंने कहा—"तुम्हारी दूसरी पत्नी के देहान्त के बाद मैं तुम्हारे घर पर गया था। लेकिन तुम घर पर मौजूद नहीं थे।"

शशिनाथ ने कहा—"हां भाई, मैंने जयन्त के मुंह से सब कुछ सुना था।"

बेटर कॉफ़ी लेकर आ गया। शशिनाथ को कॉफी पीते देख मैंने उससे पूछा—"तुम कॉफी कब से पीने लगे ? पहले तो तुम यह सब कुछ भी पिया नहीं करते थे !"

शशिनाथ ने कहा—"पहले मैं कॉफी नहीं पीता था, यह सच है। लेकिन अब मैं कॉफ़ी पीने लगा हूं।"

"क्यों ? तुममें यह बदलाव कब से आ गया ?"

शशिनाथ ने कहा—"उस समय से, जब मेरा लड़का मेरा घर छोड़कर चला गया।"

मैंने पूछा—"यह तुम क्या कह रहे हो ? जयन्त चला गया ? जयन्त तुम्हारा घर छोड़कर चला गया ?"

शशिनाथ ने कहा—"हां भाई। मैंने जयन्त की शादी कर दी थी। पर लड़के की बहू मेरे मन के मुताबिक नहीं मिली भाई। और फिर वैसे देखा जाये तो खुद मैंने लड़की पसन्द कर उसके साथ जयन्त का विवाह किया था।"

"लेकिन लड़का आखिर गया कहां ?"

"उसने एक नया फ्लैट ख़रीद लिया है। इस समय वह एक बड़ी फर्म में ब्रांच-मैनेजर है। ढाई हज़ार रुपयों से ज़्यादा तनख्वाह है। अब तो वह मेरी परवाह ही नहीं करता। वह तो यह बात भली-भांति ही समझता है कि मेरे मरने के बाद मेरी सारी सम्पत्ति उसे ही मिलेगी।"

मैंने पूछा—"तो फिर इस समय तुम्हारी देख-भाल कौन करता है? इस समय तुम्हारे घर पर कौन है?"

शशिनाथ ने कहा—"यही बताने के लिए ही तो मैं तुम्हें इस रेस्तरां में ले आया हूं। गाड़ी में यदि मैं तुम्हें सब कुछ बताने लगता, तो ड्राइवर भी ज़रूर सुनता। सो तुम्हें शायद मालूम नहीं कि दूसरी पत्नी के गुज़र जाने के बाद मैंने फिर शादी की थी।"

मैंने कहा—"नहीं, मुझे तो यह मालूम नहीं था।"

शशिनाथ ने कहा—"दूसरी पत्नी की मृत्यु के बाद मैंने फिर दो बार शादी की थी। कुल मिलाकर चार शादियां···। लेकिन हर बार शादी के बाद मेरी पत्नी गुज़र गई···।"

मेरे मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था। मैंने सोचा कि मैं कोई सच्ची कहानी सुन रहा हूं या अरेबियन नाइट का कोई अजीबोग़रीब किस्सा पढ़ रहा हूं!"

मैंने ताज्जुब से पूछा—"चारों बार तुम्हारी पत्नी गुज़र गई?"

शशिनाथ ने कहा—"हां भाई, चारों बार मेरी पत्नी गुज़र गई। उसके बाद मैंने क्या किया, यह सुनो। मैं एक विख्यात ज्योतिषी के पास जा पहुंचा और मैंने उन्हें अपनी जन्म-कुंडली दिखाई। ज्योतिषी जी को दक्षिणा के रूप में दो सौ रुपये देने पड़े। फिर भी मैंने सोचा कि मेरे लिए दो सौ रुपये क्या हैं, कुछ भी नहीं! सो ज्योतिषी जी ने काफ़ी देर तक जन्म-कुण्डली की जांच-पड़ताल की। न जाने उन्होंने क्या-क्या गणना की! आख़िरकार उन्होंने कहा—"तुम्हें अपनी ज़िन्दगी में रुपयों की कमी कभी नहीं होगी।"

मैंने कहा—"मैं आपके पास रुपयों के बारे में जानने नहीं आया हूं। आप और कुछ बताइए। मेरे जीवन में और कोई समस्या है या नहीं, यह देखिए।"

ज्योतिषी जी फिर ध्यानपूर्वक मेरी जन्म-कुण्डली देखने लगे।

उन्होंने कहा—"तुम्हारी जन्म-कुण्डली में संतान-सुख नहीं है। संतान होने पर भी वह तुमको असीम यंत्रणा देने वाली साबित होगी। तुम्हारी सन्तान तुम्हारा घर छोड़कर चली जायेगी।"

मैं चुप रहा।

ज्योतिषी जी ने फिर कहा—"क्या तुमने शादी की है? तुम्हारी तो शादी होनी ही नहीं चाहिए।"

मैंने कहा—"हां, मैंने शादी की है।"

ज्योतिषी जी ने कहा—"शादी होने पर भी पत्नी के साथ विच्छेद होगा, अथवा अलग रहना पड़ेगा। या फिर स्त्री की मृत्यु होगी। तुम्हारी जन्म-कुण्डली में स्त्री-सुख नहीं है। तुम्हारी कुण्डली में षष्ठम स्थान में मंगल, सप्तम में राहु और अष्टम स्थान में शनि है। इसे 'पत्नीहा' योग कहा जाता है। ऐसा योग होने पर पत्नी जिन्दा नहीं रहती।"

मैंने कहा—"मैंने चार बार विवाह किया था और चारों बार ही मेरी पत्नी की मौत हो गई। अब मैं आपके पास यह परामर्श लेने आया हूं कि मैं और अब शादी करूं या नहीं!"

ज्योतिषी जी ने गंभीर स्वर में कहा—"अगर तुम दस बार भी शादी करो, तो दस बार ही तुम्हारी पत्नी मर जायेगी। इसलिए मेरी यही सलाह है कि तुम शादी मत करो···।"

शशिनाथ ने कुछ रुककर मुझसे कहा—"भाई, इसीलिए मैंने फिर शादी नहीं की। बस, चार बार ही मैंने शादी की थी।"

मैं बड़े कौतूहल के साथ शशिनाथ की कहानी सुन रहा था। मुझे उसके लिए मन में बड़ी तकलीफ़ होने लगी।

मैंने कहा—"तुम्हारा बेटा और तुम्हारी पुत्रवधू भी तुम्हारे घर से चले गये। तो फिर इस समय घर पर तुम्हारी देख-भाल कौन करता है? पूरे घर में तो तुम अकेले हो हो!"

शशिनाथ हंस पड़ा। मुझे ऐसा लगा मानो शशिनाथ हंस नहीं रहा था, रो रहा था। उसकी रुलाई ही मानो उसके मुंह से हंसी बनकर फूट रही थी।

शशिनाथ ने जरा आहिस्ता आवाज में कहा—"नहीं भाई, मेरी देख-भाल करने वाला भी कोई जरूर है!"

"कैसे? कौन है वह?"

शशिनाथ ने कहा—"तुम्हें कुछ भी बताने में मुझे संकोच नहीं। ज्योतिषी जी तो साफ-साफ बता चुके थे कि शादी करने पर मेरी पत्नी फिर मर जायेगी। अंततः मैंने घर पर एक खूबसूरत युवती को रखैल बनाकर रख लिया। ज्योतिषी जी ने बताया था कि रखैल बनाकर यदि मैं किसी को रखूं, तो फिर डरने की कोई बात नहीं। वह मरेगी नहीं···।"

दो नाम

चिनसुरा के एक मदरसे में सभा का आयोजन किया गया था। भाषण समाप्त कर जब मैं सभा-भवन से बाहर बरामदे में आया तो मैंने हठात् देखा कि एक महिला मेरा रास्ता रोके खड़ी थी।

उसने कहा—"नमस्कार···! शायद आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं।"

सचमुच मैं उस महिला को पहचान नहीं पाया था।

मैंने पूछा—"बताइए तो, आपसे मेरी मुलाकात कहां हुई थी ?"

उस महिला ने कहा—"छोड़िए भी···। मुझे पहचानने की कोई जरूरत नहीं। इसमें कुछ फायदा भी नहीं···!"

उसके बाद कुछ रुककर उसने कहा—"लेकिन मैंने आपको ठीक पहचान लिया है। फिर भी आपके दो नाम हैं, यह मुझे आज पहली बार मालूम हुआ है।"

दो नाम···?

यह कैसी मुसीबत आ गई। मेरा तो एक ही नाम है। मां-बाप ने जो नाम दिया है; उसका ही तो व्यवहार हर जगह करता हूं! स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटी में तथा मासिक व साप्ताहिक पत्रिकाओं में या फिर किताबों में उसी नाम का तो उपयोग करता रहा हूं। और फिर मेरा कोई छद्म नाम भी तो नहीं है कि मैं उस नाम से भी जाना-पहचाना जाऊं!

उस महिला ने कहा—"आज शायद उन बीते हुए दिनों की बात आप भूल चुके हैं। भूल जाना स्वाभाविक ही है···!"

मैं थोड़ा-सा परेशान हुआ। मैंने कहा—"शायद अंधेरे की वजह से मैं आपको ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रहा हूं।"

उस महिला ने कहा—"नहीं पहचानना ही तो आपके लिए सुविधाजनक है।"

सभा-भवन के गेट के नजदीक और मेरे आस-पास मुझे घेर कर कुछ लोग खड़े थे। इस तरह बातें करते हुए मैं संकोच के मारे गड़ा जा रहा था। धीरे-धीरे मैं बाहर रास्ते की तरफ़ कदम बढ़ाने लगा। सभा के आयोजक भी मेरे साथ-साथ चलने लगे। उनके साथ बातें शुरू कर मैं इस प्रसंग को टाल जाने की कोशिश कर रहा था। मैं एक गण्यमान्य व्यक्ति था, विशिष्ट अतिथि···। दसों आदमियों के सामने वह महिला न जाने क्या-से-क्या कह डाले! मैंने कनखियों से देखा कि उस महिला ने अब तक हमारा साथ नहीं छोड़ा था। वह सिर झुकाए हम लोगों के साथ-साथ ही चलती जा रही थी।

दो-एक लड़के-लड़कियों ने अपनी ऑटोग्राफ-बुक मेरे सामने बढ़ा दी। उसी अँधेरे में मैंने उनकी ऑटोग्राफ-बुक में कुछ लिख दिया। उसके बाद फिर मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

सभा-भवन के पास ही एक सज्जन के निवास-स्थान पर जलपान का आयोजन किया गया था। वहां भी मुझे कुछ समय तक बैठे रहना पड़ा उस समय भी मुझे घेरे बहुत से लोग खड़े थे। इसी बीच किसी ने वही पुराना सवाल दुहराया—"आपके उपन्यास 'साहब बीबी गुलाम' की घटनाएं क्या सच्ची घटनाएं हैं ?"

किसी दूसरे आदमी ने पूछा—"भूतनाथ क्या अभी तक जिन्दा है ?"

और एक आदमी पूछ बैठा—"दरअसल आपने किस हवेली की कहानी लिखी है ? वह हवेली किस रास्ते में है ?"

. . . .

. . . .

जवाब देना पड़ेगा, पता नहीं। सोच रहा था कि अब तक शायद उस महिला से पिण्ड छुड़ा सकूंगा। लेकिन जलपान करते-करते हठात् मैंने देखा कि वह महिला अब तक एक कोने में खड़ी थी।

उस महिला की आंखों की तरफ देखते ही मैं डर गया। वह महिला मानो आंखों-ही-आंखों मुझसे पूछना चाह रही थी—"आपके जो दो नाम हैं, यह बात आपने पहले क्यों नहीं बताई ?"

मैं हठात् उठ खड़ा हुआ। मैंने सबों से कहा—"चलिए···।"

मैं खुद समझ नहीं पाया कि आखिर क्या मुझे इतना डर लगने लगा था। एक अपरिचित-अनजानी महिला··· ! कभी उसे देखा हो, ऐसा तो याद नहीं आया। सभा अच्छी ही हुई थी। भाषण भी खूब जमा था। तालियां भी खूब बजी थीं···। कहीं भी कोई गोलमाल नहीं हुआ। सबों ने मन लगाकर मेरा भाषण सुना था। फिर भी उस महिला के कारण न जाने क्यों मन में आतंक छाने लगा था। वही एक महिला···। आखिर उसने मुझे पहचाना कैसे ? किसी भी दिन किसी भी मौके पर उसे देखा हो, ऐसा तो याद नहीं आया। जिन्दगी भर तो मैं महिलाओं से दूर ही रहता आया हूं। अनेकों महिलाओं ने मुझे पत्र लिखे हैं और मेरे साथ मुलाकात करनी चाही है। अनेकों महिलाओं ने मेरे साथ परिचय स्थापित करने की कोशिशें की हैं। लेकिन किसी भी दिन मैं तो इसके लिए राजी हुआ नहीं। बार-बार उन अनुरोधों को मैंने किसी-न-किसी बहाने टाल दिया है। तो फिर···?

अपनी जिंदगी में विभिन्न अवसरों पर मुझे तरह-तरह के चरित्रों के सम्पर्क में आना पड़ा है। मुझमें कोई दोष नहीं है, मुझ पर कोई कलंक नहीं है—यह बात आज मैं जरूर जोर देकर नहीं कह सकता। फिर भी जिन्दगी के इस मुकाम पर आने के बाद मेरा वह दोष, मेरा वह कलंक कोई भी जान पाये—यह भी मैं नहीं चाहता। जिन लोगों ने मुझे पहले—बहुत पहले—देखा है, जबकि मैं अज्ञात और अख्यात था तथा अबाध-रूप से जहां-तहां घूमा-फिरा करता था; उन लोगों से मेरी भेंट-मुलाकात हो—यह मैं नहीं चाहता। मेरी पहले की कहानी सभी भूल जायें, यही मैंने चाहा है। अपने वर्तमान के पीछे की घटनाओं पर तो मैंने सदा-सर्वदा

परदा डाल देने की कोशिश की है।"

मेरे साथ के लोग मेरे साथ ही थे। मुझे सभी घेरे हुए थे। उनके बीच अपने-आप को छिपाकर मैं चल रहा था। अकेला पड़ जाने की कल्पना से ही मैं सिहर उठता था। हठात् आंखें उठाते ही फिर उसी महिला पर मेरी नजर पड़ी। वह मेरी ही तरफ देख रही थी।

एक लड़के को मैंने चुपचाप बुलाकर उससे पूछा—"वह महिला कौन है? क्या उसे तुम पहचानते हो?"

उस लड़के ने उस महिला की तरफ देखा और कहा—"वह तो यहीं रहती है, सिनेमा-हाउस के पीछे की झोंपड़पट्टी में।"

"लेकिन वह महिला मेरे साथ-साथ क्यों चल रही है?"

उस लड़के ने कहा—"उसकी हालत बहुत खराब है। आजकल···।"

वह लड़का और कुछ कहता, उसके पहले ही हम सभी बड़े रास्ते पर आ पहुंचे। गाड़ी तैयार थी। यह गाड़ी मुझे सीधे कलकत्ता पहुंचा देगी। मैं रुक गया। फिर न जाने क्यों डर लगने लगा। ऐसा लगा कि इन सभी लोगों को अपने चारों तरफ़ रखते हुए ही मैं गाड़ी में बैठ जाऊं और अच्छी तरह दरवाजा बन्द कर लूं। उसके बाद जब एक बार गाड़ी स्टार्ट हो जायेगी तो फिर डर की कोई बात नहीं।

लेकिन हठात् वह महिला सबों को स्तंभित करती हुई मेरे सामने आ गई।

मैं तो डर के मारे थर-थर कांपने लगा। यह याद करने की कोशिश करने लगा कि भला कब मैं अपना असल नाम और परिचय छिपाकर चिनसुरा के सिनेमा-हाउस के पीछे की झोपड़पट्टी में आया था। हो सकता है कि मेरी शक्ल से मिलती-जुलती शक्ल वाले कोई आदमी ने उस महिला के साथ कोई प्रवंचना की हो। हो सकता है कि ग़लत नाम और पता बताकर उसने कोई अन्याय किया हो। लेकिन फिर भी मुझे भला डर क्यों लग रहा था? अगर मेरा मन निष्पाप था, तो फिर भला मुझे इतना भयभीत होने की क्या जरूरत थी? उस वक्त तो मैं सिर्फ यही सोच रहा था कि क्या इतने लोगों के बीच सचमुच मेरी इज्जत धूल में मिल जायेगी? क्या सारे देश के लोग मेरे नाम पर छिः-छिः कर उठेंगे···!!

उस महिला ने हठात् पूछा—"भाग मत जाइएगा। बताइए, जवाब दीजिए···! आपके कितने नाम हैं?"

एक ही पल में मानो एक प्रलयंकारी घटना घट गयी। किन्तु एक पल में मानो मैंने अखिल विश्व की परिक्रमा पूरी कर ली।

एक ही पल···! लेकिन उस महिला के शब्दों ने मानो मेरे जीवन के बीते हुए समस्त समयान्तराल को बिलकुल म्लान कर दिया। मुझे लगा कि मेरे पास कोई मान-सम्मान नहीं···, कोई अर्थ नहीं···। मैं नितान्त अवज्ञा और अवहेलना से घिरा हुआ एक तुच्छ आदमी हूं जो कि एक मामूली-सी औरत की मेहरबानी का याचक होकर चिनसुरा की इस सड़क पर खड़ा है। मेरे गले में पड़ा फूलों का हार और मेरे ये सफ़ेद चक-चक कपड़े—सभी मानो मिथ्या थे। मैं प्रताड़क था, प्रवंचक था और था पाखंडी।

धीरे-धीरे मुझे सारी घटनाएं याद आने लगीं…।

बहुत पुरानी बात है।

इतनी पुरानी बातों को क्या इस तरह याद करना भी पड़ सकता है! और ऐसी हालत में…!!

उस समय क्या मैं जानता था कि एक दिन मुझे इस तरह किसी के जवाब-तलब का सामना करना पड़ेगा! इस तरह इतने लोगों के सामने मुझे इस अपयश-कारी कार्य की सफाई देनी पड़ेगी!! और अगर यह मुझे मालूम ही होता, तो क्या मैं यहां आता—यहां, चिनसुरा के सिनेमा-हाउस के पास के मदरसे में?

सविता, उसकी मां या उनके घर-बार के बारे में मुझे कोई भी जानकारी नहीं थी।

न मैं उन्हें जानता था और न ही फटिक। कहां उनका घर है, कैसा उनका मकान है और उनकी माली हालत कैसी है—यह सब-कुछ भी मुझे मालूम न था। अगर किसी को कुछ मालूम था, तो निकुंज को ही। निकुंज ही आकर उनके बारे में तरह-तरह की खबरें दिया करता।

उन दिनों हम लोग श्रीगोपाल मल्लिक लेन की एक मेस में रहा करते थे। मैं, फटिक और निकुंज—तीनों एक ही कमरे में तीन तख्तपोशों पर सोया करते थे। फटिक ज्यादा रात तक जाग नहीं पाता। रात के दस बजते न बजते उसे नींद आ जाया करती।

निकुंज आधी रात में हठात् अंधेरे में पूछ बैठता—"भैया, सो गये हैं क्या?"

निकुंज को पता था कि मैं देर से सोया करता था। निकुंज जानता था कि मैं लेटा-लेटा तमाम दुनिया की बातें सोचा करता था। उस समय मन बड़ा चंचल था। लेखक बनने की बड़ी साध भी मन में, पर क्या लिखूं, यह समझ में नहीं आता। जो कुछ कहना चाहता था, उसे ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर पाता था। सारे दिन मैं कलकत्ते के गली-कूचों में घूमा करता। मैदान के मोनुमेंट के नीचे बेवजह घंटों बैठा रहता। ये सब द्वितीय महायुद्ध के पहले की बातें हैं। वही कोई वैविध्य नहीं था। ऐसा भी होता कि कभी-कभी मैं अपनी मेस के बाहर निकलता ही नहीं। कॉलेज में गैरहाजिर रहकर मैं अपने कमरे के तख्तपोश पर दिन-भर पड़ा रहता। सामने के मकान की खिड़की पर बैठा कौआ कांव-कांव कर रहा होता, उसे उड़ाकर मैं फिर तख्तपोश पर लेट जाता। मेस के और दूसरे लड़के अपने-अपने काम पर जा चुके होते। नीचे नल के पास महरी का बर्तन मांजने का काम भी खत्म हो चुका होता। उस समय तक भी मैं चुपचाप अपने तख्तपोश पर लेटा रहता। कभी-कभी जाकर लाइब्रेरी में बैठ जाता…। जो भी किताब सामने देखता, उसे ही पढ़ने लगता।

फटिक डाकघर में काम किया करता। उसे भारी खटनी करनी पड़ती थी। दिन-भर धूल फांक कर जब वह मेस में लौटता, तब एक प्याली चाय पीने के बाद

वह स्वस्थ हो पाता। सुबह उसके लिए भीगे हुए चने तैयार रहते। नमक और अदरख के साथ वह चने का ही नाश्ता करता।

फटिक कहता—"भैया, आप हमारे डाकघर पर एक कहानी लिखिए न। अब और मुझसे पार नहीं लगता भैया···।"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

फटिक कहता—"काम का कोई अन्त ही नहीं है भैया। काम क्या है; पहाड़ है, पहाड़···! अच्छा, लोग इतनी चिट्ठियां कहां लिखते हैं; वताइए तो भैया ? किसे लिखते हैं ?"

यह कहकर फटिक तख्तपोश पर चित्त हो जाता। वह जिसे चिट्ठी लिख सके, ऐसा कोई आदमी न था। शायद यही सोच-सोच कर वह हताश हो जाता।

निकुंज काफी रात गये लौटता। वह लड़कों को पढ़ाने जाया करता था। दिन-भर न जाने कहां-कहां वह नौकरी की तलाश में खाक छानता और सुवह-शाम ट्यूशन करता। महीने में पन्द्रह दिन वह खाना खाने का भी समय नहीं पाता। वह खटते-खटते हैरान हो जाता, फिर भी उसे रात में नींद नहीं आती। आजकल के जमाने में ऐसा कहीं भी देखने को नहीं मिलता। उन दिनों दफ्तरों में एक भी जगह खाली नहीं मिलती। दिन भर बैठे-बैठे अखबारों को घोंटना और नौकरी के लिए दरख्वास्त भेजना ही उन दिनों के लड़कों का काम था। वे सब दिन भी मैंने देखे हैं। द्वितीय महायुद्ध के पहले के दिन वैसे ही थे।

हठात् फिर अंधेरे में ही निकुंज धीरे-धीरे बोल पड़ता—"भैया, सो गये हैं क्या ?"

शायद रास्ते में कोई घटना घटी हो या फिर और कोई दूसरी वात ही निकुंज को याद आ गयी हो। वही बात कहना चाहता हो निकुंज ? निकुंज जो कुछ भी बोलेगा, रात में ही। फटिक दिन-भर डाकघर में खटने के बाद उस समय तक गहरी नींद में डूवा होता। उसकी तरफ से कोई भी बात नहीं होती। किन्तु जिस तरह मैं वेवजह की चिन्ताओं में डूवा रहता, निकुंज के साथ भी वैसा ही होता। किसी की भी आंखों में नींद नहीं होती!

निकुंज बीच-बीच में कहा करता—"देखिये भैया, एक दिन जरूर आपका नाम होगा। आप देख लीजिएगा···।"

मैं कहता—"तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर···।"

"लेकिन जो कुछ मैं कहता हूं, वही लिखिए। फिर कोई भी वेटा आपको आगे बढ़ने से रोक नहीं पायेगा। वेकारी और दुख-दारिद्र्य की कहानी—भैया, फिर कभी मत लिखिए। इन सवों में क्या रखा है···! आप हजारों कहानियां लिखकर भी हमारा दुख मिटा नहीं सकेंगे।"

"तो फिर किसके बारे में लिखूं ?"

निकुंज कहता—"क्यों ? प्यार तो है···! प्यार-मुहब्बत की कहानियां नहीं लिख सकते क्या ? वड़े लोग जिस तरह प्यार करते हैं, क्या आप सोचते हैं—गरीब

लोग प्यार नहीं कर सकते ?"

मैं कहता—"गरीब आदमी अपनी रोजी-रोटी के बारे में सोचेगा या प्यार-मुहब्बत के चक्कर में पड़ेगा ?"

"तब तो आप लिख चुके कहानियां ! बन चुके लेखक···। भैया, आपकी बातों पर तो बस ठहाका मार कर हंसने को जी चाहता है ।"

मुझे गुस्सा आ जाता। मैं कहता—"तुम जो कुछ जानते नहीं, उसके लिए बेकार ही माथापच्ची करने की तुम्हें जरूरत नहीं। इसके बजाय तुम नौकरी ढूंढ़ने की कोशिश करो। चार पैसे कमाने की सोचोगे तो कुछ काम भी होगा।"

इसके बाद निकुंज और कुछ नहीं कहता। अंधेरे में हम दोनों फिर चुपचाप लेटे रहते। मैं अपनी कहानियों और अपने उपन्यासों के बारे में सोचता और शायद निकुंज नौकरी पाने की चिन्ता-फिकर में डूब जाता।

उस रात भी निकुंज, फटिक और मैं—सभी सोये हुए थे।

निकुंज हठात् पूछ बैठा – "भैया, सो गये हैं क्या ?"

मैंने पूछा —"क्यों ?"

निकुंज ने पूछा—"भैया, 'जलद' का क्या अर्थ होता है ?"

मैंने जवाब दिया --" 'जलद' माने बादल···।"

निकुंज ने पूछा--"बादल ? क्या आप ठीक जानते हैं ?"

मैंने कहा—"हां बाबा, ठीक जानता हूं ।"

निकुंज बोला—"लेकिन 'जलद' का मतलब तो होता है कमल का फूल ।"

मैंने पूछा—"आखिर आधी रात में तुझे 'जलद' के माने की क्या जरूरत पड़ गयी निकुंज ?"

निकुंज ने मेरी बातों का कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन सुबह उठते ही उसने मुझसे पूछा—"भैया, क्या आपके पास डिक्शनरी है ?"

"क्यों ? डिक्शनरी लेकर क्या करोगे ?"

"यही, 'जलद' का अर्थ देखता एक बार।"

मैंने कहा—"मैं तो तुम्हें बता ही चुका हूं कि 'जलद' माने बादल···।"

निकुंज बोला—"आप ठीक ही कहते होंगे, आप ठहरे एम० ए० के छात्र। लेकिन मुझसे तो भारी भूल जो हो गयी है···"

मैंने पूछा—"कैसी भूल ?"

निकुंज बिना कुछ कहे चला गया। निकुंज ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। फिर भी उसे ट्यूशन करना पड़ता था और कहीं भी मामला अटक जाने पर यह मुझसे पूछा करता था। एक-न-एक दिन वह मेरी नींद खराब कर गणित के सवाल हल करवाने लगता। कहा—"जरा यह हिसाब बता दीजिए न भैया, नहीं तो मुझे बिल्कुल बेइज्जत हो जाना पड़ेगा।"

वह फिर कहता—"देखिए न भैया, आजकल आठवीं क्लास में ही कैसे-कैसे भारी हिसाब दिये जाते हैं ! लड़के-लड़कियों को फेल कराने से इन स्कूल वालों को क्या फायदा होता है, बताइए तो ?"

निकुंज अपनी बातें जारी रखते हुए फिर कहता—"यह देखिये···, यह हिसाब ! पिता और पुत्र की उम्र मिलाकर 80 साल होते हैं। दस साल पहले पिता की उम्र पुत्र की उम्र से दुगुनी थी। तो पिता और पुत्र की वर्तमान उम्र, बताइए कितनी होगी ? देख रहे हैं न आप, कितना कठिन हिसाब है। इस हिसाब को बनाने में मुझे ही जब पसीना छूट रहा है तो फिर आठवीं क्लास की लड़की की तो बात ही क्या है ?"

"लड़की !"

मैंने पूछा—"तुम अब लड़कियों को भी पढ़ाने लगे क्या ? इसके पहले तो कभी तुमने बताया नहीं ?"

निकुंज ने कहा—"भैया, आप नाराज हो जाते। इसीलिए आपसे मैंने कुछ कहा नहीं।"

मुझे हंसी आ गयी। मैंने कहा—"तुम्हारी जो मर्जी हो सो करो। इसमें मेरे नाराज होने की भला बात ही क्या है ? किन्तु उस लड़की का ही भविष्य चौपट हो रहा है। तुम खुद ही आठ क्लास तक पढ़े हो कि नहीं, इसी में मुझे सन्देह है।"

"क्या करता भैया ? उसकी मां ने मेरा पिंड छोड़ा ही नहीं।"

"किसकी मां ने ?"

निकुंज बोला—"भैया, सविता की मां ने।"

मैंने निकुंज को और ज्यादा कुरेदा नहीं। कौन थी सविता, कौन थी सविता की मां, कहां उनका घर था—ये सब बहुत सी बातें पूछने को थीं। लेकिन उस दिन मैंने किसी तरह अपनी उत्कंठा को शांत कर लिया। निकुंज ने भी और ज्यादा बातें नहीं कीं। मैंने लक्ष्य किया कि नहाते-नहाते निकुंज गुन-गुनकर कोई गाना गुनगुनाया करता। बाहर से ही वह गाना सुनाई पड़ता। हठात् भीगे कपड़ों में स्नान-घर से बाहर आते-आते मुझे देखते ही वह गाना बन्द कर देता। कभी मैं देखता कि वह बार-बार दाढ़ी बना रहा है। कभी वह दीवार पर टंगे आईने में बार-बार अपना चेहरा निहारा करता। या फिर कभी मैं उसे बार-बार अपने कपड़ों को साबुन से साफ करते देखता। मैंने लक्ष्य किया कि वह अक्सर खूब बन-संवर कर बाहर निकला करता ?"

उस दिन आधी रात को हठात् निकुंज की आवाज कानों में आयी—"भैया, सो गये हैं क्या ?"

मैंने कहा—"बोलो, निकुंज।"

निकुंज ने पूछा—"आप नाराज तो नहीं होंगे न ! एक गुप्त परामर्श करना था।"

गुप्त परामर्श !

खिला दिया है उसने।"

फिर हठात् किसी दिन वह रात में मुझसे कहता—"भैया, सो गये हैं क्या ?"

मैं कहता—"बोलो, क्या बात है ?"

निकुंज कहता—"इतनी देर के बाद अब फटिक सोया है। इसीलिए मैं अब तक चुप था। अच्छा, एक सवाल हल कर दीजिएगा क्या ? दो संख्याओं का गुणन-फल 816 है, एक संख्या अगर 51 है तो दूसरी क्या होगी ?"

मुझे गुस्सा आ गया था। मैंने कहा—"इसी बलबूते पर तुम भला आठवीं क्लाश की लड़की को पढ़ाने क्यों जाते हो, बोलो तो ? आखिर तुम खुद कहां तक पढ़े हो ?"

निकुंज कहता—"मैं कहां तक पढ़ा हूं, यह तो आप से छिपा नहीं भैया। लेकिन उन लोगों से मैंने बतलाया है कि मैं बी० ए० पास हूं।"

बी० ए० पास !

मैंने पूछा—"तुमने बताया और उन लोगों ने विश्वास भी कर लिया ?"

"विश्वास क्यों नहीं करते ? मैं तो उन लोगों से ट्यूशन पढ़ाने की कोई फीस भी नहीं लेता !"

मैंने पूछा—"बगैर रुपये लिये पढ़ाने में आखिर तुम्हें फायदा क्या है ?"

पल-दो पल के लिए निकुंज न जाने क्यों गंभीर हो गया। उसके बाद उसने पूछा—"फायदा ?"

वह मेरी तरफ देखता रहा। मानो वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या कहे ! या फिर मानो शर्म के मारे वह कुछ कह नहीं पा रहा था।

उसके बाद कुछ सकुचाते हुए उसने कहा—"वे सब आदमी किन्तु बहुत बढ़िया हैं, भैया।"

मैंने कहा—"वे बढ़िया आदमी हैं, इसीलिए शायद उनसे झूठ बोलकर तुम धोखाधड़ी कर रहे हो ! तुम बी० ए० पास हो, आखिर ऐसी बात तुमने कही ही क्यों ?"

निकुंज ने कहा—"अगर अपने-आप को मैं बी० ए० पास नहीं बताता तो मुझे वे लोग मास्टर रखते ही नहीं।"

मैं इन सब बातों के बारे में जानता नहीं था। इसके लिए मैंने निकुंज के साथ डांट-डपट भी कम नहीं की। झूठ बोलकर और झूठा परिचय देकर लड़कियों के साथ घुलने-मिलने और उनका सर्वनाश करने की प्रवृत्ति की मैंने निकुंज के सामने बहुत निन्दा की थी। उन लोगों का प्रसंग छिड़ते ही मैं निकुंज से कहा करता—"तुम और अब उन लोगों के पास मत जाया करो, निकुंज। वहां तुम्हारा जाना उचित नहीं।"

निकुंज ने वादा किया—"नहीं भैया, मैं आपसे वादा करता हूं कि फिर वहां कभी कदम नहीं रखूंगा।"

मैं कहता—"हां, तुमने अपनी जिन्दगी तो बर्बाद की है ! साथ ही एक निष्पाप

गये हैं क्या ?"

और उसके वाद जब मैंने सुना कि सविता के लिए लड़का ढूंढ लिया गया है, तब मैं और भी निश्चिन्त हो गया।

मैंने कहा—"चलो, अच्छा ही हुआ। अब उस घर की तरफ कभी झांकना भी नहीं।"

निकुंज ने कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं भैया ? मैं ही तो वह लड़का हूं, जिसके साथ सविता की शादी होगी। पहले शर्म के मारे मैंने आपसे बताया नहीं।"

मैं तो मानो आकाश से नीचे गिर पड़ा। सविता की शादी निकुंज के साथ ? निकुंज ही वह लड़का है जो सविता के साथ विवाह करेगा !

"लेकिन एक मुसीबत आ गई है भैया। आपको मेरा थोड़ा-सा काम करना पड़ेगा आपको मेरी थोड़ी मदद करनी पड़ेगी। आपकी मदद के बिना यह शादी नहीं हो सकेगी।"

फटिक ने शायद करवट बदली। निकुंज भी काफी देर तक चुप ही रहा।

उसके बाद फिर उसने फुसफुसा कर पूछा—"भैया, सो गए हैं क्या ?"

मैंने कहा—"मैं तुम्हारी कोई भलाई नहीं कर सकूंगा। तुम इस समय चुपचाप सो जाओ।"

उसके बाद निकुंज ने उस रात कितनी ही बार मुझे पुकारा, लेकिन मैंने कोई भी जवाब नहीं दिया। सुबह उठने के बाद फिर निकुंज मुझसे बात करना चाहता था, परन्तु फटिक की मौजूदगी की वजह से उसे मौका नहीं मिला। उसके बाद मैं भी मेस के बाहर चला गया।

लेकिन उस दिन रात में फिर निकुंज की कातर पुकार सुनाई पड़ी—"भैया, सो गये हैं क्या ?"

मैंने कहा—"बोलो, क्या बात है ?"

फटिक उस समय नींद में बेसुध था। फटिक घोर नींद में डूबा हुआ था, यह साफ पता चल रहा था। उसकी तरफ से किसी तरह की अड़चन नहीं थी। इसीलिए निकुंज पिछली रात की अपेक्षा अधिक साहस संजो सका था। उसने बड़े ही रुआंसे स्वर में कहा—"भैया, यदि आप मेरी मदद नहीं करेंगे, तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। मैं संन्यासी बनकर हिमालय में चला जाऊंगा। यह मैं आपसे बता रखता हूं भैया···।"

मैंने निकुंज की बातों का कोई भी जवाब नहीं दिया।

निकुंज ने कहा—"भैया, मेरे न तो मां-बाप हैं और न ही भाई-बहन। इसीलिए मैंने हमेशा आपको बड़ा भाई माना है। अगर आप भी विपत्ति के इस समय में मुंह मोड़ लेंगे, तो फिर मैं जिन्दा रहकर क्या करूंगा ?"

यह कहकर सचमुच निकुंज फूट-फूटकर रोने लगा।

मुझे भी बड़ा खराब लगा। मैंने पूछा—"भला तुम क्या मदद चाहते हो,

जरा मुनू भी तो !"

निकुंज की रुलाई रुक गई। उसने कहा—"आपको अधिक कुछ नहीं करना पड़ेगा। आपको सिर्फ एक बार उन लोगों के घर पर चलना होगा।"

मानो मुझे अभी और भी अचम्भे में पड़ना था।

मैंने निकुंज से पूछा—"क्या मुझे उन लोगों के घर पर जाना होगा ? सविता के घर पर ?"

"हां भैया, उन लोगों ने एक बार आपको बुलाया है।"

"लेकिन मुझे क्यों बुलाया है उन लोगों ने ?"

"भैया, आपको मेरी तरफ से गवाही देनी पड़ेगी।"

"गवाही ?"

निकुंज ने कहा—"हां भैया···। आपकी गवाही के बिना यह शादी हो ही नहीं सकेगी। वे लोग मेरी बातों पर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। आप वहां जाकर सविता की मां से कहेंगे कि मैं बी० ए० पास हूं। गांव में हम लोगों का एक बड़ा मकान है। किसी जमाने में हमारे पास बेशुमार धन-सम्पत्ति थी, किन्तु अब हमारी माली हालत पहले की भांति अच्छी नहीं रही। आप यह भी कहेंगे कि मेरे साथ शादी होने पर सविता को कोई कष्ट नहीं होगा। सविता राज करेगी, राज···। आपको भैया यही गवाही देनी पड़ेगी।"

जो इतनी झूठी बातें कहने का अनुरोध कर सकता है, वह मेरी समझ में आदमी का गला भी काट सकता है। निकुंज की बातें सुनकर और उसकी हिम्मत देखकर मैं दंग रह गया।

ये सब बहुत पुरानी बातें हैं। क्यों पुरानी···! हृदय-पटल पर यादों की जो भव्य अट्टालिकाएं कभी बनी थीं, सिर्फ उन्हीं की स्मृति आज शेष है। किन्तु उनके भग्नावशेष की याद क्या इतने दिनों के बाद कायम रख पाना मुमकिन है ? मुझे याद है कि आखिरकार निकुंज मेरे पैरों पर गिरकर फूट-फूट कर रोने लगा था। निकुंज कहने लगा था—मेरा भला अगर हो रहा हो, तो इसमें आपका नुकसान क्या है भैया ? मेरी खातिर आप थोड़ा-सा झूठ कह ही देंगे, तो इसमें आपका क्या बिगड़ जायेगा भैया ?

सवाल सच या झूठ का नहीं था। उस दिन मैंने सच या झूठ की बात सोची भी नहीं थी। मैंने तो सिर्फ यही सोचा था कि किसी भोली-भाली लड़की के साथ प्रवंचना कर निकुंज यदि उसका सर्वनाश करता है तो भला मैं क्यों उस पाप का भागी बनूं। भला मैं क्यों इस धोखाधड़ी की जिम्मेवारी अपने माथे पर लूं ! निकुंज की जो मर्जी हो सो करे। मेरा इसमें क्या बनता-बिगड़ता है ! भला मैं निकुंज का क्या लगता हूं और वह लड़की ही भला मेरी क्या लगती है ? मेस के एक कमरे में रात बिताने के सिवाय निकुंज के साथ मेरा सम्पर्क ही क्या है ? भला क्यों मैं बेवजह अपनी शिक्षा-दीक्षा और मान-प्रतिष्ठा को इस तरह दांव पर

लगाने जाऊंगा ?

दो-चार दिनों तक मैंने कुछ न कहा । मैंने निकुंज के साथ बातचीत ही नहीं की ।

मैंने कहा—"भाई, तुम और किसी दूसरे आदमी को पकड़ो । मेरे द्वारा यह सब काम होने का नहीं ।"

लेकिन मेस के रसोइए के मुंह से हठात् मैंने एक दिन सुना कि निकुंज कुछेक दिनों से भात नहीं खा रहा था । वह कब आता, कब जाता और कब सोता, इसकी कुछ खबर ही नहीं मिलती । एक दिन मैंने उसे देखा··· । बिखरे-बिखरे बाल थे और उतरा हुआ चेहरा···! मुझे देखकर वह बच कर निकल जाना चाहता था । लेकिन मैंने उसे बुलाया और पूछा— "क्या हाल-चाल है ? कहां छिपे रहते हो आजकल ?"

निकुंज ने मुंह झुकाए जवाब दिया—"मेरा भला क्या हाल-चाल होगा ? जिन्दा हूं, किसी तरह, बस···।"

मैंने पूछा—"और वे सब कैसे हैं ? तुम्हारी वह छात्रा···?"

"वे लोग भी ठीक ही हैं ।"

मैंने पूछा—"क्या उस लड़की की शादी हो गई है ?"

निकुंज ने कहा—"आपने तो कुछ किया नहीं । वह शादी भी वैसे ही अधर में झूल रही है ।"

मैंने पूछा—"क्या तुम सचमुच उस लड़की से शादी करना चाहते हो ?"

निकुंज ने कहा—"सो तो मैं आपसे बता ही चुका हूं भैया ।"

"तो फिर मेरे सामने तुम प्रतिज्ञा करो कि शादी होने पर तुम उस लड़की को किसी तरह की तकलीफ नहीं दोगे ।"

निकुंज ने कहा—"आदमी जिससे प्यार करता हो, उसे क्या वह कभी कोई तकलीफ दे सकता है ?"

"तकलीफ दे सकता है या नहीं दे सकता है, यह सब सुनने की मुझे जरूरत नहीं । तुम उसे तकलीफ नहीं दोगे तो, बस यही बताओ ?"

"मैं आपके सामने कसम खाकर कहता हूं कि मैं उसे कभी कोई तकलीफ नहीं दूंगा ।"

मैंने पूछा—"अगर खाने-पीने की तकलीफ हुई तो तुम उस लड़की के मकान को बेच नहीं दोगे तो ?"

"हर्गिज नहीं भैया, हर्गिज नहीं··· । मैं आपसे वादा कर रहा हूं । आपके चरणों की सौगन्ध खाकर मैं कह रहा हूं···।"

मुझे याद है कि मैं आखिरकार निकुंज के अनुरोध को मानकर शशि हलदर लेन के उस मकान में गया था । छोटा-सा एकतल्ला मकान था··· । सामने सीढ़ियां थीं । घर से लगा हुआ फूलों का गाछ था··· । मेरे साथ निकुंज भी था । सविता की विधवा मां के नाम पर ही वह मकान था । सविता के पिता का नाम था विपिन विहारी विश्वास या विपिन विहारी राय ठीक याद नहीं··· । निकुंज ने ही सब

कुछ बताया था। एक पुत्री के जन्म लेने के बाद ही मा विधवा हो गई थी। उसके बाद किसी तरह बहुत-सी मुसीबतें उठाकर मा ने अपनी लड़की को पढ़ाया-लिखाया था; बडा किया था। यह आवारा निकुंज उस जगह कैसे जा पहुंचा, कौन जाने ?

निकुंज ने ही घर का दरवाजा खटखटाया। भीतर से किसी ने दरवाजा खोला और निकुंज ने न जाने क्या फुसफुसा कर उससे कहा। उसके बाद उसने मुझे पुकार कर कहा—"आइए भैया, भीतर चले आइए···।"

मैं किस तरह सारा नाटक पूरा कर पाऊंगा, मैं इसी फिक्र मे पड़ा हुआ था।

निकुंज ने कहा—"आप अपना नाम बतायेंगे—रमेश गागुली। आप यह भी बताइएगा कि पवना मे आपका अपना मकान है और मैं आपका चचेरा भाई लगता हू। देखिए, भूल-चूक न हो··।"

मैं कमरे के भीतर तख्तपोश पर बैठा हुआ था। निकुंज झट-पट एक ताड़ का पंखा लेकर मुझे हवा करने लगा। उसने कहा—"मैंने मा को बुलवाया है। वे अभी तुरत आ रही है।"

उस दिन के उस झूठे अभिनय के लिए आज मुझे चिनसुरा की इस सड़क पर खड़े होकर अपनी सफाई पेश करनी होगी, काश, पहले मुझे य पता होता ! ससार मे सभी अपराधों के लिए एक दिन जवाबदेही का सामना करना पड़ता है, काश यही मुझे पहले मालूम होता ! काश, पहले मुझे पता होता कि निकुंज अपने वादे इस तरह चकनाचूर कर डालेगा।

मुझे याद है कि एक-एक कर उस महिला ने बहुत-से सवाल कर डाले थे। अपनी सफेद साड़ी बदल कर वह महिला मेरे सामने आई थी। मैं तख्तपोश पर बैठा हुआ था और वह महिला खड़ी-खडी मुझसे सवाल कर रही थी।

उसने पूछा—"तुम्हारा ही नाम रमेश गागुली है न ? तुम्ही तो निकुंज के बड़े भाई हो न ?"

मैने कहा—"हा, निकुंज मेरा चचेरा भाई लगता है।"

"बहुत बढ़िया भैया···। निकुंज अक्सर तुम्हारी चर्चा किया करता है। निकुंज तो हमारे घर के लड़के के समान ही हो गया है। ऐसा लड़का भाई, चिराग लेकर ढूढ़ने पर भी नही मिल सकता। अगर वह न होता तो न जाने हम लोगो पर क्या बीतती ? मेरी बीमारी के समय उसने मेरी कितनी सेवा की थी। खुद अपने पेट का लड़का भी ऐसी सेवा नही कर पाता।···तुम्हारे लिए कुछ जलपान ला दू भैया ?"

"नही-नही, रहने दीजिए। मैं खाकर ही आया हूं।"

निकुंज ने कहा—"मै ले आता हूं जलपान।"

यह कहकर वह दौड़ता हुआ भीतर चला गया।

उस महिला ने कहना शुरू किया—"तुम तो समझ ही रहे हो बेटे। मामला ठहरा लड़की की शादी का। थोड़ी खोज-खबर तो लेनी ही पड़ती है। इसीलिए

तुम्हें बुलवाया है। मेरे पास तो रुपये-पैसे कुछ हैं नहीं। जो कुछ भी है, वह यह कन्या-कलश ही है…। फिर भी अपनी लड़की का हाथ जिस किसी के भी हाथों में तो नहीं दे सकती। वैसे निकुंज का स्वभाव और चरित्र तो मैं इतने दिनों से देखती आ रही हूं। और फिर जब वह बी० ए० पास है, तब…।"

मैंने कहा—"हां-हां, वह बी० ए० पास है।"

उस महिला ने कहा—"इसीलिए तो मैं कहती हूं कि बी० ए० पास लड़का भला मैं कहां से ढूंढ पाऊंगी? मेरे पास कौन-से रुपये-पैसे हैं या सोना-चांदी! वे इस मकान को बनवा गये थे, सो किसी तरह सर छुपाने की जगह मिली हुई है।"

मैंने धीरज बंधाते हुए कहा—"नहीं, निकुंज को दामाद बनाने में आपको किसी तरह की हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। पढ़ा-लिखा लड़का है। कोशिश पैरवी करके किसी तरह कोई बढ़िया नौकरी वह हासिल कर ही लेगा। और फिर हम लोग भी तो हैं…।"

उस महिला ने पूछा—"तो फिर तुम अपनी सम्मति दे रहे हो तो? मुझे तो भैया, बड़ा डर लगता है।"

मैंने कहा—"नहीं, डरने की कोई बात है ही नहीं। हम लोगों का खानदान बड़ा ही ऊंचा खानदान है। गांगुली-बाड़ी का नाम बताने पर आप जिससे भी वहां पूछिएगा, वही समझ जायेगा। इन दिनों जरूर हम लोगों की आर्थिक अवस्था पहले की भांति नहीं रह गई है।"

उस महिला का मुख मानो खुशी से खिल उठा। उसने पुकारा—"मुन्नी, ओ मुन्नी…।"

भीतर से एक किशोरी बाहर आई। उस महिला ने कहा—"सविता, इन्हें प्रणाम करो। ये निकुंज के बड़े भैया हैं।"

वह लड़की ज्योंही मुझे प्रणाम करने के लिए नीचे झुकी, त्योंही मैंने अपने पैर हटा लिये। मैं बड़ा ही परेशान हो रहा था।

उस महिला ने अपनी लड़की की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"अपनी लड़की है, इसलिए नहीं कह रही हूं बेटे। लेकिन ऐसी लक्ष्मी-स्वरूप बहू तुम और कहीं भी देख नहीं सकोगे। पढ़ाई-लिखाई, सिलाई-बुनाई और चौका-चूल्हा सभी मैंने इसे मन लगाकर सिखाये हैं।"

उसके बाद उसने अपनी लड़की से कहा—"जाओ बेटी, भैया के लिए जलपान का प्रबंध करो।"

लड़की के चले जाने के बाद उस महिला ने पूछा—"तो भाई, तुम्हारी शादी कहां हुई है?"

अचानक इस सवाल पर मैं घबरा गया। इस सवाल के जवाब के लिए तो मैं तैयार होकर नहीं आया था। क्या जवाब दूं, ठीक समझ नहीं पा रहा था। इसी बीच मैंने देखा कि निकुंज एक तश्तरी में रसगुल्ले रखे कमरे के भीतर आ रहा था। उसने स्थिति को संभालते हुए कहा—"भैया की शादी हुई है रामपुरहाट में,

मुखर्जियों की हवेली में।"

उस महिला ने पूछा—"तो फिर वहू रानी कहा है?"

निकुंज ने ही मेरी तरफ से जवाब दिया—"भाभीजी तो अभी रामपुरहाट में ही है। भैया यहीं कलकत्ते में मेस में रहते है। एम० ए० में पढ रहे हैं। इस साल एम० ए० पास कर लेंगे, तो फिर नौकरी करने लगेंगे। उसके बाद किराये का मकान लेकर ही भैया भाभी को लेकर कलकत्ता आ जायेंगे। तब फिर हम दोनों भाई अपनी-अपनी वहू के साथ इकट्ठे ही रहेंगे। फिर हम लोगों को कोई मुश्किल नहीं होगी।"

उस महिला ने पूछा—"गाव में तुम्हारे कौन-कौन है? तुम्हारे चाचा, ताऊ''!"

मैं कहने जा रहा था—'चाचाजी तो बीमार हैं'''।' लेकिन निकुंज बीच ही में बोल उठा—"ताऊजी को गुजरे आज सात साल हो रहे हैं। क्यों भैया, सात साल ही न?"

मैंने कहा—"हां-हां, सात साल'''।"

निकुंज ने कहना शुरू किया—"ताऊजी के गुजरने के बाद से ही हम लोगों की हालत खराब होने लगी। मेरे पिताजी और छोटे चाचाजी—सबों का पालन-पोषण ताऊजी ने ही किया था। मेरे ताऊजी—यही रमेश भैया के पिताजी—आदमी नहीं थे, देवता थे, देवता'''।"

"बेटे, लो मुह मीठा करो।"

मैंने कहा—"इन सबों की भला क्या जरूरत थी?" यह कहकर मैंने एक रसगुल्ला अपने मुंह में डाल लिया।

उस महिला ने कहा—"मेरे पास तो खोज-खबर लेने वाला कोई आदमी भी नहीं है। मैं अकेली हू, एक दुखियारी विधवा मा। निकुंज इस घर के लडके के समान हो गया है। जब भी कोई काम आया, इसी ने पूरा किया है। इसे मैं पढ़ाने की फीस तक नहीं दे सकी। मुन्नी की पढाई-लिखाई की देख-भाल इतने दिनों से निकुंज ने ही की है।"

मैंने कहा—"आप बिना किसी हिचकिचाहट के निकुंज को अपना दामाद बना सकती हैं।"

नकर ही मैं अपनी लडकी का
करने वाला और भला है ही

कहते-कहते हठात् उस महिला ने अपने आचल से आसू पोंछ डाले। कुछ देर तक वह अपने मुह से एक शब्द भी नहीं निकाल पाई। उसके बाद किसी तरह अपने-आप को सभाल कर वह कहने लगी—"आखिरी वक्त उनके मुह से एक शब्द भी नहीं निकला भैया। उनकी तो बोली ही बन्द हो चुकी थी। मैंने उनके मुह के पास अपना मुह ले जाकर पूछा था—आप कुछ कहना चाहते है क्या? लेकिन उनकी तो बोलने की शक्ति ही जा चुकी थी, क्या बोलते वे? उस समय [illegible]

हालत हुई थी, तुम्हें मैं कैसे समझाऊं वेटे ! मैं अकेली ही रोने लगी। मुन्नी उस समय इत्ती-सी ही थी। एक हाथ से उसे मैंने गोद में संभाल रखा था और दूसरा हाथ उनके ऊपर···।"

कुछ कहे विना अच्छा नहीं लगता। इसीलिए मैंने पूछा—"घर पर क्या उस समय और कोई भी नहीं था ? पास-पड़ोस का कोई आदमी, या फिर कोई रिश्तेदार ?"

"कोई नहीं था भैया, कोई नहीं। एक भी आदमी पास में नहीं था, जिसके पास घंटे भर भी अपनी मुन्नी को छोड़ कर निश्चिन्त हो पाती।"

"उसके वाद ?"

इस वार निकुंज वोल पड़ा। उसने कहा—"सिर के ऊपर भगवान का ही भरोसा था भैया। गरीवों का और होता ही कौन है भला ?"

"निकुंज ने ठीक ही कहा है। भैया, मैंने हमेशा भगवान के ऊपर विश्वास करके ही अपने दिन विताये हैं। जव वे जिन्दा थे, उस समय भी मैंने कभी किसी की खुशामद नहीं की। यह मकान जो वे वनवा गये हैं, यह भी भगवान की ही दया है। नहीं तो भला वे छापाखाने की नौकरी से रुपये ही कितने कमा पाते थे ? इसी-लिए किसी तरह अपना पेट काट कर कुछ रुपये जोड़े थे और उसी से यह मकान वनाया गया। यह मकान है, इसीलिए कम-से-कम सिर छिपाने के लिए एक जगह तो है। उसके वाद तुम्हारे-जैसे दो-चार भले आदमियों के सहारे अपनी लड़की को पाल-पोस कर वड़ा कर सकी हूं। लड़की के स्कूल की हेड दीदी के पास जाकर मैंने कहा था—यह है एक असहाय विधवा मां की वेटी। मैं फीस नहीं दे सकूंगी, लेकिन इसे आपको पढ़ाना पड़ेगा ही···सो एक तरफ जहां मेरी किस्मत फूट गयी थी, वहीं दूसरी तरफ भगवान ने सहारा भी दिया। मैं तो पहले सोच भी नहीं पाती थी कि मैं एक दिन इस लड़की को वड़ा कर पाऊंगी, पढ़ा-लिखा पाऊंगी। सो जव सव कुछ हुआ है, तो फिर भला शादी में ही कोई रुकावट क्यों आयेगी ? आखि मेरी किस्मत ने जोर मारा और मुझे निकुंज-जैसा लड़का भी मिल गया। तुम्हा साथ वातें करके मुझे वड़ी तसल्ली हुई है। क्या मेरी मुन्नी ने कभी सोचा भी कि उसकी शादी एक वी० ए० पास लड़के से होगी ! और फिर खानदान भी कितना ऊंचा है !"

काफी वातें हो चुकी थीं। इसके वाद मैं और क्या कहूं, यह समझ में नहीं रहा था। आखिरकार मैंने कहा—"अच्छा, अव मैं चलता हूं।"

"यह क्या भैया, आये नहीं कि चलने की वात करने लगे। हमारी सि तुम्हें पसंद है तो···।"

मैंने कहा—"आपको निकुंज पसंद है, यही काफी है।"

"यह क्या कह रहे हो भैया ? माथे के ऊपर भगवान है, तभी तो तुम मुझे मिल गये। निकुंज को अगर एक नौकरी मिल जाती तो···। और फिर मिलेगी क्यों नहीं ? निकुंज वी० ए० पास जो है···।"

निकुंज ने उसी लय में कहा—"नौकरी तो मैं कभी का पा जाता। मुझसे कितनी वार कहा है। भैया जव चाहें, मुझे नौकरी दिला सकते हैं।"

उस महिला ने कहा—"तो फिर भैया, निकुंज के लिए एक नौकरी ढूंढ ही दो न ! अब तो तुम्हारे भाई की शादी पक्की हो गयी। नौकरी मिल जाने पर मैं और भी बेफिक्र हो पाती। निकुंज को नौकरी मिल जाये तो मैं फिर चैन से अपनी आखें मूंद सकूंगी।"

मैंने कहा—"हां, अब इसके लिए एक नौकरी तो ढूढ़नी ही पड़ेगी।"

उस महिला ने पूछा—"तो फिर भैया, शादी कब की पक्की करना चाहते हो। इस महीने में तो सिर्फ दो दिन बाकी है। इतनी हड़बड़ी मे क्या इस शादी का काम निपट पायेगा।

मैंने कहा—"क्यो नही निपट पायेगा? यह कलकत्ता महानगरी है, यहा चिन्ता-फिक्र किस बात की है? अब देर करने से क्या फायदा?"

उस भद्र महिला ने कहा—"नही, सो तो तुम ठीक कह रहे हो। लेकिन इतने सारे काम आखिर करेगा कौन?"

मैंने कहा—"मैं हू, निकुंज है। निकुंज अकेला ही सारा काम कर सकता है।"

निकुंज ने हठात् कहा—"क्या भैया आपको याद नही? आपकी शादी के वक्त तो सारी खरीदारी मैंने ही की थी!"

उस भद्र महिला ने कहा—"मेरी लड़की की शादी तो कोई धूम-धड़क्के मे होगी नही भाई। अगर वे जिन्दा रहते तो कर्ज लेकर भी मैं कुछ खर्च कर पाती···।"

मैंने कहा—"नही-नही, इस तरह की चिन्ता-फिक्र में आप क्यो पड़ती है। अगर रुपये बचेंगे, तो वे निकुंज के ही काम आयेंगे। आप अगली पच्चीस तारीख की शादी पक्की कर दीजिए।"

मैं यह कहकर चला आ रहा था कि हठात् मां ने अपनी बेटी को बुलवाया।

"मुन्नी, ओ मुन्नी! जरा सुनो तो···।"

मुन्नी आयी। पहले की भाति ही उसने मेरे पैर छूकर मुझे प्रणाम किया।

उस भद्र महिला ने कहा—"भैया, इसे आशीर्वाद दो कि यह जीवन मे सुखी हो···।"

मैंने उसे आशीर्वाद दिया। क्या आशीर्वाद दिया, यह आज याद नही। गनीमत यही थी कि आशीर्वाद मन-ही-मन दिया जा सकता है। मुझे याद है कि मैंने उस लड़की को दूसरी बार अच्छी तरह देखा था। तन्दुरुस्ती अच्छी थी···। चेहरा ऐसा लगा मानो साक्षात् मा लक्ष्मी का रूप हो। बड़ी-बड़ी दो कजरारी [illegible] मन-ही-मन [illegible] ई। आखिर [illegible]

बाहर सड़क पर आने के बाद निकुंज ने मेरे पैर छूने का उपक्रम किया।

उसने कहा—"भैया, किस तरह आपको धन्यवाद दूं! मेरा अगर कोई सहोदर भाई होता, तो वह भी मेरे लिए इतना नही करता—जितना आपने किया है।"

अभी तक मेरे मन में पश्चाताप की आग धधक रही थी।"

मैंने कहा—"मैंने तुम्हारे लिए बड़ा ही पाप का काम किया है, निकुंज। लेकिन शादी के बाद यदि तुम लड़की को तकलीफ दोगे तो तुम्हारा कभी भला नहीं होगा, यह कहे रखता हूं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं भैया? मैं उसे तकलीफ दूंगा? आप जानते नहीं भैया, अगर जरूरत पड़े तो मैं उसके लिए अपने प्राणों की भी बाजी लगा सकता हूं।"

मैंने कहा—"प्राणों की बाजी लगाने की जरूरत नहीं। उसे तुम किसी तरह की तकलीफ न दो, यही काफी होगा।"

उस लड़की को दूसरी बार देखने के बाद मेरे मन का अपराध-बोध और भी बढ़ गया था।

उस दिन रात में फटिक के सो जाने के बाद निकुंज ने फिर कहा—"भैया, सो गये हैं क्या?"

मुझे अच्छी तरह याद है कि उस रात भी मैंने निकुंज को होशियार कर दिया था। मैंने उसे साफ-साफ बता दिया था कि अगर वह उस लड़की को किसी भी तरह की तकलीफ देगा तो मैं खुद उसे उसकी सजा दूंगा। निकुंज नौकरी करेगा और नौकरी के रुपये उसे अपनी सास के हाथों में दे देने होंगे। जब तक नौकरी नहीं मिलती, तब तक ट्यूशन के रुपये उसे अपनी सास के हाथों में देने होंगे।

मैंने कहा था—"जब तक तुम्हारी सास जिन्दा है, तब तक तुम अपनी आमदनी के रुपये अपनी सास के हाथों में दोगे। जब तुम्हारी सास नहीं रहेगी, उस समय तुम रुपये अपनी बहू के हाथों में दोगे। तुम राजी हो तो?"

शादी तय हुई थी पच्चीसवीं तारीख को। हाथ में और कुछेक दिन ही बाकी रह गये थे।

एक दिन मैंने पूछा—"क्यों निकुंज, कैसा हाल-चाल है आजकल?"

निकुंज ने कहा—"मैं आज गया था, सविता के गहने पसंद करने के लिए।"

इस तरह सिर्फ कुछेक दिन बाकी रह गये थे शायद। दो-एक दिनों के बाद ही मैं निकुंज की शादी के भोज में शामिल होकर आ सकता था। लेकिन हठात् उसी समय एक दूसरी घटना घट गयी। मैंने अपनी नौकरी के लिए दिल्ली में एक दरख्वास्त भेजी थी। इतने दिनों के बाद उसका जवाब मिला, ऐन निकुंज की शादी के दो-एक दिन पहले ही। नौकरी जरूरी थी। एम० ए० का रिजल्ट जब भी निकले, इसके लिए मुझे किसी तरह की माथापच्ची नहीं करनी थी। इसलिए मुझे दिल्ली जाना ही पड़ा। निकुंज को लेकिन मैं मझधार में छोड़कर चला गया, यह भी कहना ठीक नहीं होगा।

जाते वक्त निकुंज ने कहा—"ठीक शादी के वक्त चले जा रहे हैं भैया?"

मैंने कहा—"इससे क्या हुआ? सारी व्यवस्था तो हो ही चुकी है। और यदि कुछ जरूरत पड़ी तो फटिक भी तो है ही।"

निकुंज ने कहा था—"नहीं भैया, रहने दीजिए। फटिक से कहकर क्या

होगा ? मैं अकेला ही सब-कुछ करूंगा।"

उसके बाद मैं और कुछ भी नही जानता। कलकत्ते से आकर दिल्ली-जैसी नयी जगह में अच्छी तरह स्थिर होने मे ही कुछ दिन व्यतीत हो गये। उसके बाद एक के [illegible]

साम—उनमे से किसी को भी खबर मैं जान नही सका। उसके अलावा खुद को 'रमेश गांगुली' के रूप मे रूपान्तरित करके भी मैं मन-ही-मन सुखी नही था। इसलिए इन सभी प्रसगो मे किनारा करके ही मैं खुद चलना चाहता था। और फिर समय के साथ-साथ मैं ये सारी बातें भूल भी चुका था।

आज इतने दिनों के बाद उन दिनों की उस किशोरी सविता का यह रूप देख कर मैं डर-सा गया। तो फिर निकुंज ने आखिरकार अपनी बहू को यहां ला पटका है ! शशि हलदर लेन के उस मकान को छोड़कर वह अपनी बहू को आखिर यहां चिनमुरा मे क्यों ले आया ? उस मकान को बेच-बाचकर क्या निकुंज उन रुपयों को हजम कर गया है ? बहू के बदन पर नाम-मात्र का गहना तक भी बचा नही ! निकुंज ने आखिरकार कैसी हालत बना डाली है बहू की !

गाड़ी में बैठने के बाद भी उसकी दोनो आखें मैंने देखी थी। दोनो आखों से मानो अगारे बरस रहे थे। अंधेरे में कब गाडी चलने लगी थी, इसका पता भी नहीं चला। कब सभा के आयोजकों ने मुझे यथारीति विदा किया था, यह भी ख्याल नही रहा। मुझे ऐसा लगा मानो वह महिला भी मेरे साथ-साथ दौड़ रही थी। हठात् मानो फिर उसकी स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी—कहिए, मेरे सवाल का क्या जवाब है आपके पास ? जरा बताइए तो, आपके कितने नाम है ?

जवाब भला मैं क्या देता ! उस वक्त पश्चाताप के कारण मेरा पूरा शरीर बेबस हो चला था। हठात् मैंने ड्राइवर से कहा—"ड्राइवर, गाडी रोको···।"

ड्राइवर ने ब्रेक लगाई और गाड़ी एक चौराहे के पास रुक गयी। मैंने कहा—"सिनेमा-हाउस की तरफ गाड़ी वापस ले चलो तो।"

ड्राइवर ने गाड़ी घुमा ली। अब तक हमारी गाड़ी शहर से काफी दूर आ चुकी थी। फिर हमें वही बाजार का रास्ता मिला, जिस रास्ते से होकर मैं सभा-भवन मे गया था। रास्ते मे काफी भीड़ थी। सिनेमा-हाउस के सामने भीड और भी ज्यादा थी। सिनेमा-हाउस रोशनी से जगमगा रहा था। कोई फिल्मी रेकार्ड जोरो से बज रहा था।

मैंने ड्राइवर से कहा—"सिनेमा-हाउस के पीछे जो बस्ती है, वहीं चलना होगा एक बार।"

ड्राइवर बस्ती के भीतर गाड़ी ले आया और एक जगह उसने गाडी खडी कर दी। मैं गाड़ी से उतर पड़ा। फूलों की माला और रेशमी चादर—इन सभी चीजो को मैंने गाड़ी मे ही छोड़ दिया। उसके बाद एक बडे लैम्प-पोस्ट के पास के बड़े

नाले को पार कर मैं भीतर की ओर बढ़ा। छोटी-बड़ी बहुत-सी पुआल की झोपड़ियां थीं वहां। उनके भीतर टिमटिमाती ढिबरियां जल रही थीं। किसी-किसी झोपड़ी में अंधेरा भी था। लेकिन उस अंधेरे में भी नर-नारियों और बच्चों के शोर-गुल से वातावरण गूंज रहा था।

अब तक जरूर सविता घर लौट आयी होगी।

मैंने तय किया कि अगर जरूरत पड़ी तो इस बस्ती के सभी घरों में मैं सविता को ढूंढूंगा। अगर घर नहीं पहचान पाया तो निकुंज का नाम लेने पर क्या लोग बता नहीं देंगे! नहीं तो मैं निकुंज के चेहरे-मोहरे का बयान करूंगा। बस्ती में तो सभी एक-दूसरे को पहचाना करते हैं। शहर की बात दूसरी होती है। आस-पास के लोगों का मुंह गौर से देखता हूं, पर अंधेरे में कुछ ठीक दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन हठात् निकुंज को भी तो देख सकता हूं, पहचान भी सकता हूं। मेरे उस दिन के अभिनय की वजह से ही तो वहू की ऐसी दुर्दशा हो रही है।

एक आदमी को सामने देखकर जाने कैसा संदेह हुआ। मैंने पूछा—"कौन, निकुंज ?"

जरा-सी चूक होने पर वह आदमी मुझसे टकरा ही जाता। उसने पूछा—"आप किसको ढूंढ रहे हैं, बाबूजी ?"

मैंने कहा—"क्या यहां कोई निकुंज नाम का आदमी रहता है? निकुंज गांगुली···?"

उस आदमी ने पूछा—"ओ, बंगाली बाबू हैं ? बाबू जी, मैं तो सिर्फ छह महीने से यहां रह रहा हूं। मैं नया हूं···।"

तो फिर···? मैं फिर आगे बढ़ा। इच्छा हुई कि चीख-चीख कर निकुंज को पुकारूं।

कुछ देर बाद एक खुली जगह में आकर मैंने जोर से पुकारा—"निकुंज, ओ निकुंज ··!"

"किसको पुकार रहे हैं साहब ?"

मैंने कहा—"निकुंज गांगुली नाम का एक आदमी यहां रहता है। क्या आप उसका घर बता सकते हैं ?"

और भी कई आदमी मेरी बातें सुनकर मेरे पास चले आये। निकुंज गांगुली···! यह नाम तो किसी का भी जाना-पहचाना नहीं था। उन्होंने बताया कि उस बस्ती में निकुंज नाम का कोई आदमी रहता ही नहीं।

मैंने कहा—"वह अपने बीवी-बच्चों के साथ यहां रहता है।"

मैंने निकुंज के चेहरे-मोहरे का बयान किया, तब भी कोई पहचान नहीं पाया। तो क्या निकुंज अपनी लाज बचाने के लिए अपना सही परिचय छिपाकर यहां निवास कर रहा है ? अपना नाम भी शायद उसने बदल दिया हो। कुछ भी कहा नहीं जा सकता। शायद अपना सर्वस्व खोकर वह आखिरकार अपनी बहू से ही पेशा करवाने लगा हो। नहीं तो सविता की ऐसी नाराजगी की और क्या वजह हो सकती है ? वह मेरे ऊपर इतनी नाराज क्यों है ? इतनी घृणा क्यों है उसे मुझसे ?

बार-बार क्यों वह मुझसे अपने सवाल का जवाब मांग रही थी ?

हठात् मुझे उन लोगों में से एक की आवाज खूब जानी-पहचानी लगी ।

"अरे, आप यहां कैसे भैया ?"

मैंने देखा कि सामने फटिक खड़ा था । कमर में लुंगी लपेटे—खाली बदन । मैं फटिक को देखकर हैरान रह गया था और फटिक भी मुझे देखकर ।

उसने कहा—"भैया, आप ?"

मैंने कहा—"तुम ? तुम यहां कैसे आ पहुंचे ? यहां के डाकघर में तुम्हारी बदली हो गयी है क्या ?"

फटिक ने चुपचाप झुककर मेरे पैर छुए । उसने कहा—"चलिए भैया, घर पर चलिए । जब आप यहां आये हैं । तो आपको अपनी चरण-रज से मेरा घर पवित्र करना ही होगा ।"

मैंने कहा—"मैं निकुंज की खोज में यहां आया हूं । मुझे एक बार निकुंज के पास ले चलो । तुम्हारे घर फिर किसी दिन आऊंगा ।"

फटिक न जाने क्यों अवाक् रह गया । उसने पूछा—"निकुंज ?"

मैंने कहा—"हां, थोड़ी देर पहले ही निकुंज की बहू से मुलाकात हुई थी । निकुंज ने अपनी बहू को बहुत कष्ट दिया है । उसे एक बार अच्छा-खासा सबक सिखाना चाहता हूं । सच पूछो तो उन लोगों की शादी के लिए मैं ही जिम्मेवार हूं ।"

फटिक मेरी बातें सुनकर हठात् चलते-चलते रुक गया ।

उसने पूछा—"यह क्या भैया ? क्या आपने कुछ भी सुना नहीं ?"

"क्या सुना नहीं ?"

फटिक ने कहा—"निकुंज की शादी तो सविता के साथ हुई ही नहीं भैया ।"

यह क्या ? इतना मिथ्याचरण, इतना नाटक क्या फिर बेकार था ? तो क्या आखिरकार निकुंज का भाण्डा फूट गया था !

फटिक ने बताया—"निकुंज ने तो उन लोगों से झूठी बातें कही थीं । वह तो बी० ए० पास था ही नहीं और आपने भी तो सविता के घर पर निकुंज के बड़े भाई की एक्टिंग की थी और अपना नाम रमेश गांगुली बताया था···।"

मैंने पूछा—"सो उन लोगों को इस बात का पता कैसे चला ?"

फटिक हंसने लगा । उसने कहा—"यह सब मैंने ही सविता की मां के पास जाकर बता दिया था भैया ।"

"तुमने बता दिया था ? लेकिन तुम्हें इन सब बातों की जानकारी कैसे मिली ?"

फटिक ने कहा—"भैया, रात में जब आप दोनों लेटे-लेटे बातें किया करते थे, उस समय मैं चुपचाप सुना करता था ।"

"तो फिर तुम्हें सब कुछ मालूम था ?"

फटिक हंसते-हंसते कहने लगा—"हां भैया, आपके दिल्ली जाने के दूसरे दिन

ही मैंने सविता की मां के पास जाकर निकुंज की सारी पोल खोल दी थी। शादी टूट गयी···। निकुंज ऐसा भागा कि उसने लौट कर कभी अपनी सूरत तक नहीं दिखाई।"

"तो फिर सविता के साथ शादी किसकी हुई?"

फटिक ने खुशी से गद्‌गद् होते हुए कहा—"शादी और किसके साथ होती? आखिरकार मुझे ही सविता का हाथ थामना पड़ा।"

फटिक की बातें सुनकर मानो मैं आकाश से नीचे गिर पड़ा। मैं फटिक को सिर से पैर तक घूर-घूर कर देखने लगा। अपने दांत निकाले अभी तक वह हंस रहा था। मानो वहुत भारी पुण्य का काम किया हो उसने! मैं क्या कहूं, समझ ही नहीं पा रहा था। क्या कहना ठीक होगा, यह भी तय नहीं कर पा रहा था।

फटिक उसी तरह खड़ा था।

उसने कहा—"आपके उपन्यास पर वनी फिल्म मैंने देखी है भैया। चिनसुरा में आपका वड़ा नाम है। मेरी भी एक भलाई कीजिए न भैया। मुझे कोई नौकरी दिला दीजिए। डाकघर की वह नौकरी तो रही नहीं। एक इनश्योर्ड-लिफाफा चोरी करने के जुर्म में मुझे नौकरी से निकाल दिया गया है। इन दिनों वड़ी तकलीफ में हूं भैया! वहू दो-चार घरों में वर्तन मांजने का काम करती है, उसी से किसी तरह गुजारा करना पड़ रहा है। इन दिनों आपके नाम की तो धूम मची हुई है भैया! किसी से कह-सुन मुझे भी किसी नौकरी में घुसा दीजिए न भैया!"

यह कहकर फटिक अपना वदन खुजलाने लगा। मैं उस अंधेरे में ही मानो एक नवीन जगत का दर्शन कर पाया था। निकुंज से तो मैं भली-भांति परिचित था। लेकिन फटिक उससे चार कदम आगे निकलेगा, यह मैंने कभी कल्पना में भी नहीं सोचा था। विलकुल नहले पर दहला···। निकुंज में तो फिर भी कुछ लाज-शरम वची हुई थी। सविता के दरवाजे पर मुंह की खाने के वाद उसने कभी सूरत तक नहीं दिखाई। लेकिन फटिक?

सविता की आवाज मेरे कानों में अव भी गूंज रही थी—"कहिए, मेरे सवाल का क्या जवाव है आपके पास? जरा वताइए तो, आपके कितने नाम हैं···"

☐